GL H 294.5211
LAL

121151
LBSNAA

ट्रीय प्रशासन अकादमी
my of Administration
री
MUSSOORIE

पुस्तकालय
LIBRARY

अवाप्ति संख्या
Accession No. ~~13248~~ 121151

वर्ग संख्या
Class No. GLH 294.5211

पुस्तक संख्या
Book No. LAL

॥ श्रीः ॥

प्रेमसागर ।

कविकुलभूषण पं० लल्लूलालजीकृत-

जिसमें

श्रीकृष्णचन्द्र आनन्दकन्द श्रीराधिकाजीवन
परब्रह्म परमेश्वरकी आद्योपांत सुखमय
परमरमणीय कथा वर्णित है.

वही

खेमराज श्रीकृष्णदासने

बम्बई.

निज "श्रीवेङ्कटेश्वर" स्टीम् मुद्रणयन्त्रालयमें

मुद्रितकर प्रकाशित किया ।

संवत् १९७६, शके १८४१

यह पुस्तक खेमराज श्री[illegible]दासने खेतवाडी ७ वीं गली खम्बाटा लैन स्वकीय "श्रीवेङ्कटेश्वर" स्टीम् प्रेस, बम्बई में अपने लिये छापकर प्रकाशित किया.

पुनर्मुद्रणादि सर्वाधिकार "श्रीवेङ्कटेश्वर" यन्त्रालयाध्यक्षाधीन है.

श्रीनिकुञ्जविहारिणे नमः।

दक्षहस्तकृताश्लेषा वामेनालिङ्ग्य राधिकाम्

कृतनाट्यो हरिः कुञ्जे पातु वेणुं विनादयन् ॥

खेमराज श्रीकृष्णदास 'श्रीवेङ्कटेश्वर' स्टीम् प्रेस—बंबई.

सूचना.

प्रियपाठका !

यह "प्रेमसागर" ग्रंथ दशमस्कंध श्रीमद्भागवतका अनुवाद आगरा-निवासी श्रीपं०लल्लूलालजीने सन् १८६६ ई० में किया था इसका प्रचार आजदिन इस देशमें ऐसा होरहाहै कि, अक्षराभ्यास करने उपरान्त सब कोई इसी ग्रंथको पढ़तेहैं और इंग्लैंडीय राजपुरुषोंमेंभी अबतक इस ग्रंथके पठन पाठनकी रीतिहै और शालावोंमेंभी यह पुस्तक पढ़ाई जातीहै परन्तु इससमय भिन्न भिन्न स्थलोंमें यह पुस्तक छपनेसे असावधानताके कारण बहुत अशुद्ध होगई और पढ़ने पढ़ानेवालोंको कष्ट पड़ता था. इससे मेरा बहुत दिनोंसे यह विचार था कि, एक पुस्तक प्रेमसागरकी अच्छेप्रकार शुद्ध होकर छपै जिस्से यह कष्ट दूरहो क्योंकि विद्यार्थियोंको पढ़ाना पड़ताहै, इसी अवसरमें "श्रीयुत सेठ खेमराज श्रीकृष्णदास" जीने अपनी अनुमति प्रकाशकी कि, आप शुद्धकरदीजिये हम छापैंगे. तब मैंने इस पुस्तकको उस प्राचीन पुस्तकसे शुद्ध किया है जो कि, पूर्वकालमें अँग्रेजी अनुवाद सहित गवर्नमेन्टके प्रबंधसे छपीथी. इस पुस्तकमें दो लाभ विशेषहैं साधारण पढ़नेवालोंको भाषामें बोध और धर्मात्माओंको श्रीकृष्णचन्द्रकी भक्तिकी प्राप्ति.

मुरादाबादस्थपंडितमिश्र-

ज्वालाप्रसादाभिख्यः।

प्रस्तावना.

दोहा–कवि पंडित मंडितकिये, नग भूषण पहिराय ॥
गाहि २ विद्या सकल, वश कीन्ही चितलाय ॥
दानरौर चहुँ चक्रमें, चढ़े कविनके चित्त ॥
आवत पावत लाल मणि, हय हाथी बहुवित्त ॥

प्रथम व्यासदेवकृत श्रीमद्भागवतके दशमस्कंधकी कथाको चतुर्भुज मिश्रने पाठशालाकेलिये श्रीमहाराजाधिराज मार्कीस आफ वेल्स्ली गवर्नर जनरल के राज्यमें, दोहा चौपाई में ब्रजभाषा किया और श्रीयुत जानगिल किरील महाशयकी आज्ञासे सन् १८६०ई०में श्रीलल्लूलालजीकवि ब्राह्मण गुजराती सहस्र औदीच्य आगरेवालेने उसका सार ले यामिनी भाषा छोड़ दिल्ली आगरेकी खड़ी बोलीमें कर इसका नाम "प्रेमसागर" धरा. सो बना अधबना छपा अधछपा रहगयाथा सो लार्डमिंटो प्रतापवान्के राज्यमें और कप्तान जानविलियम टेलरकी आज्ञासे और श्रीयुत डाक्टर विलियम् हटरन् क्षत्रियकी सहायतासे और लेफ्टनेंट इब्राहीम डाक्टरके कहनेसे उसी कविने सन् १८६६ ई० में पूराकर पाठशालाके विद्यार्थियोंके पढनेको छपवाया.

ऐसी इस ग्रंथकी आख्यायिका बंगालमें छपी है, सो ग्रंथ प्रथमावृत्ति बारीक टैपमें हमने छापाथा, फिर द्वितीयावृत्ति मँझले हरफोंमें छापा वह हाथोंहाथ ग्राहकोंने लेलिया; इसलिये तृतीया और चतुर्थी व पंचमावृत्ति क्रमशः बहुत उत्तमताके साथ मोटे अक्षरोंमें अत्यन्त शुद्ध करवाके छापाथा सोभी प्रेमीजनोंने लेकर हरिकथामृतपानका लाभ उठाया अब सप्तमावृत्ति अत्युत्तम शुद्ध करके सुन्दर अक्षरोंमें परममनोहर मुद्रित कियाहै बहुत लिखना वृथाहै देखनेसे अभिलाषा परिपूर्ण होगी.

आपका कृपाकांक्षी–

खेमराज श्रीकृष्णदास,

"श्रीवेङ्कटेश्वर" यंत्रालयाध्यक्ष–(बंबई.)

अथ प्रेमसागरकी विषयानुक्रमणिका।

अध्यायाः	विषयाः	पृष्ठाङ्काः
	पूर्वार्धम्।	
१	उपोद्घात पीढाबंधन	१
२	कंससे देवकीबालकवध	११
३	गर्भस्तुति	१४
४	कृष्णजन्म कन्याग्रहण	१७
५	कंस उपद्रव	१९
६	कृष्ण जन्म	२१
७	पूतनावध	२३
८	शकटभंजन तृणावर्तवध	२५
९	विश्वदर्शन	२७
१०	उलूखलबंधन	३०
११	यमलार्ज्जुनमोक्ष	३२
१२	वत्सासुर व बकासुरवध	३३
१३	अघासुरवध	३६
१४	ब्रह्मवत्सहरण	३७
१५	ब्रह्मस्तुति	३९
१६	धेनुकवध	४०
१७	कालीयमर्दन	४३
१८	दावाग्निपान	४६
१९	प्रलम्बवध	४७
२०	दावाग्निमोचन	४९
२१	वर्षाऋतुशरद्ऋतुवर्णन	५१
२२	गोपीकृतवेणुगीतवर्णन	५२
२३	गोपीचीरहरण	५४
२४	द्विजपत्नीसे अन्नग्रहण	५७
२५	गोवर्धनपूजा	६०
२६	गोवर्धनधारण और पर्जन्यसे व्रजरक्षण	६४
२७	यशोदाकेपास गोपियोंका कृष्णलीलावर्णन	६७
२८	इन्द्रस्तुति	६८
२९	नंद वरुणलोकगमन और वैकुण्ठदर्शन	६९
३०	रासक्रीडारम्भ	७१
३१	गोपीविरह वर्णन	७६
३२	गोपीजनविरह कथन	७९
३३	गोपी कृष्ण संवाद	८१
३४	पंचाध्यायी रासलीला	८३
३५	विद्याधरमोक्ष, शंखचूडवध	८६
३६	गोपीगीत वर्णन	८९
३७	कंस नारद संवाद	९०
३८	केशी व्योमासुरवध	९५
३९	अक्रूर वृन्दावन गमन	९८
४०	अक्रूरदर्शन	१००
४१	अक्रूरस्तुति	१०४
४२	मथुरापुरी प्रवेश	१०५
४३	कंसस्वप्न	११०
४४	कुवलयापीड़ वध	११३
४५	कंसासुर वध	११६
४६	शंखासुर वध	११९
४७	उद्धव वृंदावन गमन	१२८
४८	उद्धवगोपीसंबोधन, भ्रमरगीत	१३२
४९	कुब्जा गृहलीला	१३८
५०	अक्रूर हस्तिनापुरगमन	१४०
	अथोत्तरार्धम्।	
५१	जरासंध पराजय	१४३
५२	कालयवन वध, मुचुकुन्द तरन कृष्ण द्वारकागमन	१४९
५३	कृष्णप्रतिरुक्मिणी संदेश	१५४
५४	रुक्मिणी हरण	१६३
५५	रुक्मिणी चरित्र	१७१
५६	प्रद्युम्नजन्म, शंबर वध	१७९
५७	जाम्बवती, सत्यभामा-विवाहवर्णन	१८५
५८	शतधन्वा वध	१९२
५९	श्रीकृष्ण पंच विवाह	२००
६०	भौमासुरवध	२०९

प्रेमसागरकी विषयानुक्रमणिका ।

अध्यायाः	विषयाः	पृष्ठाङ्काः
६१	श्रीरुक्मिणी मानलीला	२१७
६२	अनिरुद्ध विवाह रुक्म वध... ...	२२१
६३	ऊषास्वप्न अनिरुद्ध ग्रहण	२२७
६४	ऊषाचरित्र वर्णन	२४३
६५	राजा नृगमोक्ष...	२५२
६६	बलभद्र चरित्र (वृन्दावन गमन)...	२५६
६७	नृपपौंड्रक मोक्ष	२६१
६८	बलभद्रचरित्रद्विविदकपि वध ...	२६४
६९	सांबविवाह कथन	२६६
७०	नारद माया दर्शन	२७१
७१	राजा युधिष्ठिर संदेश	२७४
७२	श्रीकृष्ण हस्तिनापुर गमन	२७६
७३	जरासंध वध...	२७८
७४	सर्व भूपति हस्तिनापुर गमन ...	२८६
७५	राजसूययज्ञ, शिशुपालमोक्ष... ...	२८८
७६	दुर्योधन मानमर्दन	२९३
७७	शाल्व दैत्यवध	२९५
७८	सूत वध...	३००
७९	बलराम तीर्थयात्रा गमन	३०३
८०	सुदामा द्वारका गमन	३०५
८१	सुदामादरिद्रसंहार	३०८
८२	श्रीकृष्ण बलराम कुरुक्षेत्र गमन ...	३१०
८३	श्रीगीतवर्णन	३१६
८४	वसुदेवकृत यज्ञवर्णन...	३१७
८५	देवकीमृतपुत्रानयन	३२०
८६	सुभद्रा हरण, श्रीकृष्ण मिथिला-गमन...	३२२
८७	नरनारायण नारद संवाद	३२५
८८	रुद्रमोक्ष वृकासुरवध...	३२८
८९	द्विजकुमार हरण व प्राप्ति	३३०
९०	द्वारका विहार वर्णन...	३३५

इति प्रेमसागरकी विषयानुक्रमणिका समाप्ता ।

श्रीगणेशाय नमः ।

अथ कविवर लल्लूलालजी रचित ।

प्रेमसागर

पूर्वार्द्ध.

अध्याय १.

दोहा—विघन विदारण विरदवर, वारण वदन विकास ।
वर देवहु बाढ़ै विशद, वाणी बुद्धि विलास ॥

युगल चरण जोवत जगत, जपत रैनि दिन तोहिं।
जय माता सरस्वति सुमिरि, युक्ति उक्ति दे मोहिं॥

महाभारतके अन्तमें जब श्रीकृष्णचन्द्र अन्तर्धान हुये तब पांडव तो महादुःखी हो हस्तिनापुरका राज्य परीक्षितको दे आप हिमालय गलनेको चलेगये और राजा परीक्षित सब देश जीत धर्मराज्य करने लगे. कितने एक दिन पीछे एक दिन राजा परीक्षित आखेटको गयेथे वहाँ देखा कि, एक गाय और एक बैल दौड़े चले आतेहैं; तिनके पीछे मुशल हाथमें लिये एक शूद्र मारता हुआ आताहै. जब वे पास पहुँचे तब राजाने शूद्रको बुलाय झुझलायकर कहा अरे तू कौन है? अपना नाम बखान कर, जो गाय और बैलको जानकर मारताहै, क्या अर्जुनको तैंने दूरगया जाना, तिससे उसका धनुष नहीं पहिचाना? सुन—पांडवके कुलमें ऐसा किसीको न पावेगा कि, जिसके सोंहीं कोई दीनको सतावेगा; इतना कह राजाने खड्ग हाथमें लिया वह देख डरकर खड़ा होगया. फिर नरपतिने गाय और बैलको भी निकट बुलायके पूछा कि तुम कौन हो? मुझे बुझाकर कहो; देवता हो कि ब्राह्मण? और किसलिये भागे जातेहो? यह निधड़क कहो मेरे रहते किसीकी इतनी सामर्थ्य नहीं जो तुम्हें दुःख दे. इतनी बात सुनी तब तो बैल शिर झुकायकर बोला महाराज! यह पापरूप कालेवर्ण डरावनी सूरत जो आपके सन्मुख खड़ा है सो कलियुग है, इसीके आनेसे मैं भागाजाता हूँ, यह गायस्वरूप पृथ्वी है सोभी इसीके डरसे भागचली और मेरा नाम धर्म है, चार पाँव रखताहूँ तप, सत्य, दया और शौच; सतयुगमें मेरे चरण बीस बिस्वे थे; त्रेतामें सोलह; द्वापरमें बारह; अब कलियुगमें चार बिस्वे हैं इस लिये कलिके बीचमें चल नहीं सकता. धरती बोली धर्मावतार! मुझसे भी इस युगमें रहा नहीं जाता; क्योंकि शूद्र राजा हो अधिक अधर्म मेरे पर करेंगे तिनका बोझ मैं न सह सकूंगी इस भयसे मैंभी भागती हूँ यह सुनतेही राजाने क्रोध कर कलियुगसे कहा मैं तुझे अभी मारताहूँ; वह घबरा राजाके चरणोंपर गिर गिड़गिड़ाकर कहने लगा पृथ्वीनाथ! अ-

तो मैं तुम्हारी शरण आया; मुझे कहीं रहनेको ठौर बतावो क्योंकि तीन काल और चारों युग जो ब्रह्माने बनाये हैं सो किसी भाँति मेटे न मिटैंगे. इतना वचन सुनतेही राजा परीक्षितने कलियुगसे कहा कि, तुम इतनी ठौर रहो-जुयें, झूंठ, मदकी हाट, वेश्याके घर, हत्या, चोरी और सुवर्णमें, यह सुन कलिने तो अपने स्थानको प्रस्थान किया और राजाने धर्मको मनमें रखलिया पृथ्वी अपने रूपमें मिलगई, फिर राजा नगरमें आये और धर्मराज्य करने लगे.

कितने एक दिन बीते, राजा फिर एक समय आखेटको गये और चलते चलते बड़े प्यासे भये शिरके मुकुटमें तो कलियुग रहताही था उसने अपना अवसर पा राजाको अज्ञान किया। राजा प्यासके मारे कहाँ आते हैं कि, जहाँ लोमशऋषि आसनमारे नयन मूंदे हरिका ध्यान लगाये तप कररहेथे उन्हें देख परीक्षित मनमें कहने लगा कि, यह अपने तपके घमंडसे मुझे देख आँख मूंद रहा है, ऐसी कुमति ठानि एक मरा साँप जो वहाँ पडा था सो धनुषसे उठाय,ऋषिके गलेमें डाल, अपने घर आया; मुकुट उतारतेही राजाको ज्ञान हुआ तो शोचकर कहनेलगा कि कंचनमें कलियुगका वासहै, यह मेरे शीशपर था इसीसे मेरी ऐसी कुमति हुई; जो मरासर्प ले ऋषिके गलेमें डालदिया; सो मैं अब समझा कि, कलियुगने मुझसे अपना पलटा लिया; इस महापापसे मैं कैसे छूटूंगा? बरन् धन, जन, स्त्री और राज्य सब आज मेरा क्यों न गया? न जानूं किस जन्ममें यह अधर्म जायगा जो मैंने ब्राह्मणको सताया है.

राजा परीक्षित तो यहाँ इस अथाह शोचसागरमें डूबरहेथे और जहाँ लोमशऋषि थे वहाँ कितने एक लड़के खेलतेहुए जा निकले मरासाँप उनके गलेमें देख अचंभेमें रहे और घबराकर आपसमें कहने लगे कि भाई! कोई इनके पुत्रसे जाके कहदे. उपवनमें कौशिकी नदीके तीर ऋषियोंके बालकोंके संग खेलताहै. एक सुनते ही दौड़ा वहीं गया जहाँ शृंगीऋषि छोकरोंके साथ खेलताथा; कहा बंधु! तुम यहाँ क्या खेलतेहो? कोऊ दुष्ट मराहुआ कालानाग तुम्हारे पिताके कंठमें डाल गयाहै; यह सुनतेही शृंगीऋषिके नयन लाल होगये दाँत पीस पीस थर थर काँपने लगा और

क्रोधकर कहने लगा कि, कलियुगमें राजा उपजेहैं अभिमानी, धनके मदसे अंधे होगये हैं दुःखदानी; अब मैं उसको दूहूँ शाप, वही निश्चय पावेगा आप; ऐसे कह शृंगीऋषिने कौशिकी नदीका जल चुल्लूमें ले राजा परीक्षितको शाप दिया कि, यही सर्प सातवें दिन तुझे डसेगा.

इस भाँति राजाको शाप देकर अपने बापके पास जा गलेसे साँप निकाल कहनेलगा, हे पिता ! तुम अपनी देह सँभालो; मैंने उसे शाप दियाहै, जिसने आपके गलेमें मरा सर्प डालाथा, यह वचन सुनतेही लोमशऋषि सचेत हो नयन उघाड़ अपने ज्ञान, ध्यानसे विचारकर कहा अरे पुत्र ! तैंने यह क्या किया, क्यों राजाको शाप दिया? उसके राज्यमें थे हमसुखी, कोऊ पशु पक्षी भी हुआ न दुःखी; ऐसा धर्मराज्य था कि जिसमें सिंह, गाय एक साथ रहते, आपसमें कछु न कहते, और पुत्र जिसके देशमें हम बसे, क्या हुआ तिनके हँसे; माराहुआ सर्प डालाथा उसे शाप क्यों दिया ? तनक दोषपर ऐसा शाप; तैंने किया बड़ा यह पाप; कछु विचार मनमें नहीं किया, गुण छोड़ा अवगुणही लिया; साधुको चाहिये शील स्वभावसे रहे, आप कुछ न कहे; औरकी सुनले, सबका गुण ले, अवगुण तजदे.

इतना कह लोमशऋषिने एक चेलेको बुलाके कहा, तुम राजा परीक्षितको जाके चितादो कि तुम्हें शृंगीऋषिने शाप दियाहै, भला लोग तो दोष देहींगे; पर वह सुन सावधान तो होजाय. इतना वचन गुरुका मान चेला चला चला वहाँ आया जहाँ राजा बैठा शोच करताथा, आतेही कहा महाराज ! तुम्हें शृंगीऋषिने यह शाप दियाहै कि सातवें दिन तक्षक डसेगा. अब तुम अपना कार्य्य करो जिससे कर्मकी फाँसीसे छूटो. सुनतेही राजा प्रसन्नतासे खड़ाहो हाथ जोड़ कहने लगा कि, मुझपर ऋषिने बड़ी कृपा की जो शाप दिया, क्योंकि मैं माया मोहके अपार शोचसागरमें पड़ाथा, सो निकाल बाहर किया. जब मुनिका शिष्य बिदा हुवा तब राजाने आप तो वैराग लिया. और जनमेजयको बुलाय राज्यपाट देकर कहा, बेटा ! गो, ब्राह्मणकी रक्षा कीजो, और प्रजाको सुखदीजो; इतनी कह आये रनिवास, देखी रानी सभी उदास; राजाको देखतेही रानियाँ पाँवोंपर; गिर रो रो कहने लगीं, महाराज ! तुम्हारा वियोग हम अबला न सह

केंगी, इससे तुम्हारे साथ जी दें तो भला. राजाबोला सुनो, स्त्रीको उचितहै जिससे अपने पतिका धर्म रहै सो करे उत्तम काजमें बाधा न डाले.

इतना कह धन, जन, कुटुंब और राज्यकी माया तज निर्मोहीहो आप योग साधनेको गंगाके तीरपर जाबैठा, इसको जिसने सुना वह हायहाय कर पछताय पछताय बिन रोये न रहा, और यह समाचार जब मुनियोंने सुना कि, राजा परीक्षित शृङ्गीऋषिके शापसे मरनेको गंगातीरपर आ बैठाहै, तब व्यास, वसिष्ठ, भरद्वाज, कात्यायन, पराशर, नारद, विश्वामित्र, वामदेव, जमदग्नि आदि अठासीसहस्र ऋषि आये और आसन बिछाय पाँत पाँत बैठगये, अपने अपने शास्त्र विचार अनेक अनेक भाँतिके धर्म, राजाको सुनाने लगे कि, इतनेमें राजाकी श्रद्धा देख पोथी काँखमें लिये दिगंबर वेष श्रीशुकदेवजी भी आन पहुँचे, उनको देखतेही जितने मुनि थे सबके सब उठ खड़े हुए; और राजा परीक्षित भी हाथ बांध खड़हो विनती कर कहने लगा, कृपानिधान ! मुझपर बड़ी दया की जो इससमय आपने मेरी सुध ली. इतनी बात कही, तब शुकदेव मुनि भी बैठे, राजा ऋषियोंसे कहने लगा कि, महाराज ! शुकदेवजी व्यासजीके जो बेटे, और पराशरजीके पोते तिनको देख तुम बड़े बड़े मुनीश होके उठे सो तो उचित नहीं, इसका कारण कहो जो मेरे मनका संदेह जाय. तब पराशर मुनि बोले, राजा ! जितने हम बड़े बड़े ऋषि हैं, पर ज्ञानमें शुकसे छोटेही हैं, इसलिये सबने शुकका आदर मान किया, किसीने इस आशपर कि, ये तारणतरण हैं क्योंकि जबसे जन्म लिया तबसेही उदासी हो वनवास करतेहैं; और राजा ! तेरा भी कोई बड़ा पुण्य उदय हुआ जो शुकदेवजी आये, ये सब हमसे उत्तम धर्म कहेंगे जिससे तू जन्म मरणसे छूट भवसागर पार होगा. यह वचन सुन राजा परीक्षितने श्रीशुकदेवजीको दंडवत्कर पूछा महाराज ! मुझे धर्म समझायके कहो किसरीतिसे कर्मके फंदसे छूटूंगा. सात दिनमें क्या करूंगा, अधर्म है अपार, कैसे भवसागर हूंगा पार ?

श्रीशुकदेवजी बोले राजा ! तू थोड़े दिन मत समझ मुक्ति तो होती है एकही घड़ीके ध्यानमें; जैसे राजा खट्वांगको नारदमुनिने ज्ञान बता-

याथा, और उसने दोही घड़ीमें मुक्ति पाई थी. तुझे तो सातदिन बहुत हैं, जो एक चित्त हो करो ध्यान, तो सब समझोगे अपनेही ज्ञानसे कि क्याहै देह किसका है वास कौन करताहै इसमें प्रकाश, यह सुन राजाने हर्षसे पूछा महाराज ! सब धर्मोंसे उत्तम धर्म कौनसा है ? सो कृपा कर कहो. तब शुकदेवजी बोले, राजा ! जैसे सब धर्मोंमें वैष्णवधर्म बड़ा है, तैसे पुराणोंमें श्रीमद्भागवत जहाँ हरिभक्त यह कथा सुनावेहैं, तहांही सब तीर्थ, और धर्म आवेंहैं, जितनेहैं पुरान, पर नहीं हैं कोई भागवतके समान; इस कारण मैं तुझे बारहस्कंध महापुराण सुनाताहूं. जो व्यास मुनिने मुझे पढ़ायाहै, तू श्रद्धासमेत आनंदसे चित्त दे सुन. तब तो राजा परीक्षित प्रेमसे सुनने लगे, और श्रीशुकदेवजी नेमसे सुनाने लगे; कथा-के श्रोता सर्व आने लगे-

नौ स्कंध कथा जब मुनिने सुनाई, तब राजाने कहा दीनदयालु ? अब दया कर श्रीकृष्णावतारकी कथा कहिये, क्योंकि हमारे सहायक, और कुलपूज्य वही हैं। शुकदेवजी बोले राजा ! तुमने मुझे बड़ासुख दिया जो यह प्रसंग पूछा। सुनो मैं प्रसन्न हो कहताहूं-यदुकुलमें पहले भजमान नाम राजा थे. तिनके पुत्र पृथु, पृथुके विदूरथ, उनके शूरसेन जिन्होंने नौखंड पृथिवी जीतके यश पाया, उनकी स्त्रीका नाम मारिष्या उसके दश लड़के और पांच लड़कियाँ तिनमें बड़े पुत्र वसुदेव जिनकी स्त्रीके आठवें गर्भमें श्रीकृष्णचंद्रजीने जन्म लिया. जब वसुदेवजी उप-जेथे, तब देवताओंने सुरपुरमें आनंदके बाजन बजायेथे और शूरसेनकी पाँच पुत्रियोंमें सबसे बड़ी कुंती थी जो पंडुको व्याही थी. जिसकी कथा महाभारतमें गाई है और वसुदेवजी पहले तो रोहण नरेशकी बेटी रोहिणीको व्याहलाये, तिस पीछे सत्रह व्याह किये जब अठारह पटरा-नी हुई तब मथुरामें कंसकी बहन देवकीको व्याहा. तहाँ आकाशवाणी भई कि, इस लड़कीके आठवें गर्भमें कंसका काल उपजेगा. यह सुन कंसने बहन बहनोईको एक घरमें मूँददिया और श्रीकृष्णने वहाँही जन्म लिया. इतनी कथा सुनतेही राजा परीक्षित बोले, महाराज ! कैसे जन्म

कंसने लिया, किसने उसे महावर दिया, और कौन रीतिसे कृष्ण उपजे और फिर किस विधिसे गोकुल पहुँचे जाय,यह तुम मुझे कहो समझाय.

श्रीशुकदेवजी बोले मथुरापुरीका आहुकनाम राजा तिसके दो बेटे एकका नाम देवक दूसरा उग्रसेन कितने एक दिन पीछे उग्रसेनही वहाँका राजा हुआ, जिसकी एकही रानी थी; उसका नाम पवनरेखा सो अति सुंदरी और पतिव्रता थी आठों पहर स्वामीकी आज्ञाहीमें रहै. एकदिन कपड़ोंसे भई तो पतिकी आज्ञा ले सखी सहेलीको साथ कर रथमें चढ़कर वनमें खेलनेको गई, वहाँ घने घने वृक्षोंमें भाँति भाँतिके फूल फूले हुए सुगंधवाली, मंद मंद ठंढी ठंढी हवा बहरही, कोकिला, कपोत,कीर, मोर मीठी मीठी मनभावन बोलियाँ बोलरहे, और एक ओर पर्वतके नीचे यमुना न्यारीही लहरें लेरहीथी कि, रानी इस समयको देख रथसे उतरकर चली तो अचानक एक ओर अकेली भूलके जा निकली वहाँ द्रुमलिकनाम राक्षस भी संयोगसे आ पहुँचा; वह इसके यौवन और रूपकी छवि देख छकरहा और मनमें कहने लगा कि, इससे भोग किया चाहिये. निदान तुरत राजा उग्रसेनका स्वरूप बन रानीके सोहीं जा बोला, तू मुझसे मिल. रानी बोली, महाराज ! दिनको कामकेलि करना योग्य नहीं, क्योंकि इसमें शील और धर्म जाताहै क्या तुम नहीं जानते ? जो ऐसी कुमति विचारी है.

जब पवनरेखाने इस भाँति कहा तब तो द्रुमलिकने रानीका हाथ पकड़ खैंच लिया और जो मनमाना सो किया. इस छलसे भोग करके जैसा था तैसाही बनगया तब तो रानी अतिदुःख पाय पछतायकर बोली अरे अधर्मी ! पापी ! चांडाल ! तूने यह क्या अंधेर किया जो मेरे सतको खोदिया, धिक्कार है तेरे माता पिता और गुरुको जिसने तुझे ऐसी बुद्धि दी तुझसा पूत जन्मेसे तेरी माँ बाँझ क्यों न हुई ? अरे दुष्ट ! जो नरदेह पाकर किसीका सत भंग करतेहैं सो जन्म जन्म नरकमें पड़ते हैं.द्रुमलिक बोला, रानी ! तू शाप मत दे तुझे मैंने अपने धर्मका फल दियाहै, तेरी कोख बंद देख मेरे मनमें बड़ी चिंता थी सो गई. आजसे हुई गर्भकी आस, लड़का होगा दशवें मास, और मेरी देहके

स्वभावसे तेरा पुत्र नौखंड पृथ्वीको जीत राज्य करेगा और श्रीकृष्ण-जीसे लड़ैगा. मेरा नाम प्रथम कालनेमि था तब विष्णुसे युद्ध कियाथा; अब जन्म ले आया तो द्रुमलिकनाम कहाया, तुझको पुत्र दे चला तू अपने मनमें किसी बातकी चिंता मत कर, इतनी बात कह जब द्रुमलिक चलागया तब रानीको भी कुछ शोच समझकर मनमें धीरज भया.

दोहा–जैसी हो होतव्यता, तैसी उपजै बुद्धि ॥
होनहारहिरदे वसै, बिसरजाय सब सुद्धि ॥ १ ॥

इतनेमें सब सखी सहेली आनमिलीं, रानीका शृंगार बिगड़ा देख एक सहेली बोल उठी इतनी बेर तुझे कहां लगी और यह क्या गति हुई? पवनरेखाने कहा सुनो सहेली! तुमने इसवनमें तजी अकेली, एक बंदर आया, उसने मुझे अधिक सताया; तिसके डरसे मैं अबतक थर थर काँपती हूँ यह बात सुनकर सबकी सब घबराईं, और रानीको उठाय रथपर चढ़ाय घर लाईं; जब दश महीने पूजे तब पूरे दिनोंको लड़का हुआ तिस समय एक बड़ी आँधी चली कि, जिसके मारे लगी धरती डोलने अँधेरा ऐसा हुआ जो दिनकी रात होगई और लगे तारे टूट टूट गिरने, बादल गर्जने और बिजली कड़कने.

ऐसे माघ सुदि तेरस बृहस्पतिवारको कंसने जन्म लिया तब राजा उग्रसेनने प्रसन्न हो सारे नगरकी मंगलामुखियोंको बुलाय मंगलाचार करवाये, और सब ब्राह्मण, पंडित,ज्योतिषियोंको भी अति मान सन्मा-नसे बुलवा भिजवाये. राजाने बड़ी भावभक्तिसे आसन दे दे बैठाये, तब ज्योतिषियोंने लग्न साध मुहूर्त्त विचारकर कहा पृथ्वीनाथ! यह लड़का कंसनाम तुम्हारे वंशमें उपजा सो अति बलवंत हो राक्षसोंको ले राज्य करेगा. और देवता और हरिभक्तोंको दुःख दे आपका राज्य ले निदान हरिके हाथ मरेगा.

इतनी कथा कह शुकदेवमुनिने राजा परीक्षितसे कहा, राजा! अब मैं उग्रसेनके भाई देवककी कथा कहताहूं कि, उसके चार बेटे थे और छः बेटियाँ सो छहों वसुदेवको व्याहदीं, सातवीं देवकी हुई जिसके होनेसे देवताओंको बड़ी प्रसन्नता भई और उग्रसेनके दशपुत्रोंमें

सबसे कंसही बड़ाथा, जबसे जन्मा तबसे यह उपाय करने लगा कि, नगरमें जाय छोटे २ लड़कोंको पकड़ २ लावे; और पहाडकी खोहमें मूंद मूंद मार डाले. जो बड़े होयँ तिनकी छातीपर चढे,गला घोंट जी निकाले, इस दुःखसे कोई कहीं निकलने न पावे, सब कोई अपने लड़कोंको छिपावे, प्रजा कहे दुष्ट यह कंस उग्रसेनका नहीं है, कोई अंश महापापी जन्म ले आया है, जिसने सारे नगरको सतायाहै; यह बात सुन उग्रसेनने उसे बुलाकर बहुतसा समझाया, पर उसका कहना उसके जीमें कुछ भी न आया. तब दुःख पाय पछतायके कहने लगा ऐसे पूत होनेसे मैं अपुत क्यों न हुआ ? कहते हैं जिससमय कुपूत घरमें आताहै तिस समय यश और धर्म जाता है. जब कंस आठ वर्षका भया, तब मगधदेशपर चढ़गया. वहाँका राजा जरासंध बड़ा योद्धा था तिससे मिल इसने मल्लयुद्ध किया, तो उसने कंसका बल देखलिया; तब हार मान अपनी दो बेटियाँ व्याहदीं, यह ले मथुरामें आया और उग्रसेनसे वैर बढ़ाया. एक दिन कोपकर अपने पितासे बोला कि, तुम रामनाम कहना छोड़दो और महादेवका जप करो, उसने कहा मेरे तो कर्त्ता, दुःखहर्त्ता वही हैं जो उनकोही न भजूंगा तो अधर्मी हो कैसे भवसागर पार हूंगा? यह सुन कंसने खुनसा बापको पकड़कर सारा राज्य लेलिया; और नगरमें यह डौंड़ी फेरदी कि, कोई यज्ञ, दान, धर्म, तप और रामनाम जप करने न पावेगा. तब ऐसा अधर्म बढ़ा कि, गो,ब्राह्मण, हरिके भक्त दुःख पाने लगे; और धरती अति बोझसे मरने लगी. जब कंस सबराजाओंका राज्य लेचुका तब एक दिन अपना दल ले राजा इंद्रपर चढ़चला. तहाँ मंत्रीने कहा,महाराज ! इंद्रासन बिन तप किये नहीं मिलता आप बलका गर्व न करिये. देखो गर्वने रावण, कुंभकर्णको कैसा खोदिया कि, जिनके कुलमें एक भी न रहा.

इतनी कथा कह श्रीशुकदेवजी राजा परीक्षितसे कहने लगे कि, राजा ! जब पृथ्वीपर अति अधर्म होने लगा; तब पृथ्वी दुःख पाय घबराय गायका रूप बनाय रांभती २ देवलोकमें गई और इंद्रकी सभामें जाय शिरझुकाय, उसने अपनी सब पीर कही कि, महाराज ! संसारमें

असुर अति पाप करने लगे, तिनके डरसे धर्म तो उठगया और मुझे आज्ञा हो तो नरपुर छोड़ रसातलको जाऊं. इंद्र सुन सब देवताओंको साथ ले ब्रह्माके पास गया. ब्रह्मा सुन सबको महादेवके निकट लेगये; महादेवभी सुन सबको साथ ले वहाँ गये, जहाँ क्षीरसमुद्रमें नारायण सोरहेथे उनको सोते जान ब्रह्मा,रुद्र, इंद्र,सब देवताओंको साथ ले खड़े हो हाथजोड़ विनतीकर देव स्तुति करने लगे. महाराजाधिराज ! आपकी महिमा कौन कहसके? मत्स्यरूप हो वेद डूबते निकाले, कच्छरूप बन पीठपर गिरिधारण किया, वाराह बन भूमिको दाँतपर रख लिया, वामन हो राजाबलिको छला, परशुरामअवतार ले क्षत्रियोंको मार पृथ्वी कश्यपमुनिको दी, रामावतार लिया तब महादुष्ट रावणका वध किया, और जब जब दैत्य तुम्हारे भक्तोंको दुःख देतेहैं तब तब तुम आपही उनकी रक्षा करतेहो. नाथ ! अब कंसके सतानेसे पृथ्वी अतिव्याकुल हो पुकार करतीहै, उसकी वेग सुध लीजे, असुरोंको मार साधुओंको सुख दीजे !

ऐसे गुण गाय देवताओंने कहा तब आकाशवाणी हुई सो ब्रह्मा देवताओंको समझाने लगे. यह जो वाणी भई सो तुम्हें आज्ञा दीहै कि,तुम सब देवी, देवता, ब्रजमंडलपर जाय मथुरा नगरीमें जन्म लो. पीछे चार स्वरूप धर हरि भी अवतार लेंगे वसुदेवके घर देवकीकी कोखमें; और बाललीला कर नंद यशोदाको सुख देंगे. इसरीतिसे ब्रह्माने सब बुझाकर कहा तब तो सुर मुनि किन्नर और गंधर्व सब अपनी अपनी स्त्रियों समेत जन्म लेले ब्रजमंडलमें आये, यदुवंशी और गोप काहाये. और जो चारों वेदकी ऋचायें थीं सोभी ब्रह्माकी आज्ञासे गोपी हो ब्रजमें आईं और गोपी कहलाईं,जब सब देवता मथुरापुरीमें आचुके तब क्षीरसमुद्रमें हरि विचार करने लगे कि, तो पहले लक्ष्मण होवें बलराम, पीछे वासुदेवहो मेरा नाम; भरत प्रद्युम्न, शत्रुघ्न अनिरुद्ध; और सीता रुक्मिणीका अवतार लेगी.

इति श्रीलल्लूलालकृते प्रेमसागरे पीढ़ाबंधोनाम प्रथमोऽध्यायः ॥ १ ॥

अध्याय २.

इतनी कथा सुनाय श्रीशुकदेवजीने राजा परीक्षितसे कहा हे महाराज! कंस तो इस अनीतिसे मथुरामें राज्य करने लगा और उग्रसेन दुःख भरने लगा, देवक जो कंसका चाचा था उसकी कन्या देवकी जब व्याहने योग्य हुई तब उसने जा कंससे कहा कि, यह लड़की किसको दें? यह बोला शूरसेनके पुत्र वसुदेवको दीजिये। इतनी बात सुनतेही देवकने एक ब्राह्मणको बुलाय शुभ लग्न ठहराय शूरसेनके घर टीका भेजदिया तब तो शूरसेन भी बड़ी धूमधामसे बरात बनाय सब देश देशके नरेश साथ ले मथुरापुरीमें वसुदेवको व्याहने आये.

बरात नगरके निकट आई सुन उग्रसेन, देवक और कंस अपना दल साथ ले आगे बढ़ नगरमें लेगये, अतिआदर मानसे आगोनी कर जनवासा दिया, फिर खिलाय पिलाय सब बरातियोंको मांढेके नीचे लेजा बैठाया, और वेदकी विधिसे कंसने वसुदेवको कन्यादान दिया, तिसके यौतुकमें पंद्रहसहस्र १५००० घोड़े, चारसहस्र ४००० हाथी, अठारहसौ १८०० रथ, दास, दासी अनेक दे कंचनके थाल, वस्त्र, आभूषण, रत्नजड़ितसे भरभर अनगिनत दिये और सब बरातियोंको भी अलंकार समेत बागे पहराय सब मिल पहुँचावन चले तहाँ आकाशवाणी हुई, कि

अरे कंस ! जिसे तू पहुँचावन चलाहै तिसका आठवाँ लड़का तेरा काल उपजेगा; उसके हाथ तेरी मौत है.

यह सुनतेही कंस डरकर काँप उठा और क्रोध कर देवकीकी चोटी पकड़ रथके नीचे खैंच लाया, खड्ग हाथमें ले दाँत पीस पीस कहने लगा, जिस पेड़को जड़हीसे उखाड़िये तिसमें फूल फल काहेको लगेगा ? अब इसीको मारूं तो निर्भय राज्य करूं. यह देख सुन वसुदेव मनमें कहने लगे, इस मूरखने दिया संताप, जानता नहीं है पुण्य और पाप; जो मैं अब क्रोध करताहूं तो काज बिगड़ेगा तिससे इस समय क्षमा करना योग्य है.

चौ०–जो बैरी खैंचे तरवार । करै साधु तिसकी मनुहार ॥
पछिताय । जैसे पानी आग बुझाय ॥

यह शोच समझ वसुदेव कंसके सोंही जा, हाथ जोड़ विनती कर कहने लगे कि, सुनो पृथ्वीनाथ ! तुमसों बली संसारमें कोई नहीं और सब तुम्हारे छाँहतले बसते हैं ऐसे शूर हो स्त्रीपर शस्त्र करो यह अति अनुचित है. और बहिनके मारनेसे महापाप होताहै तिसपर भी मनुष्य अधर्म तो करे जो जाने कि, मैं कभी न मरूंगा. इस संसारकी तो यही रीति है इधर जन्मा, उधर मरा, करोड़ यत्नसे पाप पुण्यकर कोई इस देहको पोषे पर यह कभी अपनी न होगी; और धन यौवन राज्य भी न आवेगा काम, इससे मेरा कहा मान लीजे और अपनी अबला अधीन बहिनको छोड़ दीजे । इतना सुन वह अपना काल जान घबराकर और भी झुँझलाया. तब वसुदेव शोचने लगे कि यह पापी तो असुर बुद्धि किये अपने हठकी टेकपर है जिससे इसके हाथसे यह बचे सो उपाय किया चाहिये ऐसे विचार मनमें कहने लगे अब तो इससे यह कह देवकीको बचाऊं कि, जो पुत्र मेरे होगा सो तुझे दूंगा पीछे किसने देखाहै लड़का न होय कि यही दुष्ट मरे; यह औसर तो टलै फेर समझा जायगा. इस भाँति मनमें ठान वसुदेवने कंससे कहा, महाराज ! तुम्हारी मृत्यु इसके पुत्रके हाथ न होयगी; क्योंकि मैंने एक बात ठहराई है कि, देवकीके जितने लड़के होंगे तितने मैं तुम्हें ला दूँगा. यह वचन मैंने तुमको

दिया. ऐसी बात जब वसुदेवने कही तब समझके कंसने मान ली और देवकीको छोड़ कहने लगा, हे वसुदेव! तुमने अच्छा विचार किया जो ऐसे भारी पापसे मुझे बचालिया. इतना कह बिदा दी वे अपने घर गये.

कितनेएकदिन मथुरामें रहते भये जब पहला पुत्र देवकीके हुआ तब वसुदेव ले कंसपै गये और रोता हुआ लड़का आगे धरदिया, देखतेही कंसने कहा वसुदेव! तुम बड़े सत्यवादी हो मैंने आज जाना; क्योंकि तुमने मुझसे कपट न किया, निर्मोहीहो अपना पुत्र लादिया. "इससे डर नहीं है कुछ मुझको, यह बालक मैंने दिया तुझको" इतना सुन बालक ले दण्डवत् कर वसुदेवजी तो अपने घर आये और उसी समय नारदमुनिजीने जाय कंससे कहा, राजा! तुमने यह क्या किया, जो बालक उलटा फेर दिया? क्या तुम नहीं जानते कि वसुदेवकी सेवा करनेको सब देवताओंने ब्रजमें आय जन्म लियाहै और देवकीके आठवें गर्भमें श्रीकृष्ण जन्म ले सब राक्षसोंको मार भूमिका भार उतारेंगे? इतना कह नारदमुनिने आठ लकीरें खैंच गिनवाई जब आठही आठ गिनतीमें आई तब डरकर कंसने लड़के समेत वसुदेवजीको बुला भेजा. नारदमुनि तो यों समझाय बुझाय चलेगये और कंसने वसुदेवसे बालक ले मारडाला. ऐसे जब पुत्र होय तब वसुदेव लेआवें, और कंस मारडाले. इसी रीतिसे छः बालक मारे तब सातवें गर्भमें शेषरूप जो भगवान् तिन्होंने आ वास किया. यह कथा सुन राजा परीक्षितने शुकदेवमुनिसे पूछा महाराज! नारदमुनिजीने जो अधिक पाप करवाया तिसका ब्यौरा समझाकर कहो, जिससे मेरे मनका संदेह जाय. श्रीशुकदेवजी बोले राजा! नारदमुनिजीने अच्छा विचारा कि, यह अधिक अधिक पाप करे तो श्रीभगवान् तुरन्तही प्रगट होवें.

इति श्रीलल्लूलालकृते प्रेमसागरेदेवकीविवाहबालकवधोनामद्वितीयोऽध्यायः॥ २॥

अध्याय ३.

फिर शुकदेवजी राजा परीक्षितसे कहने लगे कि, राजा! जैसे गर्भमें आये हरी और ब्रह्मादिकने स्तुतिकरी और देवी जिसभाँति बलदेवजीको गोकुल लेगई तिस रीतिसे कहताहूं—एक दिन राजा कंस अपनी सभामें आय बैठा और जितने दैत्य उसके थे उनको बुलाकर कहा सुनो, सब देवता पृथ्वीमें जन्म ले आयेहैं तिन्हींमें कृष्णभी अवतार लेगा यह भेद मुझसे नारदमुनि समझायके कहगयेहैं इससे अब उचित यह है कि, तुम जाकर सब यदुवंशियोंका ऐसा नाश करो जो एकभी जीता न बचे.

यह आज्ञा पा सबके सब दंडवत् कर चले; नगरमें आ ढूँढ़ पकड़ पकड़ बाँधने लगे, खाते, पीते, खड़े, बैठे, सोते, जागते, चलते, फिरते जिसे पाया तिसे न छोड़ा. घरको एकठौर लाय और जला जला, डुबा डुबा, पटक पटक, दुःख देदे सबको मारडाला; इसी रीतिसे छोटे बड़े भाँतिभाँतिके भयावने वेषबनाये नगर नगर, गाँव गाँव, गली गली घर घर खोज खोज मारने और यदुवंशी दुःख पाय पाय देश छोड़छोड़ जी लेले भागने लगे.

उसी समय वसुदेवकी जो और स्त्रियाँ थीं सोभी रोहिणी समेत मथुरासे गोकुलमें आईं, जहाँ वसुदेवजीके परममित्र नंदजी रहते थे उन्होंने अति हितसे आशा भरोसादे रखवाईं, तब वे आनंदसे रहने लगीं; जब कंस देवताओंको यों सताने और अतिपाप करनेलगा तब विष्णुने अपनी आंखोंसे एक माया उपजाई, वह हाथ बाँध सन्मुख आई, उससे कहा तू अब संसारमें जा अवतार ले मथुरापुरीके बीच जहाँ दुष्ट कंस मेरे भक्तोंको दुःख देता

है और कश्यप अदिति जो वसुदेव देवकी हो ब्रजमें गये हैं तिनको मूंद रक्खाहै छः बालक तो उनके कंसने मारडाले अब सातवें गर्भमें लक्ष्मण जी हैं उनको देवकीकी कोखसे निकाल, गोकुलमें लेजाकर इसरीतिसे रोहिणीके पेटमें रखदीजो कि,कोई दुष्ट न जाने और सब वहाँके लोग तेरा यश बखानें.

इस भाँति मायाको समझाय श्रीनारायण बोले कि, तूतो पहले जाकर यह काज करके नंदके घरमें जन्म ले पीछे वसुदेवके गृहमें अवतार ले, मैंभी नंदके घर आताहूं इतना सुनतेही माया उठ मथुरामें आई और मोहनीका रूप बन वसुदेवके गेहमें बैठगई.

चौपाई ।

जो छिपाय गर्भ हरलिया । जाय रोहिणीको सो दिया ॥
जाने सब पहला आधान । भये रोहिणीके भगवान ॥

इसरीतिसे श्रावणसुदी चौदश बुधवारको बलदेवजीने गोकुलमें जन्म लिया और मायाने वसुदेव देवकीको जाय स्वप्न दिया कि, मैंने तुम्हारा पुत्र गर्भसे लेजाय रोहिणीको दियाहै, तुम किसी बातकी चिंता मत-कीजो. सुनतेही वसुदेव देवकी जागपड़े और आपसमें कहने लगे कि, यह तो भगवान्ने भला किया. पर कंसको इसी समय चेताया चाहिये, नहीं तो क्या जानिये पीछे क्या दुःख दे ? यों शोचसमझ रखवालोंसे बुझाकर कहा उन्होंने कंसको जा सुनाया कि, महाराज ! देवकीका गर्भ अधूरागया बालक कछु न पूरा भया, सुनतेही कंस घबराकर बोला कि, तुम अबकी बेर चौकसी करियो क्योंकि आठवेंई गर्भका मुझे डर है जो आकाशवाणी कहगई है.

इतनी कथा कह श्रीशुकदेवजी बोले हे राजा ! बलदेवजी तो यों प्रकटे और जब श्रीकृष्णजी देवकीके गर्भमें आये तभी मायाने जा नंदकी नारी यशोदाके पेटमें बास लिया. दोनों आधानसे थीं कि, एक पर्वमें देवकी यमुना न्हाने गई वहाँ संयोगसे यशोदा भी आनमिली तो आप-समें दुःखकी चर्चा चली निदान यशोदाने देवकीको वचन दे कहा कि,

तेरा बालक मैं रक्खूंगी अपना तुझे दूंगी; ऐसे वचन दे यह अपने घर आई और वह अपने गयी. आगे जब कंसने जाना कि,देवकीको आठवाँ गर्भ रहा तब जा वसुदेवका घर घेरा चारों ओर दैत्योंकी चौकी बैठा दी और वसुदेवको बुलाकर कहा कि, अब तुम मुझसे कपट मत कीजो और अपना लड़का लादीजो तब मैंने तुम्हाराही कहना मान लिया था.

ऐसे कह वसुदेव देवकीको बेड़ी और हथकड़ी पहराय एक कोठेमें मूंदकर ताला दे निजमंदिरमें आ मारे डरके उपास कर सोरहा फिर भोर होतेही वहीं गया जहाँ वसुदेव देवकी थे गर्भका प्रकाश देख कहनेलगा कि इसी यमगुफामें मेरा काल है मार तो डारूँ पर अपयशसे डरताहूं क्योंकि अति बलवान् हो स्त्रीको हनना योग्य नहीं.भला इसके पुत्रहीको मारूंगा. यों कह बाहर आ गज, सिंह, श्वान और अपने बड़े बड़े योद्धा वहाँ चौकीको रखाए और आप भी नित्त चौकसी कर आवे,पर एक पल भी कल न पावे, जहाँ देखे तहाँ आठ पहर चौसठ घड़ी कृष्णरूप कालही दृष्टि आवे, तिसके भयसे भावित हो रात चिंतामें गँवावे.

इधर कंसकी तो यह दशा थी, उधर वसुदेव और देवकी पूरे दिनों महाकष्टमें श्रीकृष्णहीको मनाते थे कि इस बीच भगवान्ने आ उन्हें स्वप्न दिया और इतना कह उनके मनका सोच दूर किया कि, हम वेगही जन्म ले तुम्हारी चिंता मेटते हैं अब मत पछिताओ. यह सुन वसुदेव देवकी जाग पड़े तो इतनेमें ब्रह्मा, रुद्र,इंद्रादि सब देवता अपने २ विमान छोड़ अलखरूप बन वसुदेवके गेहमें आय और हाथ जोड़ जोड़ वेद गाय गाय गर्भस्तुति करनेलगे तिस समय उनको तो किसीने न देखा पर वेदकी धुनि सबने सुनी यह अचरज देख रखवाले अचंभेमें रहे और वसुदेव देवकीको निश्चय हुआ कि भगवान् वेगही हमारी पीर हरेंगे.

इति श्रीलल्लूलालकृते प्रेमसागरे गर्भस्तुतिर्नाम तृतीयोऽध्यायः ॥ ३ ॥

अध्याय ४.

श्री शुकदेवजी बोले कि, हे राजा ! जिस समय श्रीकृष्णचंद्र जन्म लेने लगे तिस काल सबहीके जीमें ऐसा आनंद उपजा कि दुःखका नाम भी न रहा. हर्षसे लगे वन उपवन हरे होहो फूलने, नदी, नाले, सरोवर, भरने; तिनपर भाँति भाँतिके पक्षी कलोलें करने और नगर नगर, गाँव गाँव, घर घर, मंगलाचार होने, ब्राह्मण यज्ञ रचने, दशों दिशाके दिक्पाल हर्षने, बादल ब्रजमंडलपर फिरने, देवता अपने अपने विमानोंमें बैठ आकाशसे फूल बरसाने, विद्याधर, गंधर्व, चारण, ढोल, दमामे, भेरी बजाय बजाय गुण गाने और एक ओर उर्वशी आदि सब अप्सरा नाच रही थीं कि, ऐसे समय भाद्रपदवदि अष्टमी बुधवार रोहिणी नक्षत्रमें आधीरातको श्रीकृष्णचन्द्रने आ जन्म लिया और मेघवर्ण, चंद्रमुख, कमलनयन हो पीतांबर काछे, मुकुट धरे, वैजयंती माल और रत्न-जड़ित आभूषण पहरे, चतुर्भुज रूप किये शंख, चक्र, गदा, पद्म लिये. वसुदेव देवकीको, दर्शन दिया. देखतेही अचंभेमें हो उन दोनोंने ज्ञानसे विचारा तो आदिपुरुषको जाना. तब हाथ जोड़ विनतीकर कहा हमारे बड़े भाग्य जो आपने दर्शन दिया. और जन्म मरणका निबेड़ा किया.

इतना कह अपनी पहिली कथा सब सुनाई जैसे कंसने दुःख दिया

था, तब श्रीकृष्णचंद्र बोले तुम अब किसी बातकी चिंता मनमें मत करो क्योंकि मैंने तो तुम्हारे दुःखके दूर करनेहीको अवतार लियाहै. पर इस समय मुझे गोकुल पहुँचादो और इसी बिरियाँ यशोदाके लड़की हुईहै सो कंसको लादो अपने जानेका कारण कहताहूँ सो सुनो.

दोहा—नंद यशोदा तप करो, मोहीं सों मनलाय॥
देख्यो चाहत बालसुख, रहों कछुदिनजाय॥ १॥

फिर कंसको मार आन मिलूँगा तुम अपने मनमें धैर्य्य धरो ऐसे वसुदेव देवकीको समुझाय श्रीकृष्ण बालक बन रोने लगे और अपनी माया फैला दी तब तो वसुदेव देवकीका ज्ञान गया और जाना कि हमारे पुत्र भया यह समझ दशसहस्रगायें मनमें संकल्पकर लड़केको गोदमें उठा छातीसे लगा लिया. उसका मुँह देख दोनों लंबी श्वासें भर भर आपसमें कहने लगे जो किसी रीतिसे इस लड़केको भगा दीजै तो कंस पापीके हाथसे बचें, वसुदेव बोले.

चौपाई।

विधनाबिनराखैनहिंकोई। कर्मलिखासोईफलहोई॥
तब करजोरि देवकी कहै। नंदमित्र गोकुलमें रहै॥
पीर यशोदा हरै हमारी। नारि रोहिणी तहाँ तिहारी॥

इस बालकको वहीं लेजाओ, यों सुन वसुदेव अकुलाकर कहने लगे इस कठिन बंधनसे छूट कैसे लेजाऊँगा? इतनी बात कही तो सब बेड़ी हथकड़ी खुलपड़ीं, चारों ओरके किवाड उघड़गये, पहरुए अचेत नींदवश भये, तब तो वसुदेवजीने श्रीकृष्णको शूपमें रख शिरपर धर लिया, और झटपटही गोकुलको प्रस्थान किया.

सोरठा—ऊपर बरसे देव, पीछे सिंह जु गुंजरे।
सोचतहैं वसुदेव, यमुना देखि प्रवाह अति॥ १॥

नदीके तीर खड़े हो वसुदेव विचारने लगे कि, पीछे तो सिंह बोलताहै और आगे अथाह यमुना बह रही है अब क्या करूं ऐसा कह भग-

वान्का ध्यान धर आगे यमुनामें पैठे ज्यों ज्यों आगे जाते थे त्यों त्यों नदी बढ़तीथी. जब नाकतक पानी आया तब तो ये निपट घबराये इनको व्याकुल जान श्रीकृष्णने अपना पाँव बढ़ाया और हुँकारदिया चरण छूतेही यमुना थाह हुई; वसुदेव पारहो नंदकी पौरपर जा पहुँचे वहाँ किंवाड़ खुले पाये भीतर धसके देखा तो सब सोए पड़े हैं. देवीने ऐसी मोहनी डालीथी कि, यशोदाके लड़कीके होनेकी भी सुध नहींथी. वसुदेवजीने कृष्णको यशोदाके ढिग सुलादिया और कन्याको ले चट अपना पंथ लिया. नदी उतर फिर आये तहाँ देवकी बैठी शोचतीथी. जब कन्या दे वहाँकी कुशल कही सुनतेही देवकी प्रसन्न हो बोली हे स्वामी ! हमें कंस अब मारडाले तोभी कुछ चिंता नहीं, क्योंकि इस दुष्टके हाथसे पुत्र तो बचा.

इतनी कथा सुनाय श्रीशुकदेवजी राजा परीक्षित्से कहने लगे कि, जब वसुदेव लड़कीको ले आये और दोनोंने हथकड़ियाँ बेड़ियाँ पहरलीं. कन्या रो उठी रोनेकी ध्वनि सुन पहरुए जागे तो अपने अपने शस्त्र लेले सावधान हो लगे तुपक छोड़ने तिनका शब्द सुन लगे हाथी चिंघाड़ने, सिंह दहाड़ने और कुत्ते भोंकने. तिसी समय अंधेरी रातके बीच रस्तेमें एक रखवालेने आय हाथ जोड़ कंससे कहा महाराज ! तुम्हारा वैरी उपजा यह सुन कंस मूर्छित हो गिरा.

इति श्रीलल्लूलालकृते प्रेमसागरे कृष्णजन्म कन्याग्रहणंनाम चतुर्थोऽध्यायः ॥ ४ ॥

अध्याय ५.

बालकका जन्म सुनतेही कंस डरता काँपता उठ खड़ा हुआ और खड्ग हाथमें ले गिरता पड़ता दौड़ा, छूटे बालों पसीनेमें डूबा धुकुड़ पुकुड़ करता जा बहिनके पास पहुँचा जब उसके हाथसे लड़की छीनली तब वह हाथ जोड़ बोली, अय भैया ! यह कन्या तेरी भानजीहै इसे मतमार यह पेट पोंछनी है मेरे बालक छः मारे हैं तिनका दुःख मुझे अति सताताहै. बिन काज कन्याको मार क्यों पाप बढ़ाताहै? कंस बोला जीती

लड़की न दूँगा तुझे, इसे जो व्याहेगा सो मारेगा मुझे, इतना कह बाहर आय ज्योंहीं चाहे कि, फिरायकर पत्थरपर पटके त्योंहीं हाथसे छूट कन्या आकाशको गई और पुकारके यह कह गई कि अरे कंस ! मेरे पटकनेसे क्या हुआ तेरा वैरी कहीं जन्म ले चुका अब तेरा जी न बचेगा.

यह सुन कंस अछता पछता वहाँ आया. जहाँ वसुदेव देवकी थे आतेही उनके हाथ, पाँवकी हथकड़ी बेडी काट दी और विनती कर कहने लगा कि, मैंने बड़ा पाप किया. जो तुम्हारे पुत्र मारे यह कलंक कैसे छूटेगा, किस जन्ममें मेरी गति होगी. तुम्हारे देवता झूंठे हुए. जिन्होंने कहा था कि, देवकीके आठवें गर्भमें लड़का होगा सो न हो लड़की हुई वह भी हाथसे छूट स्वर्गको गई अब दयाकर मेरा दोष जीमें मत रक्खो क्योंकि कर्मका लिखा किसीके मेटे नहीं मिटता. जो ज्ञानी हैं सो मरना जीना समानही जानते हैं और अभिमानी मित्र शत्रुकर मानते हैं. तुम तो बड़े साधु सत्यवादी हो जो हमारे हेतु अपने पुत्र ले आये.

ऐसे कह जब कंस बार बार हाथ जोड़ने लगा, तब वसुदेवजी बोले महाराज ! तुम सच कहते हो इसमें तुम्हारा कुछ दोष नहीं विधनाने यही हमारे कर्ममें लिखा था. यह सुन कंस प्रसन्न हो अति हितसे वसुदेव, देवकीको अपने घर ले आया और भोजन करवाय बागे पहराय बड़े आदरभावसे दोनोंको फेर वहीं पहुँचा दिया. और मंत्रीको बुलाके कहा कि, देवी कह गई है तेरा वैरी जगतमें जन्मा इससे अब देवताओंको जहाँ पावो तहाँ मारो क्योंकि उन्होंने बे समझे झूंठी बात कही कि "देवकीके आठवें गर्भमें तेरा शत्रु होगा" मंत्री बोला उनका मारना क्या बड़ी बात है वे तो जन्मके भिखारी हैं जब आप कोपियेगा तभी वे भाग जावेंगे. उनकी क्या सामर्थ्य जो तुम्हारे सन्मुख हों; ब्रह्मा तो आठ प्रहर ज्ञान ध्यानमें रहता है. महादेव भाँग धतूरा खाय, इंद्रका कुछ तुमपर न बसाय, रहा नारायण सो संग्राम नहीं जानेलक्ष्मीके साथरहताहै सुखमाने. कंस बोला नारायणको कहाँ पावें और किस विधि जीतें सो कहो मंत्रीने कहा महाराज ! जो नारायणको जीता चाहते हो तो जिनके घरमें आठ पहर है उनका वास, तिनहींका अब करो विनाश, ब्राह्मण, वैष्णव, योगी,

यती, तपस्वी, संन्यासी, वैरागी आदि जितने हरिके भक्त हैं तिनमें लड़-केसे ले बूढेतक एक भी जीता न रहे. यह सुन कंसने प्रधानसे कहा तुम सब जाके मारो. आज्ञा पाकर मंत्री अनेक राक्षस साथ ले बिदा हो, नगरमें जा लगा—गो, ब्राह्मण, बालक और हरिभक्तको छल बलकर ढूंढढूंढ मारने.

इति श्रीलल्लूलालकृते प्रेमसागरे कंसोपद्रवकरणो नाम पंचमोऽध्यायः ॥५॥

अध्याय ६.

इतनी कथा कह श्रीशुकदेवजी बोले हे राजा ! एक समय नंद यशोदाने पुत्रके लिये बड़ा तप किया; तहाँ श्रीनारायणने आय वर दिया कि, हम तुम्हारे यहाँ जन्म ले आयेंगे. जब भाद्रपदवदि अष्टमी बुधवारको आधीरातके समय श्रीकृष्ण आये तब यशोदाने जागतेही पुत्रका मुख देख नंदको बुला अति आनंद माना और अपना जीवन सफल जाना. भोर होतेही उठके नंदजीने पंडित और ज्यो-तिषियोंको बुला भेजा वे अपनी पोथी पत्रे लेले आये, तिनको आसन देदे आदर मानसे बैठाये; तिन्होंने शास्त्रकी विधिसे संवत्, महीना, तिथि, दिन, नक्षत्र, योग, करण, ठहराय लग्न विचार मुहूर्त्त साधके कहा महा-राज ! हमारे शास्त्रके विचारमें तो ऐसा आता है कि, यह लड़का दूसरा विधाता हो सब असुरोंको मार व्रजका भार उतार गोपीनाथ कहावेगा. सारा संसार इसीका यश गावेगा, यह सुन नंदजीने कंचनके शृंग, रूपेके

खुर, ताँबेकी पीठ, समेत दो लाख गऊ पाटंबर उढ़ाय, संकल्प कीं और अनेक दान कर ब्राह्मणोंको दक्षिणा देदे आशीश लेले बिदा किया. तब नगरकी सब मंगलामुखियोंको बुलाया वे आय आय अपना अपना गुण प्रकाश करने लगीं. बजंत्री बजाने, नर्तक नाचने, गायक गाने, ढाढ़ी ढाढ़िन यश बखानने. और जितने गोकुलके गोप ग्वाल थे वेभी अपनी२ नारियोंको शिरपर दहेडियाँ लिवाये, भाँति भाँतिके भेष बनाये, नाचते गाते नंदको बधाई देने आये, आतेही ऐसा दधिकाँदो किया कि सारे गोकुलमें दही दही कर दिया; जब दधिकाँदो खेल चुके तब नंदजीने सबको खिलाय पिलाय बागे पहराय तिलक कर पानदे बिदा किया.

इसी रीतिसे कई दिनतक बधाई रही, इस पीछे नंदजीसे जिसने जो जो आय आय माँगा सो सो पाया बधाईसे निश्चिन्त हो नंदजीने सब ग्वालोंको बुलायके कहा भाइयो! हमने सुना है कि कंस बालक पकड़ २ मँगवाता है. न जानिये कोई दुष्ट कछु बात लगा दे इससे उचित है कि सब मिल भेंट ले चलें और बरसोडी दे आवें. यह वचन मान सब अपने २ घरसे दूध, दही, माखन ले मथुरा आए; कंससे भेंटकर भेटदी कौड़ी कौड़ी चुकाय बिदा होकर अपनी बाट ली.

ज्योंहीं यमुना तीरपर आए त्योंहीं समाचार सुन वसुदेवजी आ पहुँचे नंदजीसे मिल कुशल क्षेम पूंछ कहने लगे तुमसा सगा और मित्र हमारा संसारमें कोई नहीं क्योंकि जब हमें भारी विपत्ति भई तब गर्भवती रोहिणी तुम्हारे यहाँ भेजदी उसके लड़का हुआ सो तुमने पाल बड़ा किया हम तुम्हारे गुण कहाँतक बखानें, इतना कह फेर पूंछा कहो राम कृष्ण और यशोदा रानी आनंदसे हैं? नंदजी बोले आपकी कृपासे सब भला है. और हमारे जीवनमूल तुम्हारे बलदेवजी भी कुशलसे हैं कि, जिनके होते तुम्हारे पुण्यप्रतापसे हमारे पुत्र हुआ पर एक तुम्हारेही दुःखसे हम दुःखित हैं. वसुदेव कहने लगे मित्र! विधातासे कछु न बसाय, कर्मकी रेख किसीसे मेटी न जाय; इससे संसारमें आय दुःख पीर पाय कौन पछिताय, ऐसा ज्ञान जनायके कहा.

चौ०—तुमघरजाहु वेगि आपने। कीने कंस उपद्रव घने॥
बालकढूंढ मँगावे नीच। हुई साधपरजाकी मीच॥

तुम तो यहाँ सब चले आये हो; और राक्षस ढूँढते फिरते हैं न जानिये कोई दुष्ट जाय गोकुलमें उपाधि मचावे, यह सुनतेही नंदजी अकुलाकर सबको साथ लिये शोचते विचारते मथुरासे गोकुलको चले.

इति श्रीलल्लूलालकृते प्रेमसागरे कृष्णजन्मोत्सवो नाम षष्ठोऽध्यायः॥ ६॥

अध्याय ७.

श्रीशुकदेवजी बोले हे राजा! कंसका मंत्री तो अनेक राक्षस साथ लिये मारता फिरताही था कि, कंसने पूतना नाम राक्षसीको बुलाकर कहा तू जा, यदुवंशियोंके जितने बालक पावे, तितने मार. यह सुन वह प्रसन्न हो दंडवत् कर चली तो अपने जीमें कहने लगी.

दोहा—भये पूत हैं नंदके, सूनो गोकुल गाउँ॥
छलकर अबहीं आनिहौं, गोपी ह्वैकै जाउँ॥

यह कह सोलह शृंगार बारह आभरणकर कुचमें विष लगाय मोहिनीरूपबन कपट किये कमलका फूल हाथमें लिये बन ठनके ऐसी चली कि जैसे शृंगार किये लक्ष्मी अपने पतिपै जातीहोय. गोकुलमें पहुँच हँसती २ नंदके मंदिर बीच गई इसे देख सबकी

सब गोपियाँ मोहितहो भूलीसी रहीं. यह जा यशोदाके पास बैठी और कुशल पूँछ अशीश दी कि, वीर तेरा कन्हा जीवे कोटि बरस, ऐसे प्रीति बढ़ाय लड़केको यशोदाके हाथसे ले गोदमें रख ज्यों दूध पिलावने लगी, त्यों श्रीकृष्ण दोनों हाथोंसे चूंची पकड़ मुँहमें लगाय लगे प्राणसमेत पयपीने तब तो अति व्याकुलहो पूतना पुकारी कैसा यशोदा तेरा पूत, मानुष नहिं यह है यमदूत, जेवरी जान मैंने साँप पकड़ा जो इसके हाथसे बच जीती जाऊंगी तो फेर गोकुलमें कभी न आऊंगी. यों कह भाग गाँवके बाहर आई पर कृष्णने न छोड़ा निदान उसका जी लिया. वह पछाड़ खाय ऐसे गिरी जैसे आकाशसे वज्रगिरे तिसका अति शब्द सुन रोहिणी और यशोदा रोती पीटती वहीं आई, जहाँ पूतना दो कोशमें मरी पड़ी थी और उनके पीछे सब गाँव उठ धाया. देखें तो श्रीकृष्ण उसकी छातीपर चढ़े दूध पीरहे हैं झट उठाय मुख चूँम हृदय लगाय घर ले आई गुणियोंको बुलाय झाड़ फूँक कराने लगीं. और पूतनाको देख गोपीग्वाल खड़े आपसमें कह रहेथे कि, भाई इसके गिरनेका धमकासुन हम ऐसे डरे हैं जो छाती अबतक धमकतीहै न जानिये बालककी क्या गति हुई होगी. इतनेमें मथुरासे नंदजी आये तो देखते क्याहैं कि एक राक्षसी मरी पड़ी है और ब्रजवासियोंकी भीड़ घेरे खडी है. पूँछा यह उपाधि कैसे हुई ? वे कहने लगे महाराज ! पहले तो यह अति सुन्दर हो तुम्हारे घर अशीशदेती गई, इसे देख सब ब्रजनारी भूलरहीं यह कृष्णको ले दूध पिलाने लगी. पीछे हम नहीं जानते क्या गति हुई इतना सुन नंदजी बोले बड़ी कुशलभई जो बालक बचा और यह गोकुल पर न गिरी. नहीं तो एक भी जीता न बचता. सब इसके बीच दबमरता योंकह नंदजी तो घर आय दान पुण्य करने लगे. और ग्वालोंने फरसे, फावड़े, कुदाल, कुल्हाडोंसे काट काट पूतनाके हाड़ तोड़ तोड़ खड्डे खोद खोद गाड़ दिया और मांस चाम इकट्ठाकर फूँकदिया उसके जलनेसे क ऐसी सुगंध फैली कि जिसने सारे संसारको सुगंधसे भरदिया. इतनी कथा सुन राजा परीक्षितने श्रीशुकदेवजीसे पूँछा महाराज ! वह राक्षसी महामलीन मद मांस खानेवाली उसके शरीरसे सुगंध कैसे

निकली सो कृपा कर कहो. मुनि बोले राजा! श्रीकृष्णचंद्रने दूध पीवनेसे मुक्ति दी इस कारण सुगंध निकली.

इति श्रीलल्लूलालकृते प्रेमसागरे पूतनावधो नाम सप्तमोऽध्यायः ॥ ७ ॥

अध्याय ८.

श्रीशुकदेवजी बोले-

दोहा-जिहिनक्षत्रमोहनभये, सो नक्षत्र परो आय।
चारुबधाए रीति सब, करति यशोदा माय॥

जब सत्ताइस दिनके हरि हुए तब नंदजीने सब ब्राह्मण और ब्रजवासियोंको नौता भेजदिया वे आये तिन्हें आदरमान कर बैठाया. आगे ब्राह्मणोंको बहुतसा दान दे बिदाकिया और भाइयोंको बागे पहराय षट्रस भोजन कराने लगे. तिस समय यशोदा रानी परोसतीथी, रोहिणी टहल करतीथी, ब्रजवासी हँस हँस खारहेथे, गोपियां गीत गारहीथीं, सब आनंदमें ऐसे मग्न थे कि कृष्णकी सूरत किसीको भी नथी. और कृष्ण एक भारी छकडेके नीचे पालनेमें अचेत सोतेथे कि इसमें भूखे हो जगे तो पाँवके अँगूठे मुँहमें दे रोवने लगे. और हिलक हिलक चारोंओर देखने. उसी औसरमें उड़ताहुआ एक राक्षस आ निकला, कृष्णको अकेला देख अपने मनमें कहने लगा कि, यह तो कोई बडा बली उपजाहै पर आज मैं इससे पूतनाका वैर लूंगा यों मनमें ठान शकटमें आन बैठा तिसीसे उसका नाम शकटासुर हुआ जब गाड़ा चरचरायकर हिला तब श्रीकृष्णने बिलगते बिलगते एक ऐसी लात मारी कि, वह मर गया और छकडा टूक टूक हो गिरा. तो जितने बासन दूध दहीके थे सब फूट चूर हुये. और गोरसकी नदीसी बह निकली. गाडेके टूटने और भांडोंके फूटनेका शब्द सुन सब गोपी ग्वाल दौड आये आतेही यशोदाजीने कृष्णको उठाय मुँह चूँम छातीसे लगालिया यह अचरज देख सब आपसमें कहने लगे आज विधनाने बड़ी कुशल की, जो बालक बचरहा और शकटहीटूटगया.

इतनी कथा सुनाय श्रीशुकदेवजी बोले हे राजा! जब हरि पाँच महीनेके हुए तब कंसने तृणावर्तको पठाया, वह बगला हो गोकुलमें आया; नंदरानी कृष्णको गोदमें लिये आँगनके बीच बैठीथी कि, एकाएकी कन्हैया ऐसे भारी हुए जो यशोदाने मारे बोझके गोदसे नीचे उतारे; इतनेमें एक ऐसी आँधी आई कि दिनकी रात हो गई और पेड़ उखड़ उखड़ गिरने लगे; छप्पर उड़ने. तब व्याकुल हो यशोदाजी श्रीकृष्णको उठाने लगी पर वे न उठे, ज्योंही उनके शरीरसे इनका हाथ अलग हुआ त्योंही तृणावर्त आकाशको लेउड़ा; और मनमें कहने लगा कि आज इसे बिनामारे न रहूंगा; वह तो श्रीकृष्णके लिये वहाँ यह विचार करताथा कि, यहाँ यशोदाजीने जब आगे न पाया तब रो रो कृष्ण कृष्ण कर पुकारने लगी, उनका शब्द सुन सब गोपी ग्वाल दौड़ आये; साथ हो ढूँढ़नेको धाये, अँधेरेमें अटकलसे टटोल टटोल चलतेथे तिसपर भी ठोकरें खाय गिर गिर पड़तेथे.

चौपाई।

ब्रजवनगोपी ढूँढत डोलैं। इत रोहिणी यशोदा बोलैं॥
नंद मेघ धुनि करैं पुकार। ढूँढैं गोपी गोप अपार॥

जब श्रीकृष्णने नंद यशोदा समेत सब ब्रजवासी अति दुःखित देखे तब तृणावर्तको फिराय आँगनमें ला शिलापर पटका, तुरंत उसका जी देहसे निकल सटका, आँधी थमगई उजाला हुआ सब भूले भटके घर आये. देखें तो राक्षस आँगनमें मरा पड़ा है. श्रीकृष्ण छातीपर खेल रहे हैं. आतेही यशोदाने उठाय कंठसे लगालिया और बहुतसा दान ब्राह्मणोंको दिया.

इति श्रीलल्लूलालकृतेप्रेमसागरेशकटभंजनतृणावर्तवधो नाम अष्टमोऽध्यायः॥८॥

अध्याय ९.

श्रीशुकदेवजी बोले हे राजा! एकदिन वसुदेवजीने गर्गमुनिको जो बड़े ज्योतिषी और यदुवंशियोंके पुरोहित थे उन्हें बुलाकर कहा कि, तुम गोकुलमें जाओ और लड़केका नाम रख आओ.

दोहा–गई रोहिणी गर्भसों, भयो पूत है ताहि।
कितो आयु कैसो बली, कहा नाम तो आहि॥

और नंदजीके पुत्र हुआहै सोभी तुम्हें बुलायगये हैं, सुनतेही गर्गमुनि प्रसन्न हो चले और गोकुलके निकट जा पहुँचे. तिसी समय किसीने नंदजीसे आ कहा कि, यदुवंशियोंके पुरोहित गर्गमुनिजी आते हैं यह सुन नंदजी आनंदसे ग्वालबाल संग कर भेंट ले उठ धाये और पाटंबरके पाँवड़े डालते बाजे गाजेसे ले आये पूजा कर आसनपर बैठाय चरणामृत ले स्त्री पुरुष हाथ जोड़ कहने लगे; महाराज! बड़े भाग्य हमारे जो आपने दया कर दर्शन दे घर पवित्र किया. तुम्हारे प्रतापसे दो पुत्र हुए हैं एक रोहिणीके एक हमारे कृपाकर तिनका नाम धरिये. गर्गमुनि बोले ऐसे नाम रखना उचित नहीं, क्योंकि यह बात फैले कि गर्गमुनि गोकुलमें लड़केको नाम धरने गये हैं. और कंस सुन पावै तो वह यही जानेगा कि देवकीके पुत्रको वसुदेवके मित्रके यहाँ कोई पहुँचाय आया है इसीलिये गर्गपुरोहित गयाहै. यह समझ बूझके पकड़ मँगावेगा और न जानिये तुमपरभी क्या उपाधि लावे, इससे तुम फैलाव मत करो चुपचाप घरमें नाम धरवालो. नंद बोले गर्गजी! तुमने सच कहा, इतना कह घरके भीतर लेजाय बैठाया तब गर्गमुनिने नंदजीसे दोनोंकी जन्मतिथि और समय पूंछ लग्न साध नाम ठहराया और कहा सुनो नंदजी! वसुदेवकी रानी रोहिणीके पुत्रके तो इतने नाम होवेंगे-संकर्षण, रेवतीरमण, बलदाऊ, बलराम, कालिन्दीभेदन, हलधर और बलवीर और कृष्णरूप जो तुम्हारा लड़का है उसके नाम तो अनगिनत हैं, पर किसी समय वसुदेवके यहाँ जन्मा इससे वासुदेवनाम हुआ और मेरे विचारमें आताहै कि ये दोनों बालक तुम्हारे चारों युगमें जब जन्मे हैं तब साथही जन्मे हैं. नंदजी

बोले इनके गुण कहो. गर्गमुनिने उत्तर दिया ये दूसरे विधाता हैं. इनकी गति कुछ जानी नहीं जाती. पर मैं यह जानताहूँ कि, कंसको मार भूमिका भार उतारेंगे ऐसे कह गर्गमुनि चुपचाप चले गये और वसुदेव-से जा समाचार कहे. आगे दोनों बालक गोकुलमें दिन दिन बढ़ने लगे और बाललीला कर नंद यशोदाको सुख देने. नीले, पीले, झँगुले पहने माथेपर छोटी छोटी लटुरियां बिखरी हुई ताँई तगड़े बाँधे कठले गलेमें डाले खिलौने हाथमें लिये खेलते आँगनके बीच घुटनों चलचल गिर-गिर पड़ें और तोतली तोतली बातें करें रोहिणी और यशोदा पीछे पीछे लगी फिरें; इसलिये कि मत कहीं लड़के किसीसे डर ठोकर खागिरें जब छोटे छोटे बछड़ों और बछियाओंकी पूँछ पकड़ पकड़ उठें और गिर गिर पड़ें तब यशोदा और रोहिणी अति प्यारसे उठाय छातीसे लगाय दूध पिलाय भाँति भाँतिके लाड़ लड़ावें. जब श्रीकृष्ण बड़े भये तो एकदिन ग्वालबाल साथ ले ब्रजमें दधि माखनकी चोरीको गये.

चौपाई ।

सूने घरमें ढूंढैं जाय । जो पावें सो देयँ लुटाय ॥
जिनको घरमें सोते पावें । तिनकी ढकीदही ढरकावें ॥

जहाँ छीकेपर रक्खा देखें तहाँ पीठीपर पटरा पटरेपै उलूखल धर साथियोंको खड़ाकर उसके ऊपर चढ़ उतारलें. कुछ खावें कुछ लुटायदें ऐसे गोपियोंके घर घर नित चोरी कर आवें. एक दिन सबने मता किया और गेहमें मोहनको आने दिया. जो घर भीतर पैठे, चाहें कि, माखन दधि चुरायें तो गोपीने जाय पकड़कर कहा दिन दिन आते थे निशि भोर; अब कहाँ जाओगे माखन चोर. यों कह जब सब गोपी मिल कन्हैयाको लिये यशोदाके पास उलाहना देने चलीं तब श्रीकृष्णने ऐसा छल किया कि, उसीके लडकेका हाथ उसे पकडा दिया और आप दौड़के अपने ग्वालबालोंका संग लिया वे चलीं चलीं नंदरानीके निकट आय पाओं पड़ बोलीं जो तुम बिलग न मानो तो हम कहैं जैसी कुछ उपाधि कृष्णने ठानी है.

दोहा—दूध दही माखन मही, बचै नहीं ब्रजमाँझ।
ऐसी चोरी करतु हैं, फिरतु भोर अरु साँझ ॥

जहाँ कहीं धरा ढका पाते हैं तहाँसे निधड़क उठा लाते हैं कुछ खाते हैं, कुछ गिराते हैं जो कोई इनके मुखमें दही लगा बतावे तासों उलटकर कहते हैं तूनेई तो लगाया है इस भाँति नित चोरकर आतेथे आज हमने पकड़ पाया सो तुमको दिखाने लाई हैं. यशोदा बोली वीर! तू किसका लड़का पकड़ लाई, कलसे तो घरसे बाहर नहीं निकला मेरा कुँवरकन्हाई. ऐसाही सच बोलती हो? यह सुन और अपनाही बालक हाथमें देख हँसकर लजाय रही; तब यशोदाजीने कृष्णको बुलायके कहा पुत्र! तुम किसीके यहाँ मत जाओ, जो चाहो सो घरमेंसे ले खाओ.

चौपाई।

सुनकै कान्ह कहत तुतराय। मत मैया तु इन्हें पतियाय॥
झूंठी गोपी झूंठो बोलैं। मेरे पीछे लागी डोलैं॥

कभी दोहनी, बछड़ा पकड़ाती हैं कभी घरकी टहल कराती हैं मुझे द्वारे रखवाली बैठाय अपने काजको जाती हैं, फिर झूंठ मूठ आय तुमसे बातें लगाती हैं यों सुन गोपी हरिमुख देख देख मुसकराकर चली गई. आगे एकदिन कृष्ण बलराम सखाओंके संग रेतमें खेलतेथे कि, जो कान्हने मट्टी खाई, तो एक सखाने यशोदासे जा लगाई, वह क्रोधकर हाथमें छड़ीले उठ धाई, माँको रिसभरी आतीदेख मुँह पोंछ डरकर खड़े होरहे. इन्होंने जातेही कहा क्यों रे तूने मट्टी क्यों खाई? कृष्ण डरते काँपते बोले मातु! तुझसे किसने कहा? ये बोली तेरे सखाने, तब मोहनने कोपकर सखासे पूँछा क्यों रे मैंने मट्टी कब खाई? वह भय खाकर बोला भैया! मैं तेरी बात कुछ नहीं जानता क्या कहूंगा ज्योंहीं कान्ह सखासे बतरानेलगे त्योंहीं यशोदाने उन्हें जा पकड़ा तहाँ कृष्ण कहने लगे मैया! तू मत रिसाय कहीं मनुष्य भी मट्टी खातेहैं? वह बोली मैं तेरी अटपटी बात नहीं सुनती जो तू सच्चाहै तो अपना

मुख दिखा ज्योंहीं श्रीकृष्णने मुख खोला त्योंहीं उसमें तीन लोक दृष्टि आया तब यशोदाको ज्ञान हुआ तो मनमें कहने लगी कि मैं बड़ी मूर्ख हों. जो त्रिलोकीके नाथको अपना सुतकर मानती हूं.

इतनी कथा कह श्रीशुकदेवजी राजा परीक्षित्से बोले हे राजा! जब नंदरानीने ऐसा जाना तब हरिने जगत्मोहनी अपनी माया फैलाई; इतनेमें मोहनको यशोदा प्यारकर कंठलगाय घर लेआई.

इति श्रीलल्लूलालकृते प्रेमसागरे विश्वदर्शनोनाम नवमोऽध्यायः ॥ ९ ॥

अध्याय १०.

एक दिन दही मथनेकी बिरियां जान भोरही नंदरानी उठी और सब गोपियोंको जगाय बुलाया वे आय घर झाड़बहार लीपपोत अपनी२ मथानियां लेले दधि मथने लगीं. तहां नंदमहरि भी एक बड़ासा कोरा चरुआ ले इंडुयेपर रख चौकी बिछ नेता और रई मँगाय टटकी टटकी दहेड़ियाँ बाँछ बाँछ राम कृष्णके लिये बिलोवन बैठी. तिससमय नंदके घर ऐसा शब्द दही मथनेका होरहाथा कि, जैसे मेघ गर्जताहो इतनेमें कृष्ण जागे रोरोकै मैया२कर पुकारने लगे. जब उनका पुकारना किसीने न सुना, तब आपही यशोदाके निकट आये और आँखें डबडबाय अनमने हो सुसक सुसक तुतलाय २कहने लगे. कि, माँ तुझे कईबेर बुलाया, पर मुझे कलेवा देने न आई. तेरा काज अबतक नहीं निबडा. इतना कह मचल

पड़े और रई चरुएसे निकाल दोनों हाथ डाल लगे माखन काढ़ काढ़ फेंकने अंग लथेड़ने और पाँव पटक पटक आँचल खेंच खेंच रोने. तब नंदरानी घबराय झुझलायके बोली बेटा ! यह क्या चाल निकाली.

चौपाई ।

चल उठ तुझे कलेऊदेऊं। कृष्ण कहैं अबमैं नहिं लेऊं॥
पहिले क्योंनहिं दीन्होमाय। अवतो मेरीलेइ बलाय॥

निदान यशोदाने फुसलाय प्यारसे मुह चूम गोदमें उठालिया और दधि माखन रोटी खानेको दिया हरि हँस हँस खातेथे नंदमहरि अंचलकी ओट किये खिलारहीथी इसलिये कि मत किसीकी दीठ लगे, इस बीच एक गोपीने आके कहा कि तुम तो यहां बैठी हो वहाँ चूल्हेपरसे सब दूध उफनगया यह सुनतेही झट कृष्णको गोदसे उतार उठ धाई और जाके दूध बचाया यहाँ कान्ह दही महीके भाजन फोड़ रई तोड माखन भरी कमोरी ले ग्वालबालोंमें दौड आये, एक ऊखल औंधा धरा पाया तिसपर जाबैठे और चारों ओर सखाओंको बैठाय लगे आपसमें हँस हँस बांट बांट माखन खाने इसमें यशोदा दूध उतार आय देखे तो आंगन और तिबारेमें दही महीकी कीच होरहीहै. तब तो शोचसमझ हाथमें छड़ी ले निकली. और ढूँढती २ वहाँ आई, जहाँ श्रीकृष्ण मंडली बनाय माखन खाय खिलाय रहेथे. जातेही पीछेसे जा धरा तो हरि माको देखतेही रोकर हाहा खाय लगे कहने कि माँ गोरस किसने लुड़ाया, मैं नहीं जानूं, मुझे छोड़दे ऐसे दीनवचन सुन यशोदा हँसकर हाथसे छड़ी डाल और आनंदमें मग्न हो रिसके मिस कण्ठ लगाय, कृष्णको ऊखलीसे बाँधने लगी, तब श्रीकृष्णने ऐसा किया कि जिस रस्सीसे बाँधे वही छोटी होय यशोदाने सारे घरकी रस्सी मँगाई तोभी श्रीकृष्ण बाँधे न गये निदान माँको दुःखित जान आपही बँधाई दिये. नंदरानी बाँध गोपियोंको खोलनेकी सौंह दे फिर घरकी टहल करने लगी.

इति श्रीलल्लूलालकृते प्रेमसागरे दामबंधनो नाम दशमोऽध्यायः ॥ १० ॥

अध्याय ११.

श्रीशुकदेवजी बोले हे राजा! श्रीकृष्णचंद्रको बँधे बँधे पूर्वजन्मकी सुधि आई कि कुबेरके बेटोंको नारदने शाप दिया है, तिनका उद्धार किया चाहिये, यह सुन राजा परीक्षितने श्रीशुकदेव जीसे पूँछा महाराज! कुबेरके पुत्रोंको नारदमुनिने कैसे शाप दिया? सो समझायके कहो– शुकदेवमुनि बोले नल कूबर नाम कुबेरके दो लडके कैलासमें रहतेथे सो शिवकी सेवाकर अति धनवान् हुए एकदिन स्त्रियाँ साथ ले वे वनविहारको गये वहाँ जाय मद पी मदमाते भये, तब रानियोंके समेत [illegible] गंगामें न्हानेलगे और गलबहियां डाल डाल अनेक अनेक भाँतिकी कलोलें करने लगे कि इतनेमें तहाँ नारद मुनि आ निकले उन्हें देखतेही रानियोंने तो निकल कपड़े पहने और ये मतवारे वहीं खडे रहे उनकी दशा देख मनमें नारदजी कहनेलगे कि, इनको धनका गर्व हुआ है इसीसे मदमाते हो काम क्रोधको सुखकर मानते हैं. निर्धन मनुष्यको अहंकार नहीं होता और धनवानको धर्म अधर्मका विचार कहाँ है? परंतु मूर्ख झूठी देहसे मोहकर भूले संपत्ति कुटुंब देखके फूले और साधुजन धनमद मनमें न आने, संपत्ति विपत्ति एकसम माने; इतना कह नारदमुनिने उन्हें शाप दिया कि इस पापसे तुम गोकुलमें जा वृक्ष होओ. जब श्रीकृष्ण अवतार लेंगे तब तुम्हें मुक्ति देंगे ऐसा नारदमुनिने उन्हें शाप दिया. तिसीसे वे गोकुलमें आ वृक्ष हुए तब उनका नाम यमलार्जुन हुआ.

इतनी कथा कह श्रीशुकदेवजी बोले महाराज ! इस बातकी सुरत कर श्रीकृष्ण ओखलीको घसीट वहाँ लेगये, जहाँ यमलार्जुन पड़ेथे, जातेही उन दोनों तरुवरोंके बीच ऊखलको आड़-डाल एक ऐसा झटका मारा कि वे दोनों जडसे उखड़पड़े और उनसे दो पुरुष अति सुंदर निकल हाथ जोड स्तुति कर कहने लगे हे नाथ ! तुम बिन हमसे महापापियोंकी सुध कौन ले ? श्रीकृष्ण बोले सुनो ! नारदमुनिने तुमपर बडी दया की जो गोकुलमें मुक्ति दी उनकी कृपासे तुमने मुझे पाया अब वर माँगो जो तुम्हारे मनमें हो. यमलार्जुन बोले दीनानाथ ! यह नारदमुनिजीकीही कृपा है, जो आपके चरण परसे और दर्शन किया. अब हमें किसी वस्तुकी इच्छा नहीं पर इतनाही दीजे जो सदा तुम्हारी भक्ति हृदयमें रहै. यह सुन वर दे हँसकर श्रीकृष्णचंद्रने तिन्हें बिदा किया.

इति श्रीलल्लूलालकृते प्रेमसागरे यमलार्जुनमोक्षोनाम एकादशोऽध्यायः ॥ ११ ॥

अध्याय १२.

श्रीशुकदेवमुनि बोले हे राजा ! जब वे दोनों तरु गिरे तब उनका शब्द सुन नंदरानी घबराकर दौड़ी वहाँ आई जहाँ कृष्णको ऊखलमें बाँधगईथी. और उनके पीछे सब गोपी ग्वाल भी आये जब श्रीकृष्णको वहाँ न पाया तब व्याकुल हो यशोदा मोहन मोहन पुकारती और कहती चली. कहाँ गया बँधाथा? भाई ! कहीं किसीने देखा मेरा कुँवरकन्हाई. इतनेमें सोहींसे आ एक बोली ब्रजनारी, कि दोपेड़ गिरे तहाँ बचे मुरारी. यह

सुन सब आगे जाय देखें तो सचही वृक्ष उखड़े पड़ेहैं, और कृष्ण तिनके बीच ओखलीसे बँधे सिकुड़े बैठेहैं. जातेही नंदमहरिने ऊखलसे खोल कान्हको रोके गले लगालिया और सब गोपियाँ डरा जान लगीं चुटकी ताली देदे हँसाने तब नंद उपनंद आपसमें कहनेलगे कि ये युगानुयुगके रूख जमेहुए कैसे उखड़ पड़े? यह बड़ा अचंभा जीमें आताहै. कछु भेद इनका समझा नहीं जाता. इतना सुनके एक लड़केने पेड गिरनेका व्योरा ज्योंका त्यों कहा; पर किसीके जीमें न आया; एक बोला ये बालक इस भेदको क्या समझें. दूसरेने कहा कदाचित् यही हो हरिकी गति कौन जाने ऐसी अनेक अनेक भाँतिकी बातें कर श्रीकृष्णको ले सब आनन्दसे गोकुलमें आये तब नंदजीने बहुतसा दान पुण्य किया. कितनेएक दिन बीते कृष्णका जन्मदिन आया तो यशोदा रानीने सब कुटुंबको नोत बुलाया. और मंगलाचार कर वर्षगांठ बाँधी जब सब मिलि जेंवन बैठे तब नंदराय बोले सुनो भैया! अब इस गोकुलमें रहना कैसे बने, दिन दिन होने लगे उपद्रव घने. चलो कहीं ऐसी ठौर जावें जहाँ तृण जलका सुख पावें. उपनंद बोले, वृंदाबन जाय बसिये तो आनंदसे रहिये. यह वचन सुन नंदजीने सबको खिलाय पिलाय पान दे बैठाया व त्योंहीं एक ज्योतिषीको बुलाय यात्राका मुहूर्त्त पूंछा उसने विचारके कहा इस दिशाकी यात्राको कलका दिन अति उत्तम है. वामयोगिनी पीछे दिशाशूल और सन्मुख चंद्रमा है आप निःसंदेह भोरही प्रस्थान कीजे. यह सुन तिस समय तो गोपी ग्वाल अपने अपने घर गये पर सबेरही उठ अपनी अपनी वस्तु भाँडे गाडों-पर लाद आ इकट्ठे भये तब कुटुंबसमेत नंदजी भी साथ होलिये और चले चले नंदजी उधर साँझ समय जा पहुँचे. वृंदादेवीको मनाय वृंदावन बसाया; तहाँ सब सुख चैनसे रहने लगे, जब श्रीकृष्ण पाँच वर्षके हुए तब माँसे कहने लगे कि, माँ मैं बछडे चरावने जाऊंगा. तू बलदाऊसे कहदे कि मुझे वनमें अकेला न छोडैं, वह बोली पूत! बछडे चरावनेवाले बहुत हैं दास तुम्हारे, तुम मत पल ओट हो मेरे नयनोंके आगेसे प्यारे. कान्ह बोले जो मैं वनमें खेलने जाऊंगा तो खानेको खाऊंगा नहीं तो

नहीं. यह सुन यशोदाने ग्वालबालोंको बुलाय कृष्ण बलरामको सौंपकर कहा कि, तुम बछडे चरावने दूर मत जाइयो; और साँझ न होते दोनोंको संग ले घर आइयो वनमें इन्हें अकेले मत छोडियो साथही साथ रहियो तुम इनके रखाले हो ऐसे कह कलेवा दे राम कृष्णको उनके संग करदिया. वे जाय यमुनाके तीर बछडे चराने लगे. और ग्वालबालोंमें खेलने लगे कि, इतनेमें कंसका पठाया कपटरूप किये वत्सासुर आया उसे देखतेही सब बछडे डरकर जिधर तिधर भागे, तब श्रीकृष्णजीने बलदेवजीको सैनसे चिताया, कि भाई ! यह कोई राक्षस आया ज्योंही आगे चरता चरता वह घात करनेको निकट पहुँचा त्योंही श्रीकृष्णने पिछले पाँव पकड़ फिरायकर ऐसा पटका कि उसका जी घटसे निकल सटका.

वत्सासुरका मरना सुन कंसने बकासुरको भेजा वह वृन्दावनमें आके अपनी घात लगाय यमुनाके तीरपर बक सम जा बैठा उसे देख मारे भयके ग्वालबाल कृष्णसे कहने लगे कि भैया ! यह तो कोई राक्षस बगुला बन आयाहै, इसके हाथसे कैसे बचेंगे ? ये तो इधर कृष्णसे यों कहतेहीथे और उधर वह जीमें यह विचारता था कि, आज इसे बिनामारे न जाऊंगा. इतनेमें जो श्रीकृष्ण उसके निकट गये तो उसने इन्हें चोंचमें उठाय मुँह मूंद लिया. ग्वालबाल व्याकुल हो चारोंओर देख रोरो पुकार पुकार लगे कहने. हाय ! हाय !! यहाँ तो हलधर भी नहीं हैं ! हम यशोदासे क्या जाय कहेंगे? इनको अतिदुःखित देख श्रीकृष्ण ऐसे ताते हुये कि, वह मुखमें रख न सका. जो उसने इन्हें उगला तो इन्होंने उसकी चोंच पकड़ ओंठ पाँवतले दबाय चीरडाला और बछड़े घेर सखाओंको साथ ले हँसते खेलते घर आये.

इति श्रीलल्लूलालकृते प्रेमसागरे वत्सासुर-बकासुरवधोनाम द्वादशोऽध्यायः ॥ १२ ॥

अध्याय १२.

श्रीशुकदेवमुनि बोले सुनो महाराज ! प्रात होतेही एकदिन श्रीकृष्ण बछडे चरावने वनको चले तिनके साथ सब ग्वालबाल भी अपने अपने घरसे छाक लेले होलिये और हारमें जाय छाक धर बछरू चरनेको छोड, लगे खरी गेरू तनमें चित्रविचित्र लगाने व वनके फल फूलोंके गहगेबनाय बनाय पहन पहन खेलने और पशु पक्षियोंकी बोली भाँतिभाँतिके कुतूहल कर नाचने गाने. इतनेमें कंसका पठाया अघासुरनाम राक्षस आया, सो अतिबडा अजगर हो मुँह पसार बैठा व सब सखाओं समेत श्रीकृष्ण भी खेलते खेलते वहीं जा निकले. जहाँ वह घात लगाय मुँह बाये बैठाथा. ये दूरते उसे देख ग्वालबाल आपसमें लगे कहने कि भाई! यह तो कोई पहाड है कि जिसकी कंदरा इतनी बडी है. ऐसे कहते और बछडा चराते चराते उसके पास पहुँचे तब एक लडका उसका मुख देख बोला, भाई ! यह तो कोई अति भयावनी गुफा है. इसके भीतर न जावेंगे. हमें देखतेही भय लगताहै. फिर तोषनाम सखा बोला चलो इसमें धस चलैं कृष्णसाथ रहते हम क्या डरें ? जो कोई असुर होगा तो बकासुरकी रीतिसे मारा जायगा.

यों सब सखा खडे बातें कहतेही थे कि, उसने एक ऐसी लंबी श्वास खैंची कि बछडा समेत सब ग्वालबाल उडके उसके मुखमें जा पडे विषभरी ताती बाफ जो लगी तो लगे व्याकुल हो बछडे रांभने और सखा पुकारने कि हे कृष्ण प्यारे ! वेग सुध ले नहीं तो सब जले मरतेहैं.

उनकी पुकार सुनतेही आतुर हो श्रीकृष्ण भी उसके मुखमें आ पडगये उसने प्रसन्न हो मुँह मूँद लिया; तब श्रीकृष्णने अपना शरीर इतना बढ़ाया कि, उसका पेट फटगया. सब बछरू और ग्वालबाल निकल पड़े. तिस समय आनन्दकर देवताओंने फूल और अमृत बरसाय सबकी तपन हरली तब ग्वालबाल श्रीकृष्णसे कहने लगे कि, भैया ! इस असुरको मार आज तो तूने भले बचाये नहीं तो सब मरचुकेथे.

इति श्रीलल्लूलालकृते प्रेमसागरे अघासुरवधो नाम त्रयोदशोऽध्यायः ॥ १३ ॥

अध्याय १४.

श्रीशुकदेवमुनि बोले हे राजा ! ऐसे अघासुरको मार श्रीकृष्णचंद्र बछडे घेर सखाओंको साथ ले आगे चले. कितनी एक दूर जाय कदंबकी छाँहमें खडे हो वंशी बजाय सब ग्वालबालोंको बुलायकर कहा भैया ! यह भली ठौर है. इसे छोड आगे कहाँ जायँ ? बैठो यहीं छाकें खायँ; सो सुनतेही उन्होंने बछडे तो चरनेको हाँक दिये और आप आक ढाक, बड, कदंब, कमलके पाता लाय पत्तलें दोने बनाय झार बुहार श्रीकृष्णके चारोंओर पाँतिकी पाँति बैठ गये और अपनी अपनी छाकें खोल खोल लगे आपसमें परोसने, जब परोसचुके तब श्रीकृष्णचंद्रने सबके बीच खडे हो पहले आप कौर उठाय खानेकी आज्ञा दी वे खाने लगे. तिनमें मोर मुकुट धरे बनमाला गलेमें पहने लकुट लिये त्रिभंगी

छबिकिये पीतांबर पहने पीतपट ओढे हँस हँस श्रीकृष्ण भी अपनी छाकसे सबको खिलातेथे और आप एक एकके पनवारेसे उठाय उठाय चाख चाख खट्टे मीठे तीते चरपरेका स्वाद कहते जातेथे व उस मंडलीमें ऐसे सुहावने लगतेथे कि, जैसे तारोंमें चंद्रमा; तिस समय ब्रह्मादि सब देवता अपने २ विमानोंमें बैठे आकाशसे ग्वालमंडलीका सुख देखते थे इतनेमें ब्रह्मा आय सब बछड़े चुराय लेगया वहाँ ग्वालबालोंने खाते २ चिंताकर श्रीकृष्णसे कहा भैया ! हम तो निश्चिंताईसे बैठे खाय रहेहैं, न जानिये बछड़े कहाँ निकल गये होयँगे.

चौपाई।

तब ग्वालनसों कहत कन्हाई। तुमसब जेंवतरहियो भाई ॥
जनि कोउ उठै करै औसेर। सबके बछरे ल्याऊं घेर ॥

ऐसे कह कितनी एक दूर वनमें जाय जब जाना कि, यहाँसे बछड़े ब्रह्मा हर लेगया तब श्रीकृष्ण वैसेही और बनाय लाये यहाँ आय देखे तो ग्वालबालोंको भी उठाय लेगयाहै फिर उन्होंने जैसे थे तैसेही बनाय और साँझ हुई जान सबको साथ ले वृंदावन आये सब ग्वालबाल अपने अपने घर गये पर किसीने यह भेद न जाना कि ये हमारे बालक और बछड़े नहीं बरन् और भी दिन दिन माया बढ़ती चली.

इतनी कथा सुनाय श्रीशुकदेवजी बोले महाराज! वहाँ ब्रह्मा ग्वालबाल बछड़ोंको लेजाय एक पर्वतकी कंदरामें भर उसके मुहँपर एक पत्थरकी शिला धर भूलगया. और यहाँ श्रीकृष्णचंद्र नित नई नई लीला करतेथे. इसमें एक वर्ष बीतगया. तब ब्रह्माको सुध हुई तो मनमें कहने लगा कि मेरा तो एक पलभी न हुआ पर नरका वर्ष होगया. इससे अब चल देखा चाहिये कि ब्रजमें ग्वालबाल बछड़ों बिन क्या गति भई यह विचार उठकर वहाँ आया, जहाँ कंदरामें सबको मूँद गयाथा. शिला उठाय देखे तो लड़के और बछड़े घोर निद्रामें सोये पड़ेहैं. वहाँसे चल वृंदावनमें आय बालक और बछरू सब ज्योंके त्यों देख अचंभेमें हो कहने लगा कैसे ग्वाल बछड़े यहाँ आये ? कैसे कृष्ण नये उपजाये. इतना कह

फिर कंदराको देखने गया. जितनेमें वह वहाँसे देखकर आवे तितनेबीच यहाँ श्रीकृष्णने ऐसी माया करी कि जितने ग्वाल बाल और बछड़े थे सब चतुर्भुज होगये और एक एकके आगे ब्रह्मा, रुद्र, इंद्र हाथजोड़े खड़े हैं.

चौपाई।

देखविरंचि चित्रसो भयो। भूलो ज्ञान ध्यान सब गयो॥
जनुपषाणदेवी चौमुखी। भई भक्ति पूजाबिन दुखी॥

और डरकर नयन मूँद लगा थरथर काँपने जब अंतर्यामी श्रीकृष्णचन्द्रने जाना कि, ब्रह्मा अतिव्याकुल है, तब सबका अंश हरलिया और आप अकेले रहगये ऐसे कि, जैसे भिन्न भिन्न बादल एक होजाय.

इति श्रीलल्लूलालकृते प्रेमसागरे ब्रह्मावत्सहरण-श्रीकृष्ण-मायाकरणो नाम चतुर्दशोऽध्यायः ॥ १४ ॥

अध्याय १५.

श्रीशुकदेवजी बोले हे राजा! जब श्रीकृष्णने अपनी माया उठाली तब ब्रह्माको अपने शरीरका ज्ञान हुआ तो ध्यान कर भगवान्के पास आ अतिगिड़गिड़ाय पाँवों पड़ विनती कर हाथ बाँध खड़ाहो कहने लगा कि, हे नाथ! तुमने बडी कृपा करी जो मेरा गर्व दूर किया. इसीसे अंधा होरहाथा. ऐसी बुद्धि किसकी है जो विनदया तुम्हारी तुम्हारे

चरित्रोंको जाने तुम्हारी माया सबको मोहे है. ऐसा कौन है कि, जो तुम्हें मोहे तुम सबके कर्त्ता हो. तुम्हारे रोमरोममें मुझसे ब्रह्मा अनेक पड़े हैं मैं किस गिनतीमें हूं? दीनदयालु! अब दया कर अपराध क्षमा कीजे. मेरा दोष चित्तमें न लीजे.

इतना सुन श्रीकृष्णचंद्र मुसकराये तब ब्रह्माने सब ग्वालबाल और बछड़े सोते लादिये और लज्जित हो स्तुतिकर अपने स्थानको गया. जैसी मंडली आगेथी तैसीहीं बनगई वर्ष दिन बीता सो किसीने न जाना. जो ग्वालबालोंकी नींदगई, तो श्रीकृष्ण बछरू घेरलाये, तब तिनमेंसे लड़के बोले भैया! तू तो बछड़े बेग ले आया, हम भोजन करने भी न पाया.

सुनत वचन हँस कहत विहारी। मोको चिंता भई तिहारी ॥
निकट चरत इक ठौरे पाए। अब घर चलो भोरके आए ॥

ऐसे आपसमें बतराय बछरुओंको ले सब हँसते खेलते अपने अपने घर आये.

इति श्रीलल्लूलालकृते प्रेमसागरे ब्रह्मास्तुतिकरणोनाम पंचदशोऽध्यायः ॥ १५ ॥

अध्याय १६.

श्रीशुकदेवजी बोले हे महाराज! जब श्रीकृष्ण आठ वर्षके हुए तब एक दिन उन्होंने यशोदासे कहा कि, माँ मैं गायें चरावन जाऊंगा, तू

बाबासे समझाय कर कह मुझे ग्वालोंको साथ पठायदें. सुनतेही यशोदाने नंदजीसे कहा उन्होंने शुभ मुहूर्त ठहराय ग्वालबालोंको बुलाय कार्त्तिक सुदी आठैको राम कृष्णसे खरक पुजवाय विनतीकर ग्वालोंसे कहा कि, भाइयो! आजसे गौ चरावन अपने साथ राम कृष्णको भी लेजाया करो, पर इनके पासही रहियो; वनमें अकेले न छाँडियो. ऐसे कह छाकदे कृष्ण बलरामको दहीका तिलक कर सबके संग बिदा किया. वे मग्न हो ग्वालबालोंसमेत गायें लिये बनमें पहुँचे वहाँ बनकी छबी देख श्रीकृष्ण बलरामजीसे कहने लगे दाऊ! यह तो अति मनभावनी सुहावनी ठौर है देखो! कैसे वृक्ष झुक रहे हैं और भाँति भाँतिके पशु पक्षी कलोलें करतेहैं. ऐसे कह एक ऊँचे टीलेपर जाचढे और लगे दुपट्टा फिराय फिराय कारी, गोरी, पीरी, धौरी, धूमरी, भूरी, नीली, कह कह पुकारने सुनतेही सब गायें राँभती हाँफती दौड आईं; तिस समय ऐसी शोभा होरही थी कि, जैसे चहूँ ओरसे वर्ण वर्णकी घटा घिर आई होयँ. फिर श्रीकृष्णचंद्र गोचरावनेको हाँक भाईके साथ छाक खाय कदंबकी छाँहमें एक सखाकी जाँघपर शिरधर सोगये कितनी एक बेरमें जो जागे तो बलरामजीसे कहा–

चौ०–दाऊ सुनो खेल यह करैं। न्यारो कटक बाँधके लरैं॥

इतना कह आधी आधी गायें और ग्वालबाल बाँट लिये फिर बनके फल फूल तोड़ झोलियोंमें भर भर लगे तुरही, भेरी, भोंपू, डफ, ढोल, दमामें, मुखहीसे बजाय २ लड़ने और मार मार पुकारने. ऐसे कितनी एक बेरतक लड़े फिर अपनी अपनी टोली निराली ले गायें चरावने लगे. इसबीच बलदेवजीसे किसी सखाने कहा महाराज! यहाँसे थोड़ीही दूर एक तालवन है, तिसमें अमृत समान फल लगेहैं. वहाँ गधेके रूप एक राक्षस रखवाली करताहै. इतनी बात सुनतेही बलरामजी ग्वालबालोंसमेत उस वनमें गये. और लगे ईंट, पत्थर, ढेला, लाठियाँ मार मार फल झाड़ने तिसका शब्द सुनकर धेनुकनाम खर रेंकता आया और

उसने आतेही फिरकर बलदेवजीकी छातीमें एक दुलत्ती मारी, तब इन्होंने उसे उठायकर देपटका फिर वह लोट पोटके उठा और धरती खूंदखूंद कान दबाय हट हट दुलत्तियाँ झाड़नेलगा. इस तरह बड़ी बेरलग लड़ता रहा. निदान बलरामजीने उसकी दोनों पिछली टाँगें पकड़फिरायकर एक ऊंचे पेड़पर फेंका कि गिरतेही मरगया और उसके साथ वह रूख भी टूट पड़ा दोनोंके गिरनेसे अतिभारी शब्दहुआ व सारे वनके वृक्ष हल उठे.

चौपाई।

देख दूरसों कहत मुरारी। हाले रूख शब्द भयो भारी॥
तबहिं सखा हलधरके आये। चलहु कृष्ण तुम वेग बुलाये॥

एकअसुर मारा है सो पड़ा है इतनी बातके सुनतेही श्रीकृष्ण भी बलरामजीके पास जा पहुँचे तब धेनुकके साथी जितने राक्षस थे सो सब चढ आये तिन्हें श्रीकृष्णचंद्रजीने सहजही मार गिराया. तब तो सब ग्वालबालोंने प्रसन्नहो निधड़क फलतोड़ मनमानती झोलियाँ भरलीं और गायें घेर लाय श्रीकृष्णजीने बलदेवजीसे कहा महाराज! बड़ीबेरसेआयेहैं अब घरको चलिये इतना वचन सुनतेही दोनों भाई गायेंलिये ग्वालबालोंसमेत हँसते खेलते साँझको घर आये और जो फल लायेथे सो सारे वृंदावनमें बटवाय सबको बिदा दे आप सोये. फिर भोरके तड़के उठतेही श्रीकृष्ण ग्वालबालोंको बुलाय कलेऊकर गायें ले वनको गये. और गौ चराते चराते कालीदह जा पहुँचे वहाँ ग्वालोंने गायोंको यमुनामें पानी पिलाया और आप भी पिया जो जल पी वहाँसे उठे तो गायोंसमेत मारे विषके सब लोटगए तब श्रीकृष्णचंद्रने अमृतकी दृष्टिसे देख सबोंको जिवाया.

इति श्रीलल्लूलालकृते प्रेमसागरे धेनुकासुरवधोनाम षोडशोऽध्यायः॥ १६॥

अध्याय १७.

अथ नागलीलाप्रारम्भः।

श्रीशुकदेवजी बोले महाराज! ऐसी सबकी रक्षाकर श्रीकृष्ण ग्वाल-बालोंके साथ गेंद खेलने लगे. और जहाँ कालिया था तहाँ चारकोशतक यमुनाका जल उसके विषसे ऐसा खौलताथा कि, कोई पशु पक्षी वहाँ न जा सकता. जो भूलकर जाता सो लपटसे झुलस दहमें गिरपड़ता और तीरमें कोई रूख भी न उपजता, एक अविनाशी कदंब तटपर था सोई था. राजाने पूंछा महाराज! वह कदंब कैसे बचा? मुनि बोले एक समय अमृत चोंचमें लिये गरुड़ उस पेड़पर आ बैठाथा, तिसके मुँहसे एक बूंद गिराथा इसलिये वह रूख बचा.

इतनी कथा सुनाय श्रीशुकदेवजीने राजापरीक्षितसे कहा महाराज! श्रीकृष्णचंद्रजी कालियाका मारना जीमें ठान गेंद खेलते खेलते कदंबपर जा चढे और जो नीचेसे सखाने गेंद चलाया तो यमुनामें गिरा उसके साथ श्रीकृष्ण भी कूदे. इतनेमें कूदनेका शब्द कानसे सुनकर वह कालिया विष उगलने लगा और अग्निसम फुंकार मार मार कहने लगा कि, यह ऐसा कौन है जो अबलग दहमें जीताहै. कहीं अक्षयवृक्ष तो मेरा तेज न सहिके टूट पड़ा कि कोई बड़ा पशु पक्षी आयाहै जो अबतक जलमें आहट होताहै. यों कह वह एकसौ दशों फणोंसे विष उगलने लगा और श्रीकृष्ण पैरते फिरते थे

तिस समय सखा रोरो हाथ पसार पसार पुकारतेथे. गायें मुँह बाये चारों ओर रांभती हूंकती फिरतीथीं ग्वाल न्यारेही कहते थे. श्याम वेग निकल आइये. नहीं तुम बिन घर जाय, हम क्या उत्तर देंगे? ये तो यहाँ दुःखित हो यों कह रहे . इतनेमें किसीने वृंदावनमें जा सुनाया कि, श्रीकृष्ण कालीह्रदमें कूद पड़े यह सुन रोहिणी यशोदा और नंद गोपी गोपसमेत रोते पीटते उठ धाये और सबके सब गिरते पड़ते, कालीह्रद आये. तहाँ श्रीकृष्णको न देख व्याकुलहो नंदरानी दौड़ गिरने चली पानीमें तब, गोपियोंने बीचही जा पकड़ा और ग्वालबाल नंदजीको थामें ऐसा कह रहेथे–

चौपाई।

छाँड महाबन यावन आये। तौहूंदैत्यन अधिक सताये॥
बहुत कुशल असुरनते करी। अब क्यों दहते निकसत हरी॥

कि इतनेमें पीछेसे बलदेव जी भी वहाँ आये. और सब ब्रजवासियोंको समझायकर बोले. अभी आवेंगे कृष्ण अविनासी, तुम काहेको होत उदासी.

चौ०–आजसाथ आयों मैं नाहीं। मोबिन हरि पैठे दहमाहीं॥

इतनी कथा कह श्रीशुकदेवजी राजापरीक्षितसे कहने लगे कि, महाराज! इधर तो बलरामजी सबको यों आशा भरोसा देतेथे और उधर श्रीकृष्ण जो पैरकर उसके पास गये तो वह आ इनके सारे शरीरमें लिपट गया. तब श्रीकृष्ण ऐसे मोटे हुए कि उसे छोड़तेही बन आया. फिर ज्यों ज्यों वह फुंकारे मार मार इनपर फण चलाताथा, त्यों त्यों ये अपनेको बचातेथे निदान ब्रजवासियोंको अतिदुःखित जान, श्रीकृष्ण एकाएकी उचक उसके शिरपर जाचढे.

दोहा–तीनलोकको बोझ ले, भारी भये मुरारि।
फण फणपर नाचतफिरे, बाजे पगपटतारि॥

तब तो मारे बोझके काली मरने लगा. और फण पटक पटक उसने जीभें निकालदीं. तिनसे लोहूकी धार बहचली जब विष और बलका गर्व

गया तब उसने मनमें जाना कि आदिपुरुषने अवतार लिया. नहीं तो इतनी किसमें सामर्थ्य है जो मेरे विषसे बचे. यह समझ जीवकी आश तज शिथिल होरहा. तब नागपत्नीने आय हाथ जोड़ शिर नवाय विनती कर श्रीकृष्णचंद्रसे कहा महाराज! आपने भला किया जो इस दुःखदायी अति अभिमानीका गर्व दूर किया. अब इसके भाग्य जागे. जो तुम्हारा दर्शन पाया. जिन चरणोंको ब्रह्मादि सब देवता जप तप कर ध्यावते हैं, सोई पद कालीके शीशपर विराजतेहैं. इतना कह फिर बोली महाराज! मुझपर दयाकर इसे छोड़ दीजे नहीं तो इसके साथ मुझे भी वध कीजे. क्योंकि स्वामी बिन स्त्रीको मरणही भला है. और जो विचारिये तो इसका भी कुछ दोष नहीं यह जातिस्वभाव है कि दूध पिलाये विष बढे.

इतनी बात नागपत्नीसे सुन श्रीकृष्णचंद्र उसपरसे उतर पड़े. तब प्रणाम कर हाथ जोड़ काली बोला नाथ! मेरा अपराध क्षमा कीजे. मैंने अनजाने आपपर फण चलाये. हम अधमजाति सर्प हमें इतना ज्ञान कहाँ जो तुम्हें पहिचाने? श्रीकृष्ण बोले भला जो हुआ सो हुआ पर अब तुम यहाँ न रहो. कुटुंब समेत रमणकद्वीपमें जा बसो. यह सुन कालीने डरते काँपते कहा कृपानाथ! वहाँ जाऊं तो गरुड़ मुझे खा जायगा. उसके भयसे मैं यहाँ भाग आयाहूं. श्रीकृष्ण बोले अब तू निर्भय चलाजा हमारे पदके चिह्न तेरे शिरपर देख तुझसे कोई न बोलेगा. ऐसे कह श्रीकृष्णचंद्रजीने तिसीसमय गरुड़को बुलाय कालीके मनका भय मिटाय दिया. तब कालीने धूप, दीप, नैवेद्य समेत विधिसे पूजाकर बहुतसी भेंट श्रीकृष्णके आगे धर हाथ जोड़ विनतीकर विदाहो कहा.

चौ०—चारघरीनाचे मोमाथा। यहमन प्रीतिराखियोनाथा॥

यों कह दंडवत् कर काली तो कुटुंबसमेत रमणकद्वीपको गया और श्रीकृष्णचन्द्र जलसे बाहर आये.

इति श्रीलल्लूलालकृते प्रेमसागरे कालीमर्दनो नाम सप्तदशोऽध्यायः ॥ १७ ॥

अध्याय १८.

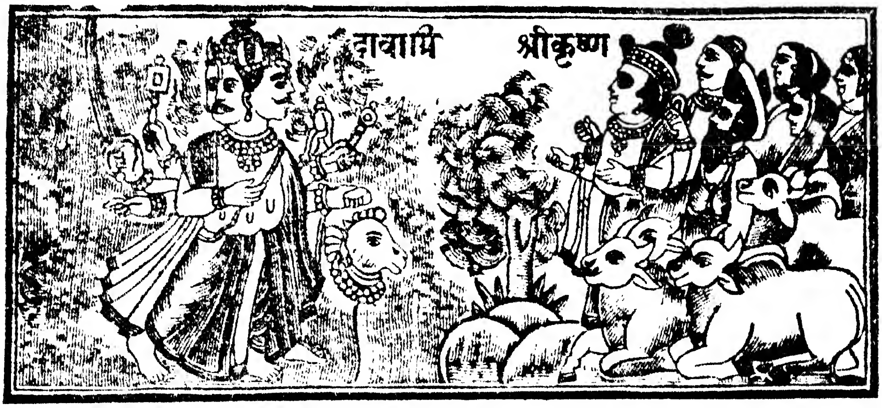

इतनी कथा सुन राजा परीक्षितने श्रीशुकदेवजीसे पूछा महाराज! रमणकद्वीप तो भली ठौरथी काली वहाँसे क्यों आया? और किसलिये यमुनामें रहा यह मुझे समझाकर कहो. जो मेरे मनका संदेह जाय. श्रीशुकदेवजी बोले राजा! रमणकद्वीपमें हरिका वाहन गरुड़ रहता है सो अति बलवान् है तिससे वहाँके बड़े बड़े सर्पोंने हार मान उसे एक साँप नित देना, कहा नित एक रूखपर धर आवें, वह आवे और खाजाय. एक दिन कद्रूका पुत्र काली अपने विषका घमंडकर गरुड़का भक्ष्य खाने गया. इतनेमें वहाँ गरुड़ आया और दोनोंमें अति युद्ध हुआ. निदान हार मान काली अपने मनमें कहने लगा कि अब इसके हाथसे कैसे बचूं और कहाँ जाऊं? इतना कह सोचा कि, वृंदावनमें यमुनाके तीर जा रहूं तो बचूं क्योंकि यह वहाँ नहीं जा सकता. ऐसे विचार काली वहीं गया. फिर राजा परीक्षितने श्रीशुकदेवमुनिसे पूँछा कि महाराज! वह गरुड वहाँ क्यों नहीं जा सकताथा, सो भेद समझाकर कहो. शुकदेवजी बोले हे राजा! किसी समय वहाँ यमुनाके तट सौभरिऋषि बैठे तप करतेथे तहाँ गरुड़ने जाय एक मछली मार खाई तब ऋषिने क्रोधकर उसे यह शाप दिया कि, तू इस ठौर फिर आवेगा तो जीता न रहेगा. इस कारण वह वहाँ न जा सकताथा. और जबसे काली वहाँ गया तभीसे उस थलका नाम कालीदह होगया.

इतनी कथा सुनाय श्रीशुकदेवजी बोले हे राजा ! जब श्रीकृष्णचन्द्र निकले तब नंद यशोदाने आनंदकर बहुतसा दान पुण्य किया पुत्रका मुख देख नयनोंको सुखदिया. और सब ब्रजवासियोंके भी जीमें जी आया. इस बीच साँझ हुई तो आपसमें कहने लगे कि, अब दिनभरके हारे थके भूंखे प्यासे घर कहाँ जायँगे रातकी रात यहीं काटें भोर हुए वृंदावन चलेंगे यह कह सब सोय रहे.

चौ०–आधीरात बीत जब गई । भारी कारी आँधी भई ॥
दावा अग्नि लगी चहुँओर । अतिझरबरे वृक्षवनठोर ॥

आग लगतेही सब चौंक पड़े और घबराय कर चारोंओर देख देख हाथ पसार पसार लगे पुकारने कि हे कृष्ण ! हे कृष्ण इस आगसे बेग बचाओ. नहीं तो यह क्षणभरमें सबको जलाय भस्म करती है. जब नंद यशोदा समेत सब ब्रजवासियोंने ऐसा पुकारा तब श्रीकृष्णचंद्रजीने उठतेही वह आग पलमें पीलई सबके मनकी चिंता दूर की; भोर होतेही सब वृंदावन आये, घर घर आनंद मंगल हुये बधाये.

इति श्रीलल्लूलालकृते प्रेमसागरे दावाग्निमोचनो नाम अष्टादशोऽध्यायः ॥ १८ ॥

अध्याय १९.

इतनी कथा कह श्रीशुकदेवजी बोले महाराज अब मैं ऋतु वर्णन करता हूं कि जैसे श्रीकृष्णचंद्रने तिनमें लीला करी सो चित्तदै सुनो.

प्रथम ग्रीष्मऋतु आई तिसने आतेही सब संसारका सुख लेलिया, और धरती आकाशको तपाय अग्निसम किया. पर श्रीकृष्णके प्रतापसे वृंदावनमें सदा वसंतही रहे; जहां घनेवने कुंजोंके वृक्षोंपर बेलें लहलहा रहीं वर्ण वर्णके फूल फूलेहुए तिनपर भौंरोंके झुंड़के झुंड़ गुंजरहे आंबोंकी डालियाँपै कोयल कूक रहीं ठंढीठंढी छायाओंमें मोर नाचरहे. सुगंध लिये मीठी २ पवन बह रही. और बनके एक ओर यमुना न्यारीही शोभा देरहीथी. तहाँ कृष्ण बलराम गायें छोड़ सब सखासमेत आपसमें अनूठे अनूठे खेल, खेल रहेथे, इतनेमें कंसका पठाया ग्वालका रूप बनाय प्रलंबनाम राक्षस आया. उसे देखतेही श्रीकृष्णचंद्रने बलदेवजीको सैनसे कहा.

चौपाई ।

अपनो सखा नहीं बलबीर । कपट रूप यह असुर शरीर ॥
याके वधको करो उपाय । ग्वाल रूप मारो नहिं जाय ॥
जब यह रूप धारिहै अपनो । तबतुम याहि तत्क्षणहनो ॥

इतनी बात बलदेवजीको चिताय श्रीकृष्णजीने प्रलंबको हँसकर पास बुलाय हाथ पकड़के कहा-

चौपाई ।

सबते नीको वेश तिहारो । भलो कपट बनि मित्र हमारो ॥

यों कह उसे साथले आधे ग्वालबाल बाँट लिये और आधे बलरामजीको दे दो लड़कोंको बैठाय लगे फल फूलोंका नाम पूंछने और बताने. इतनेमें बताते २ श्रीकृष्ण हारे बलदेव जीते तब श्रीकृष्णजीकी ओरके ग्वाल बलदेवजीके साथियोंको कांधेपर चढ़ाय २ लेचले. तहाँ प्रलंब बलरामजीको सबसे आगे ले भागा और वनमें जाय उसने अपनी देह बढ़ाई; तिससमय उस काले काले पहाड़सेपर बलदेवजी ऐसे शोभायमान थे जैसे श्यामघटा पै चाँद और कुंडलकी दमक बिजलीसी चमकतीथी. पसीना मेहसा बरसता था. इतनी कथा कह श्रीशुकदेवजीने राजा

परीक्षितसे कहा कि–महाराज! ज्योंहीं अकेले पाय वह बलरामजीको मारनेको हुआ, त्योंहीं उन्होंने मारे घूंसोंके उसे मार गिराया.

इति श्रीलल्लूलालकृते प्रेमसागरे प्रलंबवधोनाम एकोनविंशोऽध्यायः ॥ १९ ॥

अध्याय २०.

श्रीशुकदेवजी बोले–हे राजा! प्रलंबको मारके चले बलराम, तभी सोंहीं सो सखाओं समेत आन मिले घनश्याम. और जो ग्वालबाल बनमें गायें चरातेथे वेभी असुर मारा सुन गाय छोड उधर देखनेको चले तौलौं इधर गायें चरती चरती थाँभ काससे निकल मुंजबनमें बढ़गई; वहाँसे आय दोनों भाई यहाँ देखें तो एक भी गाय नहीं.

चौ०–बिछुरीं गैयां बिछुरे ग्वाल। भूलेफिरे मुंजबनताल ॥
रूखन चढ़ें परस्पर टेरैं। लैंलैं नाम पिछोरी फेरैं ॥

इतनेमें किसी सखाने आय हाथ जोड़ श्रीकृष्णसे कहा कि, महाराज! गायें सब मुंजबनमें पैठगईं तिनके पीछे ग्वालबाल न्यारे ढूँढते भटकते फिरते हैं. इतनी बातके सुनतेही श्रीकृष्णने कदंबपर चढ़ ऊंचे स्वरसे जो

बंशी बजाई तो सुन, ग्वालबाल और सब गायें मुंजबनको फाड़कर ऐसे आन मिलीं जैसे सावन भादोंकी नदी तुंग तरंगको चीर समुद्रमें जामिले. इसबीच देखते क्या हैं कि, बन चारों ओरसे दहड़ दहड़ जलता चला आताहै. यह देख ग्वालबाल और सखा अति घबराय भय खायकर पुकारे हे कृष्ण ! इस आगसे वेग बचाओ. नहीं तो अभी क्षणएकमें सब जले मरते हैं. कृष्ण बोले तुम सब अपनी आँखें मूँदो. जब उन्होंने नयन मूँदे, तब श्रीकृष्णजीने पलभरमें आग बुझाय एक और माया करी कि गायों समेत सब ग्वालबालोंको भाँडीर वनमें ले आये और कहा कि, अब आंखें खोलदो.

चौपाई।

ग्वाल खोलदृग कहतनिहारी। कहाँ गई वह अग्नि मुरारी॥
कब फिर आये बन भंडीर। होत अचंभो यह बलवीर॥

ऐसे कह गायें ले सब मिल कृष्ण बलरामके साथ वृंदावन आये और सबोंने अपने अपने घर जाय कहा कि, आज वनमें बलरामजीने प्रलंब नाम दैत्यको मारा, और मुंजवनमें आग लगीथी सोभी हरिके प्रतापसे बुझगई.

इतनी कथा सुनाय श्रीशुकदेवजीने कहा, हे राजा ! ग्वालबालोंके मुखसे यह बात सुन सब ब्रजवासी उसे देखने गये. पर उन्होंने श्रीकृष्ण-चरित्रका भेद कुछ भी न पाया.

इति श्रीलल्लूलालकृते प्रेमसागरे दावाग्निमोचनो नाम विंशोऽध्यायः॥ २०॥

अध्याय २१.

अथ वर्षाऋतुवर्णनलीलाप्रारंभः।

श्रीशुकदेवमुनि बोले कि, महाराज! ग्रीष्मकी अति अनीति देख नृप मेघ पावस प्रचंड पृथ्वीके पशु पक्षी जीवजंतुकी दया विचार चारों ओरसे दल बादल साथ ले लड़नेको चढ आया तिस समय घन जो गर्जे-ताथा सोई तो धौंसा बाजताथा और वर्ण वर्णकी घटा जो घिर आई थीं सोई शूरवीर रावतथे तिनके बीच बीच बिजलीकी दमक शस्त्रसी चमकती थी. बगलेकी पाँतें ठौर ठौर श्वेत ध्वजासी फहराय रहीथीं. दादुर मोर बन्दी-कीसी भाँति यश बखानतेथे. बड़ी बड़ी बूंदोंकी झड़ी बाणोंकीसी झड़ी लगीथी. इस धूम धामसे पावसको आते देख ग्रीष्म खेत छोड अपना जीव ले भागा. तब मेघ पियाने वरस पृथ्वीको सुख दिया. उसने जो आठ महीने पतिके वियोगमें योग कियाथा, तिसका भोग भरलिया. कुछ गिर शीतल हुए, और गर्भ रहा उसमेंसे अठारह भार पुत्र उपजे, सोभी फल फूल भेंट लेले पिताको प्रणाम करने लगे, उसकाल वृंदावनकी भूमि ऐसी सुहावनी लगतीथी कि, जैसे शृंगारकिये कामिनी और जहाँ

तहाँ नदी, नाले, सरोवर भरे हुए तिनपर हंस, सारस, सरस शोभा दे रहे. ऊंचे ऊंचे रूखोंकी डालियाँ झूमरहीं उनमें पिक, चातक, कपोत, कीर बैठे कोलाहल कर रहेथे और ठाँव ठाँव मूंहे कुसुंभे जोड़े पहरे गोपी ग्वाल झूलोंपै झूल झूल ऊँचे ऊँचे सुरोंसे मलारे गातेथे उनके निकट जायजाय श्रीकृष्ण बलरामजी बाललीला कर कर अधिक सुख दिखातेथे इसी तरह आनंदसे वर्षाऋतु बीती. तब श्रीकृष्ण ग्वाल-बालोंसे कहने लगे कि भैय्या ! अब तो सुखदायी शरदऋतु आई.

चौपाई।

सबसे सुख भारी अब जानौं। स्वादसुगंधरूप पहिचानौं॥
निशिनक्षत्र उज्ज्वल आकाश। मानहुँ निर्गुण ब्रह्मप्रकाश॥
चार मास जो विरमेगेह। भये शरद तिन तजे सनेह॥
अपने अपने काज निधाये। भूप चढे तकिदेश पराये॥

इति श्रीलल्लूलालकृते प्रेमसागरे वर्षाऋतुशरदऋतु वर्णनोनाम एकविंशोध्यायः २१

अध्याय २२.

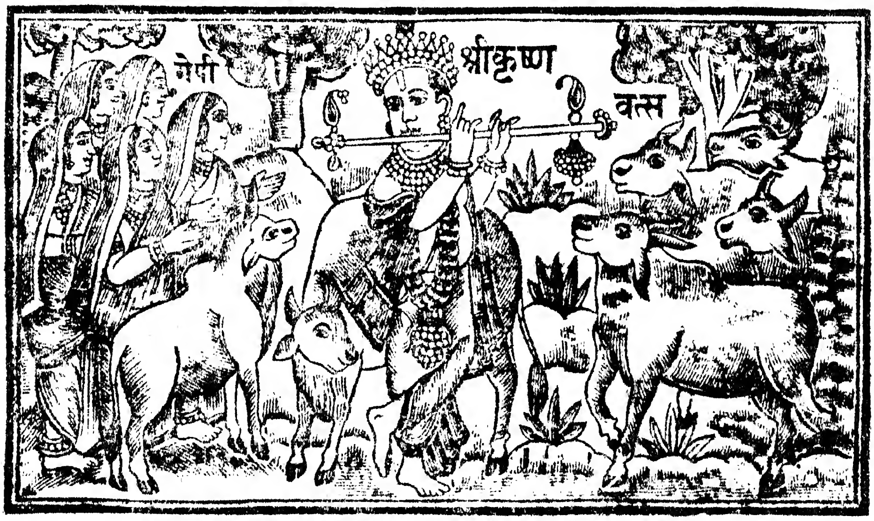

श्रीशुकदेवजी बोले कि, हे राजा! इतनी बात कह श्रीकृष्णचंद्र फिर ग्वालबाल साथ ले लीला करने लगे और जबलग कृष्ण वनमें धेनु

चरावें, तबलग सब गोपी घरमें बैठी हरिका यश गावें. एकदिन श्रीकृष्णने वनमें वेणु बजाई तो बंशीकी ध्वनि सुन सारी ब्रजयुवतियाँ हड़बड़ाय उठधाईं और एक ठौर मिलकर वाटमें आबैठीं, तहाँ आपसमें कहने लगीं कि हमारे लोचन सफल तब होंगे जब श्रीकृष्णके दर्शन पावेंगी. अभी तो कान्ह गौवोंके साथ वनमें नाचते गाते फिरतेहैं, साँझ समय इधर आवेंगे तब हमें दर्शन मिलेंगे यों सुन एक गोपी बोली–

चौ०–सुनोसखी वहवेणुबजाई । बाँसवंशदेखौ अधिकाई ॥

इसमें इतना क्या गुण है जो दिनभर श्रीकृष्णके मुँहलगी रहतीहै. और अधरामृत पी आनंद वर्षा बंशी गाजतीहै. क्या हमसेभी यह प्यारी; जो निशिदिन लिये रहतेहैं विहारी.

चौ०–मेरेआगेकी यह गढी । अबभई सौत वदनपर चढी ॥

जब श्रीकृष्ण इसे पीतांबरसे पोंछ बजातेहैं तब सुर, किन्नर, मुनि और गंधर्व अपनी अपनी स्त्रियोंको साथ ले विमानोंपर बैठ बैठ हौस कर सुननेको आतेहैं और सुनकर मोहितहो जहाँके तहाँ चित्रसे रहजातेहैं. ऐसा इसने क्या तप कियाहै जो सब इसके आधीन होते हैं. इतनी बात सुन एक गोपीने उत्तर दिया कि, पहले तो इसने बाँसके वंशमें उपज हरिका सुमिरण किया, पीछे घाम, शीत, जल ऊपर लिया. निदान टूक टूकहो देह जलाय धुआँ पिया.

चौ०–इसने तप कीन्ह्यों है कैसा । सिद्धहुई पाया फलऐसा ॥

यह सुन कोई ब्रजनारी बोली कि हमको वेणु क्यों न रची ब्रजनाथ, जो निशि दिन रहती हरिके साथ. इतनी कथा सुनाय श्रीशुकदेवजी राजा परीक्षितसे कहने लगे कि, महाराज ! जबतक श्रीकृष्ण धेनुचराय वनसे न आवें तबतक नित्त गोपि हरिके गुण गावें.

इति श्रीलल्लूलालकृते प्रेमसागरे गोपिवेणुगीतनाम द्वाविंशोऽध्यायः ॥ २२ ॥

अध्याय २२.

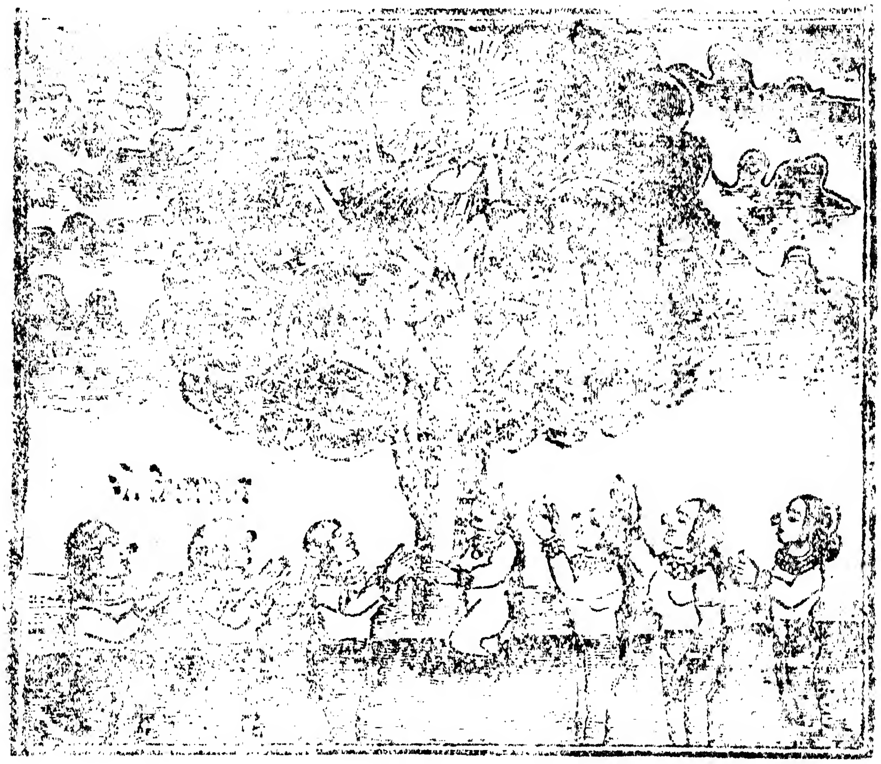

अथ चीरहरणलीलाप्रारंभः ।

श्रीशुकदेवमुनि बोले शरदऋतुके जातेही हेमंतऋतु आई और जाड़ा पाला पड़ने लगा. तिसकाल ब्रजबाला आपसमें कहने लगीं सुनो सहेली अगहनके न्हानमें जन्म जन्मके पातक जातेहैं और मनकी आश पूजती है यों हमने प्राचीन लोगोंके मुखसे सुना है. यह बात सुन सबके मनमें आई कि अगहन न्हाइये तो निःसंदेह श्रीकृष्ण वर पाइये. ऐसा विचार होतेही भोर उठ वस्त्र आभूषण पहर सब ब्रजबाला मिल युमना न्हाने आई स्नानकर सूर्यको अर्घ्य दे जलसे बाहर आय माटीकी गौर बनाय चंदन अक्षत फल फूल चढ़ाय धूप दीप नैवेद्य आगेधर पूजाकर हाथजोड़ शिरनवाय गौरीको मनायके बोलीं हे देवी! हम तुमसे बारबार यही वर माँगती हैं कि, कृष्ण हमारे पति होयँ. इस विधिसे गोपि नित न्हावें दिन भर व्रतकर साँझको दही भात खा भूमिपर सोवें.

इसलिये कि, हमारे व्रतका फल शीघ्र मिले. एक दिन सब ब्रजबाला मिल स्नानको औघट घाट गईं और वहाँ जाय चीर उतार तीरपर धर नग्नहो नीरमें पैठ लगीं हरिके गुण गाय गाय जल क्रीड़ा करने, उसकाल श्रीकृष्ण भी बंशीवटकी छाँहमें बैठे धेनु चरावते थे, इनके गानेका शब्द सुन वे चुपचाप चले आये और लगे छिपकर देखने. निदान देखते देखते जो कछु इनके जीमें आई तो सब वस्त्र चुराय कदंब पर जाचढ़े और गठड़ी बाँध आगे धर ली. इतनेमें गोपियाँ जो देखें तो तीरपर चीर नहीं. तब घबरायकर चारों ओर उठ २ लगीं देखने और आपसमें कहने लगीं कि; अभी तो यहाँ एकचिडिया भी नहीं आई, वसन कौन हरलेगया माई ? इसबीच एक गोपीने देखा कि, शिरपर मुकुट, हाथमें लकुट, केशर तिलक दिये, वनमाल हिये, पीताम्बर पहरे, कपड़ोंकी गठड़ी बाँधे मौन साधे, श्रीकृष्ण कदंबपर चढ़े छिपेहुए बैठे हैं वह देखतेही पुकारी सखी वे देखो हमारे चित्तचोर कदंबपर पट लिये विराजते हैं. यह वचन सुन और सब युवतियाँ कृष्णको देख लजाय पानीमें पैठ हाथ जोड शिर नवाय विनती कर हाहा खाय बोलीं.

चौ०-दीनदयालु हरणदुखप्यारे। दीजै मोहन चीर हमारे॥
ऐसे सुनके कहै कन्हाई। यों नहिं दूंगा नंद दुहाई॥
एक एक चल बाहर आओ। तो तुमअपने कपडे पाओ॥

ब्रजबाला रिसायके बोलीं यह तुम भली सीख सीखे हो जो हमसे कहते हो नंगी बाहर आओ. अभी अपने पिता बंधुसे जाय कहें, तो वे तुम्हें चोर चोर कर आय पकड़ें, और नंद यशोदाको जा सुनावें तो वेभी तुमको सीख भलीभाँतिसे सिखावें. हम करतीहैं किसी की कान, तुमने मेटी सब पहिचान.

इतनी बातके सुनतेही क्रोधकर श्रीकृष्णजीने कहा कि अब चीर तभी पाओगी जब तिनको बुला लाओगी, नहीं तो नहीं यह सुन डरकर गोपी बोलीं दीनदयालु ! हमारे सुधके लिवैया पतिके रखैया तो आपहो हम

किसे लावेंगी; तुम्हारेही हेतु नेमकर मार्गशीर्ष मास न्हातीहैं. श्रीकृष्ण बोले जो तुम मन लगाय मेरे लिये अगहन न्हातीहो तो लाज और कपट तज आय अपने चीर लो. जब श्रीकृष्णचंद्रने ऐसे कहा तब सब गोपी आपसमें शोच विचारकर कहने लगीं कि चलो सखी, जो मोहन कहते सोई मानें क्योंकि ये हमारे तन मनकी सब जानते हैं. इनसे लाज क्या? यों आपसमें ठान, श्रीकृष्णकी बात मान हाथसे कछु देह दुराय सब युवती नीरसे निकल शिर निहुराय जब सन्मुख तीरपर जाके खडीहुईं तब श्रीकृष्ण हँसके बोले अब तुम हाथ जोड़ जोड़ आगे आवो तो मैं वस्त्र दूं. गोपी बोलीं:—

काहे कपट करत नँदलाला। हम सूधी भोरी ब्रजबाला॥
परी ठगोरी सुधि बुधि गई। ऐसी तुम हरि लीला ठई॥
मनसँभारिकै करिहैं लाज। अब तुम कछु करो ब्रजराज॥

इतनी बात कह जब गोपियोंने हाथ जोड़े तो श्रीकृष्णचन्द्रने वस्त्रदे उनके पास आय कहा कि—तुम अपने मनमें कछु इस बातका गुस्सा मत मानो यह मैंने तुम्हें सीखदी है क्योंकि जलमें वरुण देवताका वास है. इससे जो कोई नग्न होय जलमें न्हाताहै उसका सब धर्म बहजाताहै; तुम्हारे मनकी लगन देख मगन हो मैंने यह भेद तुमसे कहा अब अपने२घर जाओ फिर कातिक महीनेमें आय मेरेसाथ रासकीजियो.

श्रीशुकदेवमुनि बोले कि, महाराज! इतना वचन सुन प्रसन्न हो संतोष कर गोपियाँ तो अपने२घरोंको गईं और श्रीकृष्ण वंशीवटमें आय गोपग्वाल बालसखाओंको संगले आगे चले तिस समय चारों ओर सघन वन देख देख वृक्षोंकी बड़ाई करने लगे कि, देखो ये संसारमें आ अपने पर कितना दुःख सह लोगोंको सुख देते हैं. जगत्में ऐसेही परकाजियोंका आना सफल है. यों कह आगे बढ़ यमुनाके निकटजाय पहुँचे.

इति श्रीलल्लूलालकृते प्रेमसागरे चीरहरणं नाम त्रयोविंशोऽध्यायः॥ २३॥

अध्याय २४.

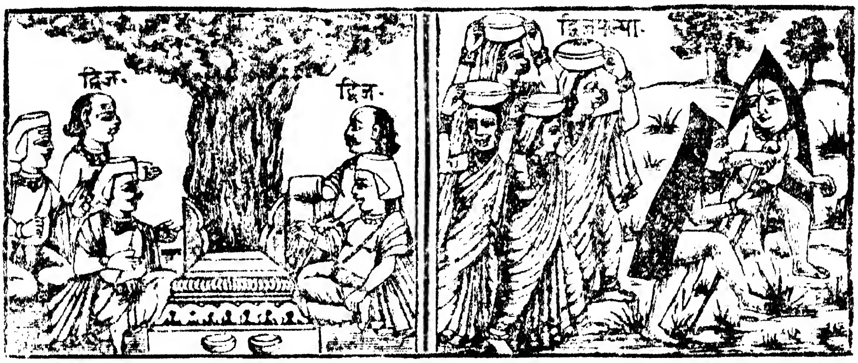

श्रीशुकदेवजी बोले कि, जब श्रीकृष्ण यमुनाके पास पहुँच रूखतले लाठी टेक खड़ेहुए तब सब ग्वाल और सखाओंने आय करजोड़ कहा कि, महाराज ! हमें इस समय बड़ी भूख लगीहै जो कछु छाक लायेथे सो खाई पर भूख न गई. कृष्ण बोले—देख वह जो धुआँ दिखाई देताहै तहाँ मथुरिये कंसके डरसे छिपके यज्ञ करते हैं उनके पास जा हमारा नामले दंडवत् कर हाथ बाँध खड़ेहो दूरसे कहो, भोजन दो. ऐसे दीनहो माँगियो जैसे भिखारी अधीनहो माँगताहै. यह बात सुन ग्वाल चले चले वहाँ गये जहाँ माथुर बैठे यज्ञ कररहेथे जातेही उन्होंने प्रणामकर निपट अधीनतासे करजोड़के कहा महाराज ! आपको दंडवत्कर हमारे द्वारा श्रीकृष्णचन्द्रजीने यह कहलायाहै कि, हमको अति भूख लगीहै, कुछ कृपाकर भोजन भेज दीजे. इतनी बात ग्वालोंके मुखसे सुन मथुरिये क्रोधकर बोले—तुम तो बड़े मूर्खहो जो हमसे अभी यह बात कहतेहो. बिन होम होचुके किसीको कुछ न देंगे. सुनो, जब यज्ञ करलेंगे और कुछ बचेगा सो बाँटदेंगे फिर ग्वालोंने उनसे गिड़गिड़ायके बहुतेरा कहा कि—महाराज ! घर आये भूखोंको भोजन करवानेसे बड़ा पुण्य होताहै. पर वे इनके कहनेको कुछ ध्यानमें न लाये बरन् इनकी ओरसे मुँह फेर आपसमें यों कहने लगे—

चौ०—बड़ेमूढ़ पशुपालक नीच । माँगत भात होमकेबीच ॥

तब तो ये वहाँसे निराशहो पछताय पछताय श्रीकृष्णके पास आय

बोले महाराज! भीख माँग मान महत गमाया. तोभी खानेको कुछ हाथ न आया. अब क्या करें? श्रीकृष्णजीने कहा कि-अब तुम उनकी स्त्रियोंसे जा माँगो.वे बड़ी दयावंत धर्मात्माहैं उनकी प्रीति भक्ति देखियो वे तुम्हें देखतेही आदर मानसे भोजन देंगी. यों सुन वे फिर वहाँ गये, जहाँ वे बैठी रसोंई करतीथीं, जातेही उनसे कहा कि, वनमें श्रीकृष्णको धेनुचराते क्षुधा भई है. सो हमें तुम्हारे पास पठाया है; कुछ खानेको होय तो दो. इतना वचन ग्वालोंके मुखसे सुनतेही वे सब प्रसन्नहो कंचनके थालोंमें षड्रस भोजन भर लेले उठधाईं और किसीके रोंके न रुकीं. एक मथुरनीके पतिने तो न जाने दिया तो वह ध्यानकर देह छोड़ सबके पहले ऐसे जा मिली कि जैसे जल जलमें जामिले और पीछेसे सब चलीचली वहाँ आईं. जहाँ श्रीकृष्णचंद्र ग्वालबालोंसमेत वृक्षके छाँहमें सखाके काँधेपर हाथ दिये त्रिभंगी छबिकिये कमलका फूल कर लिये खड़ेथे. आतेही थाल आगेधर दंडवत्कर हरिमुख देख देख आपसमें कहने लगीं कि, सखी! येई हैं नन्दकिशोर, जिनका नाम सुन सुन ध्यान धरतीथीं, अब चन्द्रमुख देख लोचन सफल कीजे और जीवनका फल लीजे. ऐसे बतराय हाथ जोड़ विनतीकर श्रीकृष्णसे कहनेलगीं, कि–कृपानाथ! आपकी कृपाविन तुम्हारा दर्शन कब किसीको होताहै? आज धन्य भाग्य हमारा जो दर्शन पाया और जन्म जन्मका पाप गमाया.

मूरखविप्रकृपणअभिमानी। श्रीमदमोहलोभमतिसानी॥
ईश्वरको मानुष कर मानैं। माया अंध कहाँ पहिचानैं॥
जप तप यज्ञ जासुहित कीजै। ताको कहा न भोजन दीजै॥

महाराज! वही धन्य है धन जन लाज, जो आवे तुम्हारे काज;और सोई है तप ज्ञान, जिसमें आवे तुम्हारा ध्यान. इतनी बात सुन श्रीकृष्णचन्द्र उनकी क्षेम कुशल पूँछ कहने लगे कि–

माता जनि मुझ करो प्रणाम। मैं हूं नंदमहरको श्याम॥

जो ब्राह्मणकी स्त्रीसे आप पुजवातेहैं सो क्या संसारमें कुछ बड़ाई

पातेहैं ? तुमने हमको भूखे जान दया कर वनमें आन सुधली. अब हम यहाँ तुम्हारी क्या पहुनाई करैं ?

वृंदावन घर दूर हमारा । किस विधि आदर करैं तुम्हारा ॥

जो वहाँ होते कुछ फूल फल ला आगे धरते. तुम हमारे कारण दुःख पाय जंगलमें आईं और यहाँ हमसे तुम्हारी टहल कुछ न बन आई इस बातका पछतावाही रहा. ऐसे शिष्टाचार कर फिर बोले-तुम्हें आये बडी वेर हुई अब घरको सिधारिये. क्योंकि, ब्राह्मण तुम्हारे तुम्हारी बाट देखते होंगे. इसलिये कि स्त्री बिन यज्ञ सफल नहीं होता. यह वचन श्रीकृष्णसे सुनतेही हाथ जोड़ बोलीं-महाराज ! हमने आपके चरणकमलसेवनकर कुटुम्बकी माया सब छोड़ी. क्योंकि जिनका कहा न मान हम उठ धाईं तिनके यहाँ अब कैसे जायँ ? जो वे घरमें न आनेदें तो फिर कहाँ बसें ? इससे आपकी शरणमें रहैं सो भला. और नाथ ! एक नारी हमारे साथ तुम्हारे दर्शनकी अभिलाषा किये आवती थी उसके पतिने रोंक रक्खा तब उस स्त्रीने अकुलाकर अपना जीव दिया. इस बातके सुनतेही हँसकर श्रीकृष्णचन्द्रने उसे दिखाया; जो देह छोड़ आईथी. और कहा कि-सुनो, जो हरिसे हितकरताहै तिसका विनाश कभी नहीं होता. यह तुमसे पहले आ मिली है.

इतनी कथा सुनाय श्रीशुकदेवजी बोले कि-महाराज ! उसको देखतेही एकबार तो सब अचंभेमें रहीं पीछे ज्ञान हुआ. तब हरिगुण गाने लगीं इस बीच श्रीकृष्णचन्द्रने भोजन कर उनसे कहा कि-अब स्थानको प्रस्थान कीजे. तुम्हारे पति कुछ न कहेंगे. जब श्रीकृष्णने उन्हें ऐसे समझाय बुझायके कहा तब वे बिदाहो दंडवत्कर अपने घर गईं और उनके स्वामी शोच विचारकर पछताय पछताय कह रहेथे कि हमने कथा पुराणमें सुनाहै कि किसी समय नंद यशोदाने पुत्रके निमित्त बड़ी तपस्या की थी, तहाँ भगवान्‌ने आ उन्हें यह वर दिया था कि हम यदुकुलमें अवतार ले तुम्हारे यहाँ जन्मैंगे, वेही जन्म ले आयेहैं. उन्होंने ग्वालबालोंके हाथ भोजन मँगवाय भेजा था सो हमने यह क्या किया जो आदिपुरुषने माँगा और भोजन न दिया ?

यज्ञधर्म जाकारण ठये । तिनके सन्मुख आज न भये ॥
आदिपुरुषहममानुषजान्यो। नाहिंवचनग्वालनकोमान्यो ॥
हममूरखपापीअभिमानी । कीन्हीदया न हरिगतिजानी ॥

धिक्कार है हमारी मतिको और इस यज्ञ करनेको जो भगवान्‌को पहिचान सेवा न करी, हमसे नारीही भली. जिन्होंने जप तप यज्ञ विन किये साहसकर जा कृष्णके दर्शन किये, और अपने हाथोंसे उन्हें भोजन दिया. ऐसे पछताय मथुरियोंने अपनी स्त्रियोंके सन्मुख हाथ जोड़ कहा कि; धन्य भाग्य तुम्हारा जो हरिका दर्शनकर आई. तुम्हाराही जीवन सफल है.

इति श्रीलल्लूलालकृते प्रेमसागरे द्विजपत्नीयाचनंनाम चतुर्विंशोऽध्यायः ॥ २४ ॥

अध्याय २५.

अथ गोवर्द्धनपूजनलीला ।

श्रीशुकदेवजी बोले कि—जैसे श्रीकृष्णचंद्रने गिरिगोवर्द्धन उठाया और इंद्रका गर्व हरा सोई कथा अब कहताहूं तुम चित्त दे सुनो. सब ब्रजवासी वर्षवें दिन कार्तिकवदी चौदसको न्हाय धोय केशरचंदनसे चौक पुराय भाँति २ की मिठाई और पकवान धर धूप दीपकर इंद्रकी

पूजा कियाकरें; यह रीति उनके यहाँ परंपरासे चली आवती थी. एकदिन वही दिवस आया तब नंदजीने बहुतसी खानेकी सामग्री बनवाई और सब ब्रजवासियोंके भी घरघर सामग्रीभोजनकी होरहीथी. तहाँ श्रीकृष्णने आ मासे पूंछा, कि माजी! आज घर घरमें पकवान मिठाई जो हुईहै सो क्या है? इसका भेद मुझे समझायकर कहो. जो मेरे मनकी दुविधा जाय यशोदा बोली कि-बेटा! इससमय मुझे स्वस्त कहनेको अवकाश नहीं. तुम अपने पिताके पास जा पूंछो. वे बुझायकर कहैंगे यह सुन नंदउपनंदके पास आय श्रीकृष्णने कहा कि-पिता! आज किस देवताके पूजनकी ऐसी धूमधाम है जिसके लिये घर घर पकवान और मिठाई होरही है? वे कैसे भुक्ति मुक्ति वरके दाता हैं? उनका नाम और गुण कहो जो मेरे मनका संदेह जाय. नंदमहर बोले कि-पुत्र! यह भेद तूने अबतक नहीं समझा कि मेघोंके पति जो हैं सुरपति तिनकी पूजा है जिनकी कृपासे इस संसारमें ऋद्धि सिद्धि मिलती हैं और तृण जल अन्न होता है, वन उपवन फूलते फलते हैं, उससे सब जीव, जंतु, पशु, पक्षी आनंदमें रहते हैं. यह इंद्रपूजाकी रीति हमारे यहाँ पुरुषाओंके आगेसे चली आतीहै. कछु आजई नई नहीं निकली. नंदजीसे इतनी बात सुन श्रीकृष्णचंद्र बोले-हे पिता! जो हमारे बड़ोंने जाने अनजाने इंद्रकी पूजा की तो की पर अब तुम जान बूझकर धर्मका पंथ छोड़ औघट बाट क्यों चलते हो? इंद्रके माननेसे कछु नहीं होता. क्योंकि वह भुक्ति मुक्तिका दाता नहीं और उससे ऋद्धि सिद्धि किसने पाईहै? यह तुमहीं कहो उसने किसे वर दिया है? हाँ, एक बात यह है कि तप यज्ञ करनेसे देवताओंने अपना राजा बना कर इंद्रासन दे रक्खा है. इससे कछु परमेश्वर नहीं हो सकता. सुनो! जब असुरोंसे बार बार हारताहै, तब भागके कहीं जा छिपकर अपने दिन काटता है. ऐसे कायरको क्या मानो, अपना धर्म किस लिये नहीं पहिचानो? इंद्रका किया कछु नहीं हो सकता, जो कर्ममें लिखाहै सोई होता है. सुख, संपत्ति, दारा, भाई, बंधु भी सब अपने धर्म कर्मसे मिलते हैं और आठ मास जो सूर्य

जल सोखता है सोई चार महीने बरसता है. तिसीसे तृण, जल, अन्न होता है और ब्रह्माने जो चार वर्ण बनायेहैं ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य, शूद्र तिनके पीछे भी एक एक कर्म लगादिया है कि ब्राह्मण तो वेदविद्या पढें, क्षत्रिय सबकी रक्षा करें, वैश्य खेती, वणिज और शूद्र इन तीनोंकी सेवामें रहें. पिता! हम वैश्य हैं. गायें बढीं इससे गोकुल हुआ, तिसीसे नाम गोपपड़गया हमारा यह कर्म है कि, खेती वणिज करें, और गो ब्राह्मणकी सेवामें रहें वेदकी आज्ञा है कि, अपनी कुलरीति न छोड़िये जो लोग अपना धर्म तज औरका धर्म पालते हैं सो ऐसेहैं जैसे कुलवधूहो परपुरुषसे प्रीति करै. इससे अब इंद्रकी पूजा छोड़ दीजे और वनपर्वतकी पूजा कीजे क्योंकि हम बनवासी हैं, हमारे राजा वेई हैं, जिनके राज्यमें हम सुखसे रहते तिन्हें छोड़ औरको पूजना हमें उचित नहीं, इससे अब सब पक्वान्न मिठाई अन्न ले चलो, और गोवर्धनकी पूजा करो.

इतनी बातके सुनतेही नंद उपनंद उठकर वहाँ गये जहाँ बड़े बड़े गोप अथाईपर बैठे थे. इन्होंने जातेही सब कृष्णकी कही बातें उन्हें सुनाईं वे सुनतेही बोले कि, कृष्ण सच कहता है. तुम बालक जान उसकी बात मत टालो भला तुमहीं विचारो कि इंद्र कौन है और हम किसलिये उसे मानते हैं, जो पालता है, उसकी तो पूजाही भुलाई.

हमैं कहा सुरपतिसों काजू। पूजैं वन सरिता गिरिराजू॥

ऐसे कह फिर सब गोपोंने कहा.

दोहा-भलो मतो कान्हर दियो, तजिये सिगरे देव।
गोवर्द्धन पर्वत बडो, ताकी कीजे सेव॥

यह वचन सुनतेही नंदजीने प्रसन्नहो गोपोंमें ढँढोरा फिरवा दिया कि कल हम सारे ब्रजवासी चलकर गोवर्द्धनकीपूजाकरेंगे जिसकेघरमेंइंद्रकी पूजाके लिये पकवान मिठाई बनी है सो सब लेले भोरही गोवर्द्धनपर जाइयो. इतनी बात सुन सकल ब्रजवासी दूसरे दिन भोरके तडकेही स्नान ध्यानकर सब सामग्री झालों, परातों, थालों, डोलों, हाँडों, चरुओंमें भर गाड़ों, बहिंगियों पर रखवाय गोवर्द्धनको चले तिसी समय नंद

उपनंदजी कुटुंब समेत सामग्री ले सबके साथ होलिये. और बाजे गाजेसे चले चले सब मिल गोवर्द्धन पहुँचे. वहाँ जाय पर्वतको चारों ओरसे झाड़ बुहार जल छिड़क, घेवर बावर, जलेबी, लाडू, खुरमें, इमरती, फेनी,पेडे, बरफी, खाझे, गुंझे, मठुलिया, सीरा, पूरी कचौरी, सेव, पापड़, पकौड़े आदि पकवान और भाँति भाँतिके भोजन व्यंजन संधान चुन चुन रखदिये. इतने कि जिनसे पर्वत छिपगया और ऊपर फूलोंकी माला पहराय वर्ण वर्णके पाटंबर तान दिये तिस समयकी शोभा वर्णी नहीं जाती. गिरि ऐसा सुहावन लगताथा कि जैसे किसीको गहने कपड़े पहराय नख शिखसे शृंगारा होय और नंदजीने पुरोहित बुलाय सब ग्वालबालोंको साथ ले रोली, अक्षत, पुष्प चढ़ाय धूप, दीप, नैवेद्य कर पान, सुपारी दक्षिणा धर वेदकी विधिसे पूजा की तब श्रीकृष्णने कहा कि, अब तुम शुद्धमनसे गिरिराजका ध्यान करोतो वे आय दर्शन दे भोजन करें. श्रीकृष्णसे यों सुनतेही नंद यशोदा समेत सब गोपी गोप कर जोड़ नयन मूंद ध्यान लगाय खड़े हुए. तिसकाल नंदलाल उधर तो अति मोटी भारी दूसरी देह धर बड़े बड़े हाथ पाँव कर कमलनयन चंद्रमुखहो मुकुट धरे, बनमाल गरे पीतवसन और रत्नजड़ित आभूषण पहरे मुँह पसारे चुप चाप पर्वतके बीचसे निकले और इधर आपही अपने दूसरे रूपको देख सबसे पुकारके कहा—देखो गिरिराजने प्रकट ह्वै दर्शन दिया जिनकी पूजा तुमने जी लगाय करीहै.

इतना वचन सुनाय श्रीकृष्णचंद्रजीने गिरिराजको दंडवत् की उनकी देखादेखी सब गोपी गोप प्रणाम कर आपसमें कहने लगे कि—इस भाँति इंद्रने कब दर्शन दिया था? हमने वृथा इसकी पूजा किया कि, और क्या जानिये पुरुषाओंने ऐसे प्रत्यक्ष देवताको छोड़ क्यों इंद्रको माना था? यह बात समझी नहीं जाती यों सब बतराय रहेथे कि श्रीकृष्ण बोले—अब देखते क्या हो? जो भोजन लाये हो सो खिलावो. इतना वचन सुनतेही गोपी गोप षड्रस भोजन थाल परातोंमें भर उठाय उठाय लगे देने और गोवर्द्धननाथ हाथ बढ़ाय बढ़ाय लेले भोजन लगे करने. निदान

जितनी सामग्री नंद समेत सब ब्रजवासी ले गयेथे सो खाई, तब वह सुरत पर्वतमें समाई. इसभाँति अद्भुत लीलाकर श्रीकृष्णचंद्र सबको साथले पर्वतकी परिक्रमादे दूसरे दिन गोवर्द्धनसे चल हँसते खेलते वृंदावन आये तिसकाल घर २ मंगल बधाये होने लगे और ग्वाल बाल सब गाय बछड़ोंको रँग रँग उनके गलेमें गंडे घंटालियां घुंगरू बांध बांध न्यारेही कुतूहल कररहेथे.

इति श्रीलल्लूलालकृते प्रेमसागरे गोवर्द्धनपूजानाम पंचविंशतितमोऽध्यायः ॥ २५ ॥

अध्याय २६.

इतनी कथा सुनाय श्रीशुकदेव मुनि बोले कि– हे महाराज !

दो०–सुरपतिकी पूजा तजी, करि पर्वतकी सेव ।
तबहिं इंद्र मन कोपिकै, सबै बुलाये देव ॥

जब सारे देवता इंद्रके पासगये तब वह उनसे पूंछने लगा कि–तुम मुझे समझाकर कहो ! कल ब्रजमें किसकी पूजा थी ? इसबीच नारदजी आय पहुंचे तो इंद्रसे कहने लगे कि–सुनो महाराज ! तुम्हें सब कोई

मानते हैं पर एक व्रजवासी नहीं मानते; क्योंकि नंदके एक बेटा हुआहै तिसीका कहा सब करते हैं उन्होंने तुम्हारी पूजा मेट कल सबसे पर्वत पुजवाया. इतनी बातके सुनतेही इंद्र क्रोधकर बोला कि-व्रजवासियोंके धन बढ़ा है इसीसे उन्हें अति गर्व हुआ है.

जप तप यज्ञ तज्यो व्रज मेरो। काल दरिद्र बुलायो नेरो ॥
मानुष कृष्णदेव करमाने । ताकी बातें साँची जाने ॥
वह बालक मूरख अज्ञाना। बहुवादी राखे अभिमाना ॥
उनका अबहि गर्वपरिहरौं। पशू खोइ लक्ष्मी विन करौं ॥

ऐसे बक झक खिझलाय कर सुरपतिने मेघपतिको बुलाय भेजा. वह सुनतेही डरता कांपता आ हाथ जोड़ सन्मुख खड़ा हुआ तिसे देखतेही इंद्र स्नेहकर बोला कि-तुम अभी अपना दल साथ ले जाओ और गोवर्द्धन पर्वत समेत व्रजमंडलको बरसकर बहाओ ऐसा कि कहीं गिरिका चिह्न और व्रजबासियोंका नाम न रहे. इतनी आज्ञा पाय मेघपति दंडवत् कर राजा इंद्रसे बिदा हुआ और उसने अपने स्थानपर आय बड़े बड़े मेघोंको बुलायके कहा कि-सुनो ! महाराजकी आज्ञा है कि, तुम अभी जाय व्रजमंडलको बरसके बहा दो. यह बचन सुन सब मेघ अपने अपने दल बादल ले मेघपतिके साथ होलिये. उसने आतेही व्रजमंडलको घेर लिया और गर्ज गर्ज बड़ी बड़ी बूंदें लगा मूशलधार जल बरसावने और अँगुलीसे गिरिको बतावने. इतनी कथा कह श्रीशुकदेवजीने राजा परीक्षितसे कहा कि-महाराज ! जब ऐसे चहूँ ओरसे घनघोर घटा घिरिआई और अखंड जल बरसने लगा, तब नंद यशोदा समेत सब गोपी ग्वालबाल भय खाय भीगते थर थर काँपते श्रीकृष्णके पास जाय पुकारे कि-हे कृष्ण ! इस महाप्रलयके जलसे कैसे बचेंगे तब तो तुमने इंद्रकी पूजा मेट पर्वत पुजवाया. अब उसको वेग बुलाइये जो आय रक्षा करे; नहीं तो क्षणभरमें नगर समेत सब डूबे मरते हैं. इतनी बात सुन और सबको भयातुर देख श्रीकृष्णचन्द्र बोले कि, तुम अपने जीमें किसी बातकी चिंता मत करो. गिरिराज

अभी आय तुम्हारी रक्षा करते हैं. यों कह गोवर्धनको तेजसे तपाय अग्निसम किया और बायें हाथकी अँगुली पर उठाय लिया. तिसकाल सब ब्रजवासी अपने डेरों समेत आ उसके नीचे खड़े हुए और श्रीकृष्ण चन्द्रको देख देख अचरज कर आपसमें कहने लगे कि--

हैकोउ आदिपुरुष औतारी। देखतहैं कोउ देव मुरारी॥
मोहन मानुष कैसो भाई। अँगुरीपरक्योंगिरिठहराई॥

इतनी कथा कह श्रीशुकदेवमुनि राजापरीक्षितसे कहने लगे कि-उधर तो मेघपति अपना दल लिये क्रोध कर कर मुशल धार जल बरसाता था. इधर पर्वतपै गिरतेही छनाकदे तवेकीसी बुंद होजातीथी यह समाचार सुन इंद्र भी कोप कर आप चढ़ आया और लगातार इसी भाँति सात दिन बरसा. पर ब्रजमें हरिप्रतापसे एक बूंद भी न पड़ी. जब सब जल निबड़ा तब मेघोंने आ हाथ जोड़ कहा कि-हे नाथ! जितना महाप्रलयकालका जल था सबका सब हो चुका. अब क्या करें! यह सुन इंद्रने अपने ज्ञान ध्यानसे विचारा कि, आदिपुरुषने अवतार लिया है नहीं तो किसमें इतनी सामर्थ्य थी जो गिरि धारण कर ब्रजकी रक्षा करता. ऐसे सोच समझ अछता पछता मेघोंसमेत इंद्र अपने स्थानको गया. और बादल उघड़ प्रकाश हुआ. तब सब ब्रजवासियोंने प्रसन्नहो श्रीकृष्णसे कहा. महाराज! अब गिरि उतार धरिये. मेघ जाता रहा. यह वचन सुनतेही श्रीकृष्णजीने पर्वत जहाँका तहाँ रख दिया.

इति श्रीलल्लूलालकृते प्रेमसागरे ब्रजरक्षणं नाम षड्विंशतितमोऽध्यायः ॥ २६ ॥

अध्याय २७.

श्रीशुकदेवमुनि बोले कि–जब हरिने गिरि करसे उतार धरा तिससमय सब बड़े बड़े गोप तो इस अद्भुतचारित्रको देख यही कह रहेथे कि, जिसकी शक्तिने इस महाप्रलयसे आज ब्रजमंडल बचाया तिसे हम नंदसुत कैसे कहेंगे ? हाँ किसी समय नंद यशोदाने महातप किया था इसीसे भगवानने आ इनके घर जन्म लियाहै. और ग्वालबाल आय आय श्रीकृष्णके गले मिल मिल पूछने लगे कि–भैया ! तूने इस कोमल कमलसे हाथ पर कैसे ऐसे भारी पर्वतका बोझ सँभाला. और नंद यशोदा करुणाकर पुत्रको हृदय लगाय, हाथ दबाय अँगुली चटकाय कहने लगे कि सात दिन गिरि करपर रक्खा हाथ दुखता होयगा. और गोपियाँ यशोदाके पास आय पिछली सब कृष्णकी लीला गाय गाय कहने लगीं

यह जो बालक पूत तिहारो। चिरजीवो ब्रजको रखवारो ॥
दानव दैत्य असुर संहारे। कहाँ कहाँ ब्रज जननउबारे ॥
जैसी कही गर्गऋषि आई। सोइ सोइ बात होतिहै माई ॥

इति श्रीलल्लूलालकृते प्रेमसागरे श्रीकृष्णलीलावर्णनं नाम सप्तविंशतितमोऽध्यायः ॥ २७ ॥

अध्याय २८.

श्रीशुकदेवमुनि बोले कि-महाराज! भोर होते ही सब गायें और ग्वालबालोंको संगकर अपनी अपनी छाक ले कृष्ण बलराम वेणु बजाते और मधुर मधुर सुरसे गाते जो धेनु चरावन वनको चले तो राजा इंद्र सकल देवताओंको साथ लिये कामधेनुको आगे किये ऐरावत हाथीपर चढ़ सुरलोकसे चला चला वृंदावनमें आय वनकी बाट रोक खड़ा हुआ, जब श्रीकृष्णचंद्र उसे दूरसे दिखाई दिये तब गजसे उतर नंगे पाँओं गलेमें कपड़ा डाल थर थर काँपता दौड़कर श्रीकृष्णके चरणोंपर गिरपड़ा और पछताय २ रो रो कहने लगा कि, हे ब्रजनाथ! मुझपर दया करो

मैं अभिमान गर्व अतिकिया। राजस तामसमें मन दिया॥
धन मदकर संपति सुखमाना। भेद न कछु तुम्हारो जाना॥
तुम परमेश्वर सबके ईश। और दूसरा को जगदीश॥
ब्रह्मा रुद्र आदि वर दाई। तुम्हरी दई संपदा पाई॥
जगतपितातुमनिगमनिवासी। सेवतनित्तकमलाभइदासी॥
जगके हेत लेत औतारा। तब तब हरत भूमिको भारा॥
दूर करो सब चूक हमारी। अभिमानी मूरखहौं भारी॥

जब ऐसे दीन हो इंद्रने स्तुति करी तब श्रीकृष्णचंद्र दयालु हो बोले कि अब तो तू कामधेनुके साथ आया इससे तेरा अपराध

क्षमा किया. पर फिर गर्व मत कीजो क्योंकि गर्व करनेसे ज्ञान जाता है और कुमति बढ़ती है. इससे अपमान होता है इतनी बात श्रीकृष्णके मुखसे सुनतेही इंद्रने उठकर वेदकी विधिसे पूजा की और गोविंदनाम धर चरणामृत ले परिक्रमा करि तिस समय गंधर्व भाँति भाँतिके बाजे बजाय २ श्रीकृष्णका यश गाने लगे और देवता अपने २ विमानोंमें बैठ आकाशसे फूल बरसाने लगे, उसकाल ऐसा समा हुआ कि, मानो फेरकर श्रीकृष्णने जन्म लिया. जब पूजासे निश्चिंत हो इंद्र हाथ जोड़ सन्मुख खड़ा हुआ तब श्रीकृष्णने आज्ञा दी कि, अब तुम कामधेनु समेत अपने पुरको जावो. आज्ञा पातेही कामधेनु और इंद्र बिदा ह्वै दंडवत कर इंद्रलोकको गये और श्रीकृष्णचन्द्र गो चराय साँझ हुए सब ग्वाल बालोंको लिये वृंदावन आये, उन्होंने देखा सो अपने अपने घरजाय कहा आज हमने हरिप्रतापसे इंद्रका दर्शन वनमें किया.

इतनी कथा सुनाय श्रीशुकदेवजीने राजा परीक्षितसे कहा कि-महाराज ! यह जो श्रीगोविंदकी कथा मैंने तुम्हें सुनाई इसके सुनने और सुनानेसे संसारमें धर्म, अर्थ, काम, मोक्ष चारों पदार्थ मिलते हैं.

इति श्रीलल्लूलालकृते प्रेमसागरे इन्द्रस्तुतिकरणं नाम अष्टाविंशतितमोऽध्यायः ॥ २८ ॥

अध्याय २९.

श्रीशुकदेवजी बोले कि-महाराज ! एक दिन नंदजीने संयम कर एकादशी व्रत किया. दिन तो स्नान, ध्यान, भजन, जप, पूजामें काटा और रात्रि जागरणमें बिताई, जब छः घड़ी रैन रही और द्वादशी भई तब उठके देह शुद्धकर भोरहुआ जान धोती अँगोछा झारी ले यमुना न्हाने चले तिनके पीछे कई एक ग्वाल भीहोलियेजबतीरपरजाय प्रणामकर कपड़े उतार नंदजी ज्यों नीरमें पैठे त्यों वरुणके सेवक जो जलकी चौकी देतेथे कि कोई रातको न्हाने न पावे उन्होंनेजा वरुणसे कहा कि, महाराज ! कोई इस समय यमुनामें न्हाय रहाहै हमें क्या आज्ञा होतीहै ? वरुण बोले उसे

अभी पकड़ लावो. आज्ञा पातेही सेवक फिर वहाँ आये जहाँ नंदजी स्नान कर जलमें खड़े जप करतेथे. आतेही अचानक नागफाँस डाल नंदजीको वरुणके पास लेगये तब नंदजीके साथ जो ग्वाल गयेथे उन्होंने आय श्रीकृष्णसे कहा कि–महाराज! नंदरायजीको वरुणके गण यमुनातीरसे पकड़ वरुणलोकको लेगये. इतनी बातके सुनतेही श्रीगोविंद क्रोधकर उठ धाये और पलभरमें वरुणके पास जा पहुँचे इन्हें देखतेही वह उठ खडा हुआ और हाथजोड़ विनती कर बोला–

सफलजन्महै आज हमारो। पायों यदुपति दरश तुम्हारो॥
कीजै दोष दूर सब मेरे। नंदपिता इस कारण घेरे॥
तुमको सबके पिता बखाने। तुम्हरे पिता नहीं हम जाने॥

रातको न्हाते देख अनजाने गण पकड़ लाये, भला इस मिस मैंने आपके दर्शन पाये अब दया कीजे, मेरा दोष चित्तमें न लीजे ऐसे अति दीनताकर बहुतसी भेंटलाय नंद और श्रीकृष्णके आगे धर जब वरुण हाथ जोड़ शिर नवाय सन्मुख खड़ा हुआ तब श्रीकृष्ण भेंटले पिताको साथकर वहाँसे चल वृंदावन आये. इनको देखतेही सब व्रजवासी आय मिले तिस समय बड़े बड़े गोपोंने नंदरायसे पूछा कि तुम्हें वरुणके सेवक कहाँ लेगयेथे? नंद बोले सुनो जो वे वहाँसे पकड़ मुझे वरुणके पास लेगये त्योंहीं पीछेसे श्रीकृष्ण पहुँचे इन्हेंदेखतेही वह सिंहासनसे उतर पावोंपर गिर अति बिनतीकर कहने लगा नाथ! मेरा अपराध क्षमा कीजे मुझसे अनजाने यह दोष हुआ, सो चित्तमें न लीजे. इतनी बात नंदजीके मुखसे सुनतेही गोप आपसमें कहने लगे कि, भाई! हमने तो यह तभी जानाथा, जब श्रीकृष्णचन्द्रने गोवर्धन धारण कर व्रजकी रक्षा करी कि, नन्दमहरके घरमें आदिपुरुषने आय अवतार लियाहै. ऐसे आपसमें बतराय फिर सब गोपोंने हाथ जोड़ श्रीकृष्णसे कहा कि–महाराज! आपने हमें बहुत दिन भरमाया, पर अब सब भेद तुम्हारा पाया. तुम्हीं जगतके कर्त्ता दुःखहर्त्ता हौ त्रिलोकीनाथ! दयाकर

अब हमें वैकुंठ दिखाइये. इतना वचन सुन श्रीकृष्णजीने क्षणभरमें वैकुंठ रच उन्हें ब्रजहीमें दिखाया. देखतेही ब्रजवासियोंको ज्ञान हुआ तो करजोड़ शिर झुकाय बोले हे नाथ! तुम्हारी महिमा अपरंपारहै हम कुछ कह नहीं सकते. पर आपकी कृपासे आज हमने यह जाना कि, तुम नारायण हो. भूमिका भार उतारनेको संसारमें जन्मले आये हो.

श्रीशुकदेवजी बोले कि—महाराज! जब ब्रजवासियोंने इतनी बात कही तब श्रीकृष्णचंद्रजीने सबको मोहित कर जो वैकुंठकी रचना रचीथी सो उठाय ली और अपनी माया फैलाय दी, तब तो सब गोपोंने स्वप्नसा जाना और नंदजीने भी मायाके वश हो श्रीकृष्णको अपना पुत्र कर माना.

इति श्रीलल्लूलालकृते प्रेमसागरे वरुणलोकगमने वैकुंठचारित्रं नाम एकोनत्रिंशोऽध्यायः ॥ २९ ॥

अध्याय ३०.

इतनी कथा सुनाय श्रीशुकदेवजी बोले कि—हे महाराज!

दो०—जैसे हरि गोपिन सहित, कीन्हों, रास विलास।
सो पंचाध्यायी कहौं, जैसी बुद्धि प्रकास॥

जब श्रीकृष्णजीने चीर हरेथे तब गोपियोंको यह वचन दियाथा कि, हम कार्त्तिक महीनेमें तुम्हारे साथ रास करेंगे तभीसे गोपियाँ रासकी आस किये मनमें उदास हो नित उठ कार्त्तिकमासहीको मनाया करें, दैवी उनके मनाते २ सुखदाई शरदृऋतुआई.

लाग्यो जबते कार्त्तिक मास । घाम शीत वर्षाको नास ॥
निर्मल जल सरवर भर रहे । फूले कमल हीय डहडहे ॥
कुमुद चकोर कंतकामिनी । फूलहिं देखि चंद यामिनी ॥
चकईमलिनकमलकुम्हिलाने । जेनिजमित्रभानुकोमाने ॥

ऐसे कह फिर शुकदेवमुनि बोले कि—पृथ्वीनाथ! एकदिन श्रीकृष्ण-चंद्र कार्त्तिक पूनोकी रात्रिको घरसों निकल बाहर आय देखें तो निर्मल आकाशमें तारे छिटक रहेहैं चांदनी दशोदिशानमें फैलरहीहै शीतल सुगंध सहित मंदगति पवन बहरही है और एक ओर सघन वनकी छबि अधिकही शोभा देरही है. ऐसा समय देखतेही उनके मनमें आया कि, हमने गोपियोंको यह वचन दियाथा कि जो शरदऋतुमें तुम्हारे साथ रास करेंगे सो पूरा किया चाहिये. यह विचारकर वनमें आय श्रीकृष्णने बाँसुरी बजाई वंशीकी ध्वनि सुन सबब्रजयुवती विरहकी माया छोड़ कुल-कान पटक गृहकाज तज हड़बड़ा उलटा पुलटा शृंगार कर उठ धाई एक गोपी जो अपने पतिके पाससे उठचली तो उसके पतिने बाटमें जा रोका और फेरकर घर ले आया, जाने न दिया; तब तो वह हरिका ध्यान कर देह छोड़ सबसे पहले जा मिली उसके चित्तकी प्रीति देख श्रीकृष्ण-चन्द्रने तुरंतही मुक्ति दी.

इतनी कथा सुन राजापरीक्षितने श्रीशुकदेवजीसे पूँछा कि—कृपानाथ! गोपीने श्रीकृष्णजीको ईश्वर जानके तो नहीं माना केवल विषयकी वासना कर भजा. वह मुक्त कैसे हुई? सो मुझे समझायके कहो, जो मेरे मनका संदेह जाय. श्रीशुकदेवमुनि बोले—धर्मावतार! जो जन श्रीकृष्ण चंद्रकी महिमा अनजाने भी गुण गातेहैं सोभी निःसंदेह भुक्ति मुक्ति पाते हैं. जैसे कोई बिनजाने अमृत पियेगा, वह भी अमर हो जियेगा. और जानके पियेगा, उसेभी गुण होगा. यह सब जानते हैं कि, पदार्थका गुण और फल बिन हुए रहता नहीं ऐसेही हरिभजनका प्रताप है कोई किसी भावसे भजे, मुक्त होयगा. कहाहै—

दोहा-जपमाला छापा तिलक, सरै न एको काम।
मनकाचे नाचे वृथा, साँचे राचे राम॥

और सुनो जिन जिनने जिस जिस भावसे श्रीकृष्णको मानके मुक्ति पाई सो कहताहूं कि नंद यशोदा इन्होंने तो पुत्रकर बूझा, गोपियोंने जार कर समझा. कंसने भयकर भजा, ग्वालबालोंने मित्रकर जपा, पांडवोंने प्रीतम कर जाना, शिशुपालने शत्रुकर माना, यदुवंशियोंने अपना कर ठाना, और योगी यती मुनियोंने ईश्वरकर ध्याया. पर अंतमें मुक्ति पदार्थ सबहीने पाया जो एक गोपी प्रभुका ध्यानकर तरी तो क्या अचरज हुआ ?

यह सुन राजा परीक्षितने श्रीशुकदेवमुनिसे कहा कि—कृपानाथ! मेरे मनका संदेह गया. अब कृपा कर आगे कथा कहिये. श्रीशुकदेवजी बोले—महाराज! जिसकाल सब गोपियाँ अपने अपने झुंड लिये, श्रीकृष्णचंद्र जगत् उजागर रूपसागरमें धायकर यों जायमिलीं जैसे पानी पानीमें जाय मिले; उससमयके बनावकी शोभा बिहारीलालजीकी कुछ वर्णी नहीं जाती कि सब शृंगार करे, नटवर वेष धरे, ऐसे मनभावने, सुन्दर सुहावने लगतेथे कि ब्रजयुवतियाँ हरि छवि देखतेही छक रहीं. तब मोहन उनकी क्षेम कुशल पूछ रूखेहो बोले. कहो रात समय भूत प्रेतकी बिरियाँ भयावनी बाट काट उलटे पुलटे वस्त्र आभूषण पहने अति घबराई, कुटुम्बकी माया तज इस महाबनमें तुम कैसे आई? ऐसा साहस करना नारियोंको उचित नहीं. स्त्रीको कहाहै कि कायर, कुमती, कपटी, कुरूप, कोढ़ी, काना, अंधा, लूला, लँगड़ा, दरिद्री कैसाही पतिहो पर उसे उसकी सेवा करनी योग्यहै इसीमें उसका कल्याण है और जगत्में बड़ाई, कुलवंती पतिव्रताका धर्म है कि, पतिको क्षण भर न छोड़े. और जो स्त्री अपने पुरुषको छोड़ परपुरुषके पास जाती है सो जन्म जन्म नरकवास पाती है. ऐसे कह फिर बोले कि—सुनो तुमने आय सघन वन निर्मल चाँदनी और यमुनातीरकी शोभा देखी अब घर जा मन लगाय कंतकी सेवा करो इसमें तुम्हारा सब भाँति भला है इतना

वचन श्रीकृष्णके मुखसे सुनतेही सब गोपियाँ एक बार तो अचेतहो अपार शोचसागरमें पड़ीं पीछे-

नीचे चितै उसासैं लई । पदनखते भू खोदत भई ॥
यों दृगसों छूटी जलधारा । मानहुँ टूटे मोतीहारा ॥

निदान दुःखसे अति घबराय रो कहने लगीं कि-अहो कृष्ण ! तुम बड़े ठगहो पहले तो बंशी बजाय अचानक हमारा ज्ञान, ध्यान, मन, धन हरलिया अब निर्दयी हो कपट कर कर्कश वचन कह प्राणलिया चाहते हो ? यों सुनाय पुनि बोलीं-

दोहा-लोग कुटुँब घरपति तजे, तजी लोककी लाज ।
हैं अनाथ कोऊ नहीं, राख शरण ब्रजराज ॥

और जो जन तुम्हारे चरणोंमें रहतेहैं सो धन, तन लाज, बड़ाई नहीं चाहते उनके तौ तुम्हीं हो जन्म जन्मके कंत, हे प्राणरूप भगवंत !

करिहैं कहाजाय हम गेह । उरझे प्राण तुम्हारे नेह ॥

इतनी बातके सुनतेही श्रीकृष्णचंद्रने मुसकराय सब गोपियों-को निकट बुलायके कहा, जो तुम राजीहो इस रंग, तो खेलोरास हमारे संग. यह वचन सुन दुःखतज गोपियाँ प्रसन्नतासे चारों ओर घिर आईं और हरिमुख निरख २ लोचन सफल करनेलगीं.

दोहा-ठाढेबीचजुश्यामघन, इहिछबिकामिनिकेलि ।
मनहुँ नीलगिरिके तरे, उलटी कंचन बेलि ॥

आगे श्रीकृष्णजीने अपनी मायाको आज्ञादी कि हम रास करेंगे उसके लिये तू एक अच्छा स्थान रच और यहीं खडीरह जो जो जिस जिस वस्तुकी इच्छा करे सो सो ला दीजि. महाराज ! उसने सुनतेही यमुनाके तीर जाय एक कंचनका मंडलाकार बड़ा चौतरा बनाय मोती, हीरे जड़ उसके चारों ओर सपल्लव केलेके खंभ लगाय तिनमें बंदनवार और भाँतिभाँतिके फूलोंकी माला बांध आ श्रीकृष्णचंद्रसे कहा. ये सुनतेही प्रसन्नहो सब ब्रजयुवतियोंको साथले यमुनातीरको चले. वहाँ जाय देखा

तो चंद्रमंडलसे रासमंडलके चौतरेकी चमक चौगुनी शोभा देरही है उसके चारों ओर रेती चाँदनीसी फूल रहीहै. सुगंध समेत शीतल मीठी मीठी पवन चल रहीहै. और एक ओर सघनवनकी हरियाली उजाली रातमें अधिकही छबि देरहीहै. इस समयको देखतेही सब गोपियाँ मग्नहो उसी स्थानके निकट मानससरोवरनाम एक सरोवर था, तिसके तीरजाय मनमानते सुथरे वस्त्र आभूषण पहर नख शिखसे शृंगारकर अच्छे बाजे बीण पखावजआदि सुर बांधबांध ले आई. और लगीं प्रेममदमाती हो सोच संकोच तज श्रीकृष्णके साथ मिल बजाने गाने नाचने. उस समय श्रीगोविंद गोपियोंकी मंडलीके मध्य ऐसे सुहावने लगतेथे जैसे तारामंडलमें चंद्रमा शोभै. इतनी कथा कह श्रीशुकदेवजी बोले सुनो महाराज! जब गोपियोंने ज्ञान विवेक छोड़ रासमें हरिको मनसे विषयी पति कर माना, और अपने आधीन जाना; तब श्रीकृष्णचंद्रजीने मनमें विचारा कि-

अबमोहिंइनअपनेवशजान्यो । पतिविषयीसममनआन्यो ॥
भई अज्ञान लाजतजि देह । लपटहिं पकरहिं कंतसनेह ॥
ज्ञानध्यान मिलके बिसरायो । छाँड़ जाउँ इनगर्व बढ़ायो ॥

देखूं मुझबिन पीछे बनमें क्या करतीहैं और कैसे रहतीहैं ऐसे विचार श्रीराधिकाजीको साथ ले श्रीकृष्णचंद्र अंतर्द्धान हुए.

इति श्रीलल्लूलालकृते प्रेमसागरे रासक्रीडारंभो नाम त्रिंशतितमोऽध्यायः ॥ ३० ॥

अध्याय ३१.

अथ रासमंडललीलाप्रारंभः ।

श्रीशुकदेवजी बोले कि, महाराज ! एकाएकी श्रीकृष्णचंद्रको न देखतेही गोपियोंकी आँखोंके आगे अँधेरा होगया. और अतिदुःखपाय ऐसे अकुलाईं जैसे मणि खोय सर्प घबराताहै इसमें एक गोपी कहने लगी–

दोहा–कहो सखी मोहन कहाँ, गये हमें छिटकाय ।
मेरे गरे भुजा धरे, रहे हुते उर लाय ॥

अभी तो हमारे संग हिल मिल रासविलास कर रहे थे इतनेही में कहाँ गये ? तुममेंसे किसीने भी जाते न देखा. यह वचन सुन सब गोपियाँ विरहकी मारी निपट उदास हो हाय मार बोलीं–

दोहा–कहाँ जायँ कैसी करैं, कासों कहैं पुकारि ।
हैं कित कछु न जानिये, क्योंकर मिलैं मुरारि ॥

ऐसे कह हरि मदमाती ह्वै सब गोपी चारों ओर ढूंढ़ ढूंढ़ गुण गाय गाय रोरो यों पुकारने लगीं–

हमको क्यों छोडी व्रजनाथ । सर्वस दिया तुम्हारे साथ ॥

जब वहाँ न पाया तब आगे जाय आपसमें बोलीं–सखी ! यहाँ तो

हम किसीको नहीं देखतीं. किससे पूंछें कि हरि किधरगये. यों सुन एक गोपीने कहा सुनो आली ! एक बात मेरे जीमें आई है कि ये जितने इस वनमें पशु पक्षी और वृक्ष हैं सो सब ऋषि मुनि हैं. ये कृष्ण-लीला देखनेको अवतार ले यहाँ आये हैं. इन्हींसे पूंछें ये यहाँ खड़े देखते हैं जिधर हरि गये होंगे तिधर बतादेंगे. इतना वचन सुनतेही सब गोपियाँ विरहसे व्याकुलहो क्या जड़, क्या चैतन्य एक एकसे पूंछने लगीं.

हे बड पीपल पाकरवीर । लह्यो पुण्यकर उच्चशरीर ॥
परउपकारी तुमहीं भये । वृक्षरूप पृथ्वी पर लये ॥
घाम शीत वर्षा दुख सहौ । काज पराये ठाढे रहौ ॥
वकला फूल मूल फल डार । तिनसों करत पराईसार ॥
सबका मनधनहरनँदलाल । गये किधरको कहो दयाल ॥
अहो कदंब अम्ब कचनारी । तुम कहुँ देखे जात मुरारी ॥
हे अशोक चंपा करवीर । जात लखे तुमने बलवीर ॥
हे तुलसीअतिहरिकोप्यारी । तनुते कहूँ न राखत न्यारी ॥
फूली आज मिले हरि आय । हमहूँ कोकिन्न देतिबताय ॥
जाती जुही मालती माई । इतह्वै निकरे कुँवरकन्हाई ॥
मृगिहि पुकारि कहैं ब्रजनारी । इततुमजातलखे बनवारी ॥

इतना कह श्रीशुकदेवजी बोले कि–महाराज ! इसीरीतिसे सब गोपी पशु,पक्षी,द्रुम, वेलीसे पूंछती श्रीकृष्णमय हो लगीं पूतना, दावा आदि सब श्रीकृष्णकी करी हुई बाललीला करने और ढूँढने. निदान ढूंढते ढूंढते कितनी एक दूरजाय देखें तो श्रीकृष्णके चरणचिह्न ,कमल, यव, ध्वजा, अंकुश समेत रेतपर जगमगा रहेहैं देखतेही ब्रजयुवतियाँ जिस रजको सुर नर मुनि खोजते हैं तिस रजको दंडवत् कर शिरचढ़ाय हरिके मिलनेकी आशधर वहाँसे बढ़ीं तो देखा कि उन चरणचिह्नोंके आसपास एक नारीके भी पावँ उपड़े हुएहैं. उन्हें देख अचरजकर आगे जाय देखें

तो एक ठौर कोमल पातोंके बिछौनेपर सुन्दर जड़ाऊ दर्पण पडाहै. उससे लगीं पूँछने जब विरहभरा वह भी न बोला, तब उन्होंने आपसमें पूंछा कहौ आली! यह क्योंकर लिया उसी समय जो प्रियप्यारीके मनकी जानतीथी, उसने उत्तर दिया कि, सखी! जद प्रीतम प्यारीकी चोटी गूँथन बैठे और सुंदर वदन विलोकनेमें अन्तर हुआ, तिस बिरियाँ प्यारीने दर्पण प्रियाको दिखाया तद श्रीमुखका प्रतिबिंब सन्मुख आया. यह बात सुन गोपियाँ कुछ न कोपियाँ बरन् कहने लगीं कि उसने शिव पार्वतीको अच्छी रीतिसे पूजा है और बड़ा तप कियाहै, जो प्राणपतिके साथ एकांतमें निधड़क विहार करतीहै. महाराज! सब गोपियाँ तो इधर विरह मदमाती बक बक झक झक ढूंढ़ती फिरतीथीं कि उधर श्रीराधिकाजी हरिके साथ अधिक सुखमान प्रीतमको अपने वशजान, आपको सबसे बड़ा ठान, मनमें अभिमान आन, बोलीं प्यारे! अब मुझसे चला नहीं जाता, कांधे चढ़ाय ले चलिये. इतनी बातके सुनतेही गर्वप्रहारी अंतर्यामी श्रीकृष्णचंद्रजीने मुसकराय बैठकर,कहा कि, आइये हमारे काँधेपर चढ़लीजिये. जद वह हाथ बढाय चढ़नेको तय्यार हुई तद श्रीकृष्ण अंतर्द्धान हुए. जो हाथ बढ़ाये थे सो हाथ पसारे खड़ी रहगई ऐसे कि जैसे घनसे मानकर दामिनी बिछुड़ रही हो के चंद्रसे चंद्रिका रूस पीछे रहगई होय, और गोरे तनुकी ज्योति छूटि क्षितिपर छाय यों छबि दे रहीथी कि—मानों सुंदर कंचनकी भूमिपै खड़ीहै. नयनोंसे जलकी धार बहरहीथी और जो सुवासके वश मुखपास भँवर आय २ बैठते थे तिन्हें भी उड़ाय न सकतीथी और हाय हाय कर वनमें विरहकी मारी इस भाँति रोरहीथी अकेली, कि जिसके रोनेकी धुनि सुनि सब रोतेथे पशु पक्षी और द्रुम वेली और यों कहरही थी—

हा हा नाथ परम हितकारी। कहाँ गये स्वच्छंद विहारी॥
चरण शरण दासी मैं तेरी। कृपासिंधु लीजै सुध मेरी॥

इतनेमें सब गोपियाँ भी ढूंढ़ती ढूंढ़ती उसके पास जा पहुँचीं और उसके गले लग सबोंने मिल मिल ऐसा सुख माना कि, जैसे

कोई महाधन खोय आधा धन पाय सुख माने. निदान सब गोपियाँ भी उसे अति दुःखित जान साथ ले महावनमें पैठीं और जहाँलग चांदना देखा तहाँलग गोपियोंने वनमें श्रीकृष्णको ढूंढा. जब सघन वनके अँधेरेमें बाट न पाई तब वे सब वहाँसे फिर धीरज धर मिलनेकी आश कर यमुनाके उसी तीरपर आय बैठीं. जहाँ श्रीकृष्णचन्द्रजीने अधिक सुख दियाथा.

इति श्रीलल्लूलालकृते प्रेमसागरे गोपीविरहवर्णनं नाम एकत्रिंशोऽध्यायः ॥ ३१ ॥

अध्याय ३२.

श्रीशुकदेवजी बोले कि, महाराज! सब गोपियाँ यमुनातीर बैठ प्रेम मदमातीहो हरिके चारित्र और गुण गाने लगीं, कि प्रीतम जबसे तुम व्रजमें आये, तबसे नये नये सुख यहाँ आकर छाये; लक्ष्मीने करी तुम्हारे चरणकी आश, अचल आयके किया है वास; हम गोपी हैं दासी तुम्हारी, वेग सुधलीजे दयाकर हमारी. जबसे सुंदर साँवली सलोनी मूर्ति देखी है तेरी, तबसे हुई हैं बिन मोलकी चेरी; तुम्हारे नयन बाणोंने हने हैं हिय हमारे, सो प्यारे किसलिये लेखे नहीं हैं तुम्हारे जीव जाते हैं हमारे. अब करुणा कीजे, तजकर कठोरता वेग दर्शन दीजे. जो तुम्हें मारना ही था तो हमको विषधर आग और जलसे किसलिये बचाया? तभी मरने क्यों न दिया? तुम केवल यशोदासुत नहीं हो. तुम्हें तो ब्रह्मा रुद्र इंद्रादि सब देवता विनतीकर लाये हैं संसारकी रक्षाके

लिये, हे प्राणनाथ ! हमैं एक अचरज बड़ा है कि जो अपनेहीको मारोगे तो करोगे किसकी रखवाली ? प्रीतम तुम अंतर्यामी है हमारे दुःख हर मनकी आश क्यों नहीं पूरी करते ? क्या अबलाओंपर ही शूरता धरीहै. हे प्यारे ! जब तुम्हारी मंदमुसकान युत प्यार भरी चितवन और भ्रुकुटीकी मरोर, नयनोंकी सिकोर, मुकुट ग्रीवाकी लटक, और बातोंकी चटक, हमारे जियमें आती है, तब क्या क्या दुःखपाती हैं ? और जिस समय तुम गोचरावन जातेथे वनमें, तिस समय तुम्हारे कोमल चरणोंका ध्यान करनेसे वनके कंकर काँटे आ सकतेथे हमारे मनमें; भोरके गये साँझको फिर आतेथे, तिसपर भी हमें चार प्रहर चारयुगसे जातेथे, जद सन्मुख वैठे सुंदर वदन निहारती थीं, तद अपने जीमें विचारतीथीं कि, ब्रह्मा कोई बड़ा मूर्ख है जो पलकैं बनाईहैं; हमारे इकटक देखनेमें बाधा डालनेको.

इतनी कथा कह श्रीशुकदेवजी बोले कि, महाराज ! इसी रीतसे सब गोपी विरहकी मारी श्रीकृष्णचंद्रके गुण और चरित्र अनेक प्रकारसे गाय गाय हारीं, तिसपर भी न आये विहारी, तव तो निपट निराशहो मिलनेकी आश तज जीनेका भरोसा छोड़ अति अधीरतासे अचेत हो गिर गिर ऐसे रोय पुकारीं कि सुनकर चर अचर भी दुःखित भये भारी.

इति श्रीलल्लूलालकृते प्रेमसागरे गोपीविरहकथनं नाम द्वात्रिंशोऽध्यायः ॥ ३२ ॥

अध्याय ३३.

श्रीशुकदेवजी बोले कि, महाराज ! जद श्रीकृष्णचंद्र अंतर्यामीने जाना कि–अब ये गोपियाँ मुझ विन जीती न बचेंगी.

छन्द–तब तिनहींमें प्रकट भये, नँदनंदन यों।
दृष्टिबंदकर छिपे, फेर प्रकटे नटवर ज्यों॥
आये हरि देखे जबै, उठीं सबै यों चेत।
प्राणपरे ज्यों मृतकमें, इंद्री जगे अचेत॥
बिनदेखे सबको मन, व्याकुल हो भयो।
मानो मनमथभुजंग, सबनि डसिकैगयो॥
पीर खरी प्रिय जान, पहूँचे आइकै।
अमृतबेलिन सींचलई, सब ज्याइकै॥

दोहा–मनहुँ कमलनिशिमलिनहे,ऐसे हो ब्रजबाल।
कुंडल रविछवि देखिकै, फूले नयनविशाल॥

इतनी कथा कह श्रीशुकदेवजी बोले कि, महाराज ! श्रीकृष्णचन्द्र आनंदकंदको देखतेही सब गोपियाँ एकाएकी विरहसागरसे निकल उनके पास जाय ऐसे प्रसन्न हुइ कि जैसे कोई अथाह समुद्रमें डूब थाह पाय प्रसन्न होय और चारों ओरसे घेरकर खड़ी भई तब श्रीकृष्ण उन्हें साथ लिये

वहाँ आये, जहाँ पहले रासविलास किया था. जातेही एक गोपीने अपनी ओढ़नी उतारके श्रीकृष्णके बैठनेको बिछा दी. जो वे उसपर बैठे तो कई एक गोपी क्रोधकर बोलीं कि महाराज! तुम बड़े कपटी हौ विराना मन धन लेना जानतेहो, पर किसीका कछु गुण नहीं मानते. इतना कह आपसमें कहने लगी.

दोहा–गुण छाँडे अवगुण गहे, रहे कपट मनभाय।
देखो सखी विचारिकै, तासों कहा बसाय॥

यह सुन एक उनमेंसे बोली, कि सखी! तुम अलगीरहो अपने कहे कछु शोभा नहीं पाती. देखो मैं कृष्णहीसे कहावर्तीहौं. यों कह उसने मुसकरायके श्रीकृष्णसे पूंछा कि–महाराज! एक बिनगुण किये गुण मान ले दूसरा किये उनका पलटादे, तीसरा गुणके पलटे अवगुण करे, चौथा किसीके किये गुणको भी मनमें न धरे. इन चारोंमें कौन भलाहै और कौन बुरा? यह तुम हमसे समझाके कहो. श्रीकृष्णचंद्र बोले कि तुम सब मनदे सुनो भला और बुरा मैं बुझाकर कहताहूं. उत्तम तो वह है जो विनकिये करै जैसे पिता पुत्रको चाहता है. और किये पर करनेसे कुछ पुण्य नहीं सो ऐसे है जैसे बेटाके हेतु गौ दूध देती है, गुणको अवगुण माने तिसे शत्रु जानिये, सबसे बुरा कृतघ्नी, जो कियेको मेटे. इतना वचन सुनतेही सब गोपियां आपसमें एक एकका मुहँ देख २ हँसने लगीं. तब तो श्रीकृष्णचंद्र घबराकर बोले कि, सुनो मैं इन चारकी गिनतीमें नहीं, जो तुम जानके हँसती हो, बरन् मेरी तो यह रीतिहै कि जो मुझसे जिस बातकी इच्छा रखताहै तिसके मनकी वांछा पूरी करताहूँ कदाचित् तुम कहो कि, जो तुम्हारी यह चालहै तो हमें वनमें ऐसे क्यों छोड़गये? उसका कारण यहहै कि मैंने तुम्हारी प्रीतिकी परीक्षा ली इस बातका बुरा मत मानो मेरा कहा सचाही जानो यों कह फिर बोले–

अवहमपरचौलियोतिहारो। कीन्होंसुमिरणध्यानहमारो॥
मोहींसों तुम प्रीति बढाई। निर्धन मनो संपदा पाई॥
ऐसे आईं मेरे काज। छाँडे लोक वेदकी लाज॥

ज्यों वैरागी छाँडे गेह। मनदे हरिसों करें सनेह ॥
कहा तिहारी करें बडाई। हमपै पलटो दियो न जाई ॥
जो ब्रह्माके सौवर्ष जियें तौभी हम तुम्हारे ऋणसे उऋण न होयँ ॥

इति श्रीलल्लूलालकृते प्रेमसागरे गोपीकृष्णसंवादो नाम

त्रयस्त्रिंशोऽध्यायः ॥ ३३ ॥

अध्याय ३४.

श्रीशुकदेवमुनि बोले, हे राजा! जब श्रीकृष्णचंद्रने इस ढबसे रसके वचन कहे. तब तो सब गोपियाँ रिस छोड़ प्रसन्न हो उठ हरिसे मिल भाँति भाँतिके सुख मान आनंदमें मग्न हो कुतूहल करने लगीं. तिस समय-

दोहा-कृष्ण अंश मायाठई, भये अंग बहु देह।
सबको सुखचाहतदियो, लीला परमसनेह ॥

महाराज! जितनी गोपियाँ थीं तितनेही शरीर श्रीकृष्णचंद्रने धर उसी रासमंडलके चौतरेपर सबको साथ ले फिर रासविलासका आरंभ किया.

द्वैद्वै गोपी जोरे हाथा। तिनके बीच बीच हरि साथा॥
अपनी अपनी ढिग सब जाने। नहीं दूसरेकी पहिचाने॥
अँगुरिनमें अँगुरीकरदिये। प्रफुलित फिरैं संग हरि लिये॥
बिच गोपी बिच नंदकिशोर। सघन घटा दामिनि चहुँओर॥
श्याम कृष्ण गोरी ब्रजबाला। मानहुँ कनक नील मणिमाला॥

महाराज! उसीरीतिसे खड़ेहो गोपी और कृष्ण लगे अनेक अनेक प्रकारके यंत्रोंके सुर मिलाय मिलाय कठिन कठिन राग अलप अलाप बजाय बजाय गाने और तीखी चोखी आढ़ी ड्योढी दुगुन तिगुनकी तानें लेले उपजें बोल बताय बताय नाचने और आनंदमें मग्न ऐसे हुए, कि उनको तनमनकी भी सुध न थी. कभी उनका अंचल उघड़ जाताथा; कभी इनका मुकुट खिसल इधर, मोतियोंके हार टूट गिरते थे; उधर बन-माल, पसीनेकी बूँदें माथोंपर मोतियोंकी लड़ीसी चमकतीथीं, और गोपि-योंके गोरे गोरे मुखड़ोंपर अलकें यों बिखर रही थीं, कि जैसे अमृतके लोभसे सपोलिये उड़कर चांदको जा लपटे होयँ. कभी कोई गोपी आ कृष्णकी मुरलीके साथ मिलकर जैलमें गाती थी, कभी कोई अपनी तान अलग ही लेजाती थी; और जब कोई बंशीको छेक उसकी तान समुझि ज्योंकीत्यों गलेसे निकालती थी, तब हरि ऐसे भूल रहते कि ज्यों बालक दर्पणमें अपना प्रतिबिंब देख भूलरहे इसी ढबसे गाय गाय नाच नाच अनेक अनेक प्रकारके हाव भाव कटाक्ष कर कर सुख लेते देतेथे और परस्पर रीझ रीझ हँस हँस कंठ लगाय लगाय वस्त्र आभूषण निछावर कर रहेथे. तिसकाल ब्रह्मा, रुद्र, इन्द्र आदि सब देवता और गंधर्व अपनी अपनी स्त्रियों समेत विमानोंमें बैठ रासमंडलीका सुख देख देख आनंदसे फूल बरसावनेलगे और उनकी स्त्रियाँ वह सुख लख हौसकर मनमें कहतीं, कि जो जन्म ले ब्रजमें जातीं तो हम भी हरिके साथ रास बिलास करतीं और राग रागिनियोंका ऐसा समा बँधा हुआ था कि जिसको सुन-के पवन पानी भी न बहता था. और तारामंडल समेत चन्द्रमा थकित

हो किरणोंसे अमृत बरसावता था. इसमें रात बढी तो छः महीने बीत गये और किसीने न जाना तभीसे उस रैनिका नाम ब्रह्मरात्रि हुआ.

इतनी कथा सुनाय श्रीशुकदेवजी बोले-पृथ्वीनाथ ! रासलीला करते करते जो कुछ श्रीकृष्णचन्द्रके मनमें तरंग आई तो गोपियोंको ले यमुना तीरपर जाय नीरमें पैठ जलक्रीडा कर श्रम मिटाय बाहर आय सबके मनोरथ पूरेकर बोले कि-अब चार घड़ी रात बाकी रहीहै. तुम सब अपने अपने घर जावो. इतना वचन सुन उदासहो गोपियोंने कहा नाथ ! आपके चरणकमल छोड़के घर कैसे जावें. हमारा लालची मन तो कहा मानता ही नहीं. श्रीकृष्ण बोले कि, सुनो जैसे योगीजन मेरा ध्यान धरते हैं तैसे तुम भी ध्यान कीजियो. मैं तुम्हारे पास जहाँ रहोगी, तहाँ रहूंगा. इतनी बातके सुनते ही संतोषकर सब बिदाहो अपने अपने घर गईं और यह भेद उनके घरवालोंमेंसे किसीने न जाना कि ये यहाँ न थीं.

इतनी कथा सुन राजा परीक्षितने श्रीशुकदेवमुनिसे पूंछा कि—दीनदयालु ! यह तुम मुझे समझाकर कहो कि, श्रीकृष्णचन्द्र तो असुरोंको मार पृथ्वीका भार उतारने, और साधु संतोंको सुखदे धर्मका पंथ चलानेके लिये अवतार ले आये थे. उन्होंने पराई स्त्रियोंके साथ रास विलास क्यों किया ? यह तो कुछ लंपटका कर्म है, जो बिरानी नारीसे भोग करे. शुकदेवजी बोले—

सुन राजा यह भेद न जान्यों । मानुषसम परमेश्वर मान्यों ॥
जिनके सुमिरे पातक जात । तेजवंत पावन हो गात ॥
जैसे अग्नि माँझ कछु परैं । सोऊ अग्नि होयके जरैं ॥

सामर्थी क्या नहीं करते. क्योंकि वे तो करके कर्मकी हानि करते हैं जैसे शिवजीने विष लिया और खाके कंठको भूषण दिया; और काले साँपका किया हार, कौन जाने उनका व्यवहार ? वे तो अपने लिये कछु भी नहीं करते. जो उनका भजन सुमिरन कर कोई वर माँगताहै, तैसाही तिसको देते हैं. उनकी तो यह रीति है कि, सबसे मिले दृष्टिआते हैं; और ध्यानकर देखिये तो सबसे ऐसे

अलग जनाते हैं, जैसे जलमें कमलका पात और गोपियोंकी उत्पत्ति तो मैं तुम्हें पहलेही सुना चुकाहूं कि, वेद और वेदकी ऋचायें हरिका दरश परश करनेको ब्रजमें जन्म ले आई हैं. और इसी भाँति श्रीराधिका भी ब्रह्मासे वर पाय श्रीकृष्णचंद्रजीकी सेवा करनेको जन्म ले आई और प्रभुकी सेवामें रहीं.

इतना कह श्रीशुकदेवजी बोले—महाराज ! कहाहै कि, हरिका चरित्र मानलीजे, पर उनके करनेमें मन न दीजे. जो कोई गोपीनाथका यश गाता है सो निश्चय परमपद पाताहै. और जैसा फल होताहै अरसठ तीर्थके न्हानेमें, तैसाही फल मिलताहै श्रीकृष्णयश गानेमें.

इति श्रीलल्लूलालकृते प्रेमसागरे पंचाध्यायीरासलीलावर्णनं
नाम चतुस्त्रिंशोऽध्यायः ॥ ३४ ॥

अध्याय ३५.

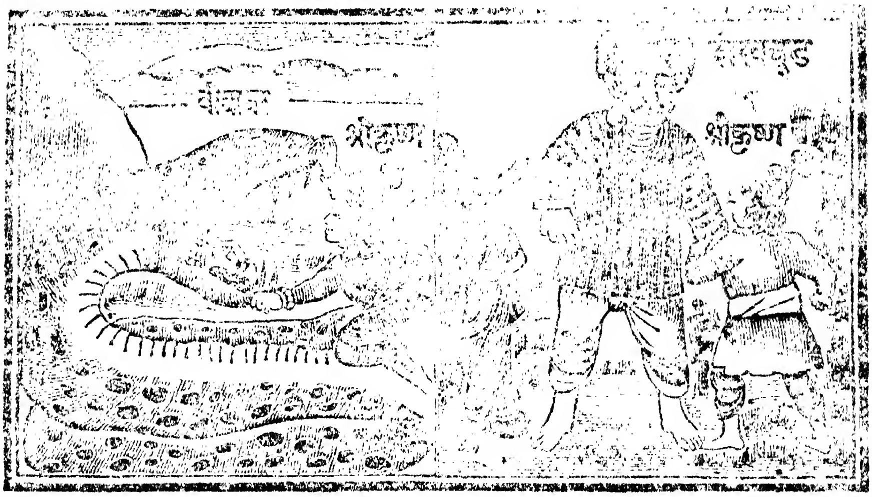

श्रीशुकदेवमुनि कहने लगे कि—राजा ! जैसे श्रीकृष्णजीने विद्याधरको तारा, और शंखचूड़को मारा सो प्रसंग कहताहूं, तुम जी लगाय सुनो. एक दिन नंदजीने सब गोपग्वालोंको बुलायके कहा, कि भाइयो ! जब श्रीकृष्णका जन्म हुआथा, तब मैंने कुलदेवी अंबिकाकी मानता

करीथी कि जिस दिन श्रीकृष्ण बारह वर्षका होगा तिस दिन नगर समेत बाजे गाजेसे जाकर पूजा करूंगा; सो दिन उनकी कृपासे आज देखा, अब चलकर पूजा किया चाहिये. इतना वचन नंदजीके मुखसे सुनतेही सब गोपग्वाल उठधाये, और झटपट अपने अपने घरोंसे पूजाकी सामग्री ले आये. तब तो नंदराय कुटुंब समेत उनके साथ होलिये और चले चले अंबिकाके स्थानपर पहुँचे. वहाँ जाय, सरस्वती नदीमें न्हाय, नंदजीने पुरोहित बुलाय सबको साथ ले देवीके मंदिरमें जाय शास्त्रकी रीतिसे पूजा की, और जो पदार्थ चढ़ानेको लेगयेथे सो आगे धर परिक्रमा दे हाथ जोड़ बिनतीकर कहा, कि मा! आपकी कृपासे कान्ह बारहवर्षका हुआ. ऐसे कह दंडवत् कर मंदिरके बाहर आय सहस्त्रब्राह्मण जिमाये, इसमें अबेर जो हुई तो सब ब्रजवासियों समेत नंदजी तीर्थ व्रतकर वहाँही रहे रातको सोतेथे. कि एक अजगरने आय नंदरायका पाँव पकड़ा और लगा निगलने तब तो वे देखतेही भयखाय घबराके लगे पुकारने—हे कृष्ण! वेग सुध ले, नहीं तो यह मुझे निगले जाताहै. उनका शब्द सुनतेही सारे ब्रजवासी स्त्रियाँ पुरुष नींदसे चौंक नंदजीके निकट जाय उजाला कर देखें तो एक अजगर उनका पाँव पकड़े पड़ाहै, इतनेमें श्रीकृष्णचंद्रजीभी पहुँचे सबके देखतेही ज्योंहीं उसकी पीठमें चरण लगाया त्योंहीं वह अपनी देह छोड़ सुंदर पुरुष हो प्रणामकर सन्मुख हाथ जोड़ खड़ा हुआ. तब श्रीकृष्णने उससे पूछा कि तू कौन है; और किसपापसे अजगर हुआथा सो कह. वह शिर झुकाय विनती कर बोला अंतर्यामी! तुम सब जानते हो, मेरी उत्पत्ति कि, मैं सुदर्शननाम विद्याधरहूं सुरपुरमें रहताथा और अपने रूप गुणके आगे गर्वसे किसीको कुछ न गिनताथा. एक दिन विमानमें बैठ फिरनेको निकला तो जहाँ अंगिराऋषि बैठे तप करतेथे तिनके ऊपर हो सौबेर आयागया. एकबेर जो उन्होंने विमानकी परछाहीं देखी तो ऊपर देख क्रोधकर मुझे शाप दिया कि, रे अभिमानी तू अजगर हो. इतना वचन उनके मुखसे निकला कि मैं अजगर हो नीचे गिरा, तिससमय ऋषिने कहा कि—तेरी मुक्ति श्रीकृष्णचंद्रके हाथ होगी. इसीलिये मैंने नंदरायजीके चरण आन

पकड़ेथे, कि आप आयके मुझे मुक्त करें. सो कृपानाथ! आपने आय कृपाकर मुझे मुक्ति दी. ऐसे कह विद्याधर तो परिक्रमा दे हरिसे आज्ञा ले दंडवत् कर बिदाहो विमानपर चढ़ सुरलोकको गया और यह चरित्र देख सब ब्रजवासियोंको अचरज हुआ. निदान भोर होतेही देवीका दर्शन कर सब मिल वृन्दावन आये.

इतनी कथा सुनाय श्रीशुकदेवमुनि बोले, कि पृथ्वीनाथ! एक दिन हलधर और गोविंद गोपियों समेत चाँदनीरातको आनंदसे वनमें गाय रहेथे, कि इसबीच कुबेरका सेवक शंखचूड़ नाम यक्ष जिसके शीशमें मणि और अति बलवान्था. सो आ निकला. देखें तो एक ओर सब गोपीयूथ कुतूहल कररहीहैं व एक ओर कृष्ण बलदेव मग्नहो मत्तवत् गाय रहे हैं, इसके जीमें जो कुछ आई तो सब ब्रजयुवतियोंको घेर आगेकर ले चला. तिससमय सब गोपी भय खाय पुकारीं ब्रजनाथ! रक्षा करो; कृष्ण बलराम इतना वचन गोपियोंके मुखसे निकलतेही सुनकर दोनों भाई रूख उखाड़ हाथोंमें ले यों दौड़ आये कि, मानो सिंह माते गजपर उठधाये और वहाँ जाय गोपियोंसे कहा कि, तुम किसीसे मत डरो, हम आन पहुँचे इनको काल समान देखतेही यक्ष भयमानहो गोपियोंको छोड़ अपना प्राण ले भागा, उस काल नंदलालने बलदेवजीको तो गोपियोंके पास छोड़ा और आप जाय उसके झोटे पकड़ पछाड़ा निदान तिरछा हाथकर उसका शिर काट मणि ले आन बलरामजीको दिया.

इति श्रीलल्लूलालकृते प्रेमसागरे विद्याधरमोक्ष—शंखचूड़-वधोनाम पंचत्रिंशोऽध्यायः ॥ ३५ ॥

अध्याय ३६.

श्रीशुकदेवमुनि बोले राजा ! जबतक हरि वनमें धेनु चरावैं, तबतक सब ब्रजयुवतियां नंदरानीके पास आय बैठकर प्रभुका यश गावैं. जो लीला श्रीकृष्ण वनमें करें सो गोपियां घरबैठी उच्चरैं.

सुनौ सखी वाजतिहै वैन । पशु पक्षी पावत हैं चैन ॥
पतिसँग देवी थकीविमान । मगन भई है धुनि सुनि कान ॥
करते परहिं चुरी सुंदरी । विह्वलमनतनकी सुध हरी ॥
तवही एक कहै ब्रजनारी । गरजनिमेघतजी अतिहारी ॥
गावत हरि आनंद अडोल । मोहन चातकपानिकपोल ॥
पियसँगमृगी थकी सुनिवेनु । यमुना फिरी घिरी तहँ धेनु ॥
मोहे बादर छैया करे । मानो छत्र कृष्णपर धरे ॥
अवहरि सघनकुंजकोधाये । पुनि सब वंशीवटतर आये ॥
गायन पाछे डोलत भये । घेरलई जल प्यावन गये ॥
साँझभई अब उलटे हरी । राँभति गाय बेणुधुनि करी ॥

इतनी कथा सुनाय श्रीशुकदेवजीने राजा परीक्षितसे कहा कि, महाराज ! इसीरीतिसे नित्त गोपियाँ दिनभर हरिके गुण गावें और साँझ समय

आगे जाय श्रीकृष्णचंद्र आनंदकंदसे मिल सुख मान ले आवें और तिस समय यशोदारानी भी रजमंडित पुत्रका मुख प्यारसे पोंछ कंठ लगाय सुखमाने.

इति श्रीलल्लूलालकृते प्रेमसागरे गोपीगीतवर्णनो नाम षट्त्रिंशोऽध्यायः ॥ ३६ ॥

अध्याय ३७.

श्रीशुकदेवजी बोले कि महाराज ! एक दिन श्रीकृष्ण बलराम साँझ समय धेनु चरायके वनसे घरको आतेथे उसबीच एक असुर अति बड़ा बलवान् आय गायोंमें मिला.

तिहि आकाशलौं देहीधरी । पीठकडी पाथरसी करी ॥
बडे सींग तीक्षण दोउखरे । रक्तनयन अतिही रिसभरे ॥
पूँछ उठाय डकारत फिरे । रहि रहि मूतत गोबर करे ॥
फटकै कंध हिलावै कान । गये देव सब छोड विमान ॥
खुरसों खोदै नदी करारे । पर्वत उलट पीठसों डारे ॥
सबको त्रासभयो तिहिकाल । कंपहिं लोकपाल दिगपाल ॥
पृथ्वी हलै शेष थरहरे । तिय औ धेनु गर्भ भूपरे ॥

उसे देखतेही सब गाय तो जिधर तिधर फैलगईं और ब्रजवासी दौड़ वहाँ आये, जहाँ सबके पीछे कृष्ण बलराम चले आते थे. प्रणाम कर बोले महाराज! आगे एक अति बड़ा बैल खड़ाहै उससे हमें बचावो. इतनी बातके सुनतेही अंतर्यामी श्रीकृष्णचन्द्र बोले कि तुम कुछ मत-डरो. वह राक्षस वृषभका रूप बनकर आयाहै नीच. हमसे चाहताहै अपनी मीच. इतना कह आगे जाय उसे देख बोले बनवारी, कि आव हमारे पास कपटतनु धारी; तू और किसीको क्या डराताहै मेरे निकट किसलिये नहीं आता जो वैरी सिंहका कहावताहै, सो मृगपर नहीं धावता. देख मैंहींहूं कालरूप गोविंद, मैंने तुझसे बहुतोंको मारके किया है निकंद; यों कह फिर ताल ठोंक ललकारे, आ मुझसे संग्राम कर; यह वचन सुनतेही असुर ऐसे क्रोधकर धाया; कि, मानो इंद्रका वज्र आया; ज्यों ज्यों हरि उसे हटातेथे त्योंत्यों वह सँभल २ बढ़ा आताथा. एक-बार जो उन्होंने उसे दे पटका, त्योंहीं खिझलाकर उठा और दोनों सींगोंसे उसने हरिको दबाया, तब तो श्रीकृष्णजीने भी फुरतीसे निकल झट पाँवपर पाँवदे उसके सींग पकड़ यों मरोडा कि, जैसे कोई भीगे चीरको निचोड़े. निदान वह पछाड़ खाय गिरा और उसका जी निकल गया. तिस समय सब देवता अपने अपने विमानोंमें बैठे आनंदसे फूल बरसाने लगे, और गोपी गोप कृष्णयश गाने, इसबीच श्रीराधिकाजीने आ हरिसे कहा; कि महाराज! वृषभरूप जो तुमने मारा इसका पाप हुआ. इससे अब तुम तीर्थ न्हायआवो, तब किसीको हाथ लगावो. इतनी बातके सुनतेही प्रभु बोले कि, सब तीर्थोंको मैं ब्रजमेंही बुलाये लेताहूं यों कह गोवर्द्धनके निकट जाय दो औड़े कुंड खुदवाये, तहाँहीं सब तीर्थ देहधर आये; और अपना अपना नाम कह कह उनमें जल डाल डाल चलेगये. तब श्रीकृष्णचंद्र उनमें स्नान कर बाहर आय अनेक गोदान दे बहुतसे ब्राह्मण जिमाय शुद्ध हुए. और उसी दिनसे कृष्णकुंड राधाकुंड वे प्रसिद्ध हुए.

यह प्रसंग सुनाय श्रीशुकदेवमुनि बोले कि, महाराज! एक दिन नारदजी कंसके पास आये. और उसका कोप बढ़ानेको जब उन्होंने

बलराम और श्यामके होने और मायाके आने और कृष्णके जानेका भेद समझाकर कहा, तब कंस क्रोधकर बोला नारदजी तुम सच कहतेहो.

दोहा–प्रथमदियोसुतआनिकै, मन परतीत बढाय।
ज्यों ठग कछुदिखायकै, सर्वस ले भजिजाय॥

इतना कह वसुदेवजीको बुलाय पकड़ बाँधा, और काँधेपर हाथरख अकुला कर बोला.

मिलारहा कपटी तू मुझे। भलासाधु जाना मैं तुझे॥
दिया नंदके कृष्ण पठाय। देवी हमें दिखाई आय॥
मनमेंकछुकहीमुख और। मारूंअवशितुझेयहिठौर॥
मित्रसगासेवक हितकारी। करैकपटसोपापीभारी॥

दोहा–मुख मीठा मन विषभरा, रहै कपटके हेत।
आप काज परद्रोहिया, उससे भला जु प्रेत॥

ऐसे बकझक फिर कंस नारदजीसे कहनेलगा कि महाराज! हमने कुछ इसके मनका भेद नपाया; हुआ लड़का और कन्याको लादिखाया; जिसे कहा अधूरागया, सोई जा गोकुलमें बलदेव भया. इतना कह क्रोधकर होंठ चबाय खड्ग उठाय ज्यों चाहा कि, वसुदेवको मारूं त्यों नारदमुनिने हाथ पकड़कर कहा राजा! वसुदेवको तू रख आज, और जिसमें कृष्ण बलराम आवें सो कर काज. ऐसे समझाय बुझाय जब नारद मुनि चलेगये, तब कंसने वसुदेव देवकीको तो एक कोठरीमें मूंद दिया और आप भयातुर हो केशीनाम राक्षसको बुलायके कहा.

महाबली तू साथी मेरा। बडा भरोसा मुझको तेरा॥
एकबार तू ब्रजमें जा। रामकृष्ण हति मुझे दिखा॥

इतना वचन सुनतेही केशी तो आज्ञा पाय विदाहो दंडवत्कर वृंदावनको गया. और कंसने शल, तोशल, चाणूर, अरिष्ट, व्योमासुर आदि जितने मंत्री थे सबको बुला भेजा. वे आये, तिन्हें समझाकर कहने लगा कि, मेरा वैरी पास आय बसाहै तुम अपने जीमें सोचविचार करके

मेरे मनका शूल जो खटकताहै सो निकालो. मंत्री बोले पृथ्वीनाथ ! आप महाबली हो किससे डरते हो. रामकृष्णका मारना क्या बड़ी बातहै कुछ चिंता मतकरो. जिस छलबलसे वे यहाँ आवें, सोई हम मता बतावें. पहले तो यहाँ भली भाँतिसे एक ऐसी सुंदर रंगभूमि बनवाइये, कि जिसकी शोभा सुनतेही देखनेको नगर नगर गाँव गाँवके लोग उठ धावें. पीछे महादेवका यज्ञ करवावो और होमके लिये बकरे भैंसे मँगवावो. यह समाचार सुन सब ब्रजवासी भेंट लावेंगे तिनके साथ रामकृष्णभी आवेंगे. उन्हें तभी कोई मल्ल पछाड़ेगा या कोई औरही बली पौरमें मारडालेगा. इतनी बातके सुनतेही.

सोरठा-कहै कंस मन लाय, भलो मतो मंत्री दियो।
लीने मल्ल बुलाय, आदरकर बीरा दये॥

फिर सभामें आय अपने बड़े बड़े राक्षसोंसे कहने लगा, कि जब हमारे भानजे राम कृष्ण यहाँ आवें तब तुममेंसे कोई उन्हें मार डालियो जो मेरे जीका खटका जाय. उन्हें यों समझाय पुनि महावतको बुलाकर बोला, कि-तेरा सबसे मतवाला हाथी है तू द्वारपर लिये खड़ा रहियो जद वे दोनों आवें और द्वारमें पाँव दें तद तू हाथीसे चिथा डालियो किसी भाँति भागने न पावें जो उन दोनोंको मारेगा सो मुँहमाँगा धन पावेगा. ऐसा सबको सुनाय समझाय बुझाय कार्त्तिक बदी चौदसको शिवका यज्ञ ठहरा कंसने साँझ समय अक्रूरको बुलाय अति भाव भक्ति कर घरभीतर लेजाय एक सिंहासनपर अपने पास बैठाय हाथ पकड़ अतिप्यारसे कहा, कि-तुम यदुकुलमें सबसे बड़े ज्ञानी, धर्मात्मा, धीरहो इसलिये तुम्हें सब जानते मानते हैं. ऐसा कोई नहीं जो तुम्हें देख सुखी न होय, इससे जैसे इंद्रका काज वामनने जा किया जो छलकर बलिका सारा राज्य ले दिया और राजा बलिको पाताल पठाया, तैसे तुम हमारा काम करो कि, एक बेर वृन्दावन जावो और देवकीके दोनों लड़कोंको जैसे बने तैसे छलबल कर यहाँ ले आवो. कहाहै जो बड़े हैं सो आप पराये काज दुःख सहाकरतेहैं. तिसमें तुम्हें तो है हमारी सब बातकी लाज

अधिक क्या कहेंगे? जैसे बने तैसे उन्हें ले आवो तो यहाँ सहजहीमें मारे जायँगे. कैतो देखतेही चाणूर पछाड़ेगा कै गज कुवलया पकड़ चीर डालेगा. नहीं तो मैंही उठ मारूंगा. अपना काज अपने हाथ सँवारूंगा, और उन दोनोंको मार पीछे उग्रसेनको हनूँगा, क्योंकि वह बड़ा कपटी है. मेरा मरना चाहता है. फिर देवकीके पिता देवकको आगसे जलाय पानीमें डुबाऊंगा. साथही उसके वसुदेवको मार हरिभक्तोंको जड़से खोऊंगा. तब निष्कंटक राज्य कर जरासन्ध जो मेरा मित्र है प्रचंड उसके त्राससे काँपते हैं नौखंड, और नरकासुर, बाणासुर आदि बड़े बड़े महाबली राक्षस जिनके सेवक हैं तिससे जा मिलूंगा. जो तुम रामकृष्णको ले आवो. इतनी बातें कहकर कंस फिर अक्रूरको समझाने लगा कि–तुम वृन्दावनमें जाय नंदके यहाँ कहियो कि, शिवका यज्ञ है धनुप धरा है और अनेक अनेक प्रकारके कुतूहल वहाँ होयँगे. यह सुन नंद उपनंद गोपोंसमेत बकरे भैंसे ले भेंट देने आवेंगे तिनके साथ देखनेको कृष्ण बलदेव भी आवेंगे यह तो मैंने तुम्हें उनके लावनेका उपाय बताय दिया. आगे तुम सुज्ञान हो जो और उक्ति बनिआवे सो करि कहियो. अधिक तुमसे क्या कहें कहा है कि–

सोरठा–होय विचित्र बसीठ, जाहि बुद्धिबल आपनो ।
परकारज परदीठ, करहि भरोसो ताहिका ॥

इतनी बातके सुनतेही पहले तो अक्रूरने अपने जीमें विचारा कि जो मैं अब कुछ भली बात कहूंगा. तो यह न मानेगा. इससे उत्तम यही है कि, इस समय इसके मन भावती सुहावती बात कहूं. ऐसे और ठौर भी कहा है, कि वही कहिये जो जिसे सुहाय. यों सोच विचार अक्रूर हाथ जोड़ शिर झुकाय बोला महाराज! तुमने भला मता किया. यह वचन हमने भी शिर चढ़ाय मानलिया होनहार पर कुछ वश नहीं चलता. मनुष्य अनेक मनोरथ कर धावता है पर कर्मका लिखाही फल पावताहै सोचताहै और होताहै और किसीको मनका चेता होता नहीं. आगम बाँध तुमने यह बात विचारी है, न जानिये कैसी होय? मैंने तुम्हारी बात मानली. कल

भोरको जाऊँगा और रामकृष्णको ले आऊँगा ऐसे कह कंससे बिदाहो अक्रूर अपने घर आया.

इति श्रीलल्लूलालकृते प्रेमसागरे कंसाक्रूरसंवादो नाम सप्तत्रिंशोऽध्यायः ॥ ३७ ॥

अध्याय ३८.

श्रीशुकदेवजी बोले कि-महाराज ! ज्यों श्रीकृष्णचंद्रने केशीको मारा और नारदजीने स्तुति करी पुनि हरिने व्योमासुरको हना त्यों सब चरित्र कहताहूं तुम चित्तदे सुनो. कि भोर होतेही केशी अति ऊँचा भयावना घोड़ा बन वृंदावनमें आया. और लगा लाली आँखेंकर नयन चढ़ाय कान पूंछ उठाय टापोंसे भूमि खोदने और हींस २ काँधा कँपाय कँपाय लातें चलाने. इसे देखतेही ग्वाल बालोंने भयखाय भाग श्रीकृष्णसे जा कहा ये सुनके वहाँ आये, जहाँ वह था. और उसे देख लड़नेको फेंट बाँध ताल ठोंक सिंहकी भाँति गर्जकर बोले, अरे ! जो तू कंसका बड़ा प्रीतमहै और घोड़ा बन आयाहै तो औरके पीछे क्यों फिरता है ? आ मुझसे लड़, जो तेरा बल देखूं, दीप पतंगकी भाँति कबतक फिरेगा? तेरी मृत्यु तो निकट आन पहुँचीहै. यह वचन सुन केशी कोपकर अपने मनमें कहने लगा,

कि आज इसका बल देखूंगा और पकड़ ईखकी भाँति चबाय कंसका कार्य्यकर जाऊँगा. इतना कह मुँह बायके ऐसे दौड़ा, कि मानों सारे संसारको खा जायगा. आतेही पहले जो उसने श्रीकृष्णपर मुँह चलाया तो उन्होंने एक बेर तो ढकेल कर पीछेको हटाया. जब दूसरीबेर वह फिर सँभलके मुख फैलाय धाया, तब श्रीकृष्णने अपना हाथ उसके मुँहमें डाल लोह लाठसाकर ऐसा बढ़ाया, कि जिसने उसके दशों द्वार जा रोंके तब तो केशी घबराकर जीमें कहने लगा कि अब देह फटतीहै, यह कैसी भई? अपनी मृत्यु आप मुँहमें ली जैसे मछली बंसीको निगल प्राण देतीहै; तैसे मैंने भी अपना जीव खोया.

इतना कह उसने बहुतेरे उपाय हाथ निकालनेको किये, पर एकभी काम न आया. निदान श्वास रुक कर पेट फटगया तो पछाड़ खायके गिरा तब उसके शरीरसे लोहू नदीकी भाँति बह निकला. तिस समय ग्वालबाल आय आय देखने लगे, और श्रीकृष्णचंद्र आगे जाय वनमें एक कदंबकी छाँहतले खड़े हुए. इसबीच वीणा हाथमें लिये नारदमुनिजी आन पहुँचे. प्रणाम कर खड़ेहो वीणा बजाय श्रीकृष्णचंद्रकी भूत भविष्यकी सब लीला और चरित्र गायके बोले कि—कृपानाथ! तुम्हारी लीला अपरंपारहै. इतनी किसमें सामर्थ्यहै, जो आपके चरित्रोंको बखाने? पर तुम्हारी दयासे मैं इतना जानताहूं कि, आप भक्तोंको सुखदेनेके अर्थ और साधुओंकी रक्षाके निमित्त और दुष्ट असुरोंके नाश करनेके हेतु बारम्बार अवतार ले संसारमें प्रगट हो भूमिका भार उतारते हो. इतना वचन सुनतेही प्रभुने नारदमुनिको तो बिदा दी. वे तो दंडवत् कर सिधारे, और आप सब ग्वालबाल सखाओंको साथ ले एक बडके तले बैठ पहले तो किसीको मंत्री, किसीको प्रधान, किसीको सेनापति बनाय आप राजा हो राजरीति के खेल खेलने लगे, और पीछे आँख मिचौली. इतनी कथा कह श्रीशुकदेवजी बोले कि—पृथ्वीनाथ!

दो०—मार्यो केशी ज्यों हरी, सुनी कंस यह बात।
व्योमासुरसों कहतहै, व्याकुल कंपतगात॥

चौ०-अरिकंदन व्योमासुर बली। तेरी जगमें कीरतिभली॥
ज्यों रामके पवनको पूत। त्योंहीं तू मेरे यह दूत॥
वसुदेवके पुत्र हति ल्याव। आज काज मेरो करि आव॥

यह सुन करजोड़ व्योमासुर बोला महाराज! बसायगी सो जो करूंगा आज, मेरी देह है आपहीके काज; जो जीके लोभीहैं तिन्हें स्वामीके अर्थ जी देते आतीहै लाज. सेवक और स्त्रीका तो इसीमें यश धर्म है, जो स्वामीके निमित्त प्राणदे, ऐसे कह कृष्ण बलदेवपर बीड़ा उठाय कंसको प्रणाम कर व्योमासुर वृंदावनको चला. बाटमें जाय ग्वालका वेष बनाय चला चला वहाँ पहुँचा जहाँ हरि ग्वाल बाल सखावोंके साथ आँख मिचौली खेल रहेथे जातेही दूरसे जब उसने हाथ जोड़ श्रीकृष्णचंद्रसे कहा महाराज! मुझेभी अपने साथ खिलावो तब हरिने उसे पास बुलाकर कहा तू अपने जीमें किसी बातकी हौंस मतरख, जो तेरा मनमाने सो खेल हमारे संग खेल, यों सुन वह प्रसन्न हो बोला, कि वृक मेढेका खेल भला है. श्रीकृष्णचंद्रने मुसकाके कहा बहुत अच्छा तू बने भेड़िया, और सब ग्वालबाल होवें मेढ़ा; सो सुनतेही व्योमासुर तो फूलकर त्यारीहुआ और ग्वालबाल बने मेढे; सब मिलकर खेलनेलगे. तिस समय वह असुर एक एकको उठा ले जाय और पर्वतकी गुफामें रख उसके मुँहपर आड़ी शिलाधर बंदकर चला आवे. ऐसे जब सबको वहाँ रख आया और अकेले श्रीकृष्ण रहे तब ललकारकर बोला, कि-आज कंसका काज सारूंगा और सब यदुवंशियोंको मारूंगा. यों कह ग्वाल बालका वेष छोड़ सच मुच भेड़िया बन ज्यों हरिपर झपटा त्यों उन्होंने उसको पकड़ गला घोट मारे घूसोंके यों मारपटका कि जैसे यज्ञके बकरेको मारडालते हैं॥

इति श्रीलल्लूलालकृते प्रेमसागरे व्योमासुरवधो नामाष्टत्रिंशोऽध्यायः॥ ३८॥

अध्याय ३९.

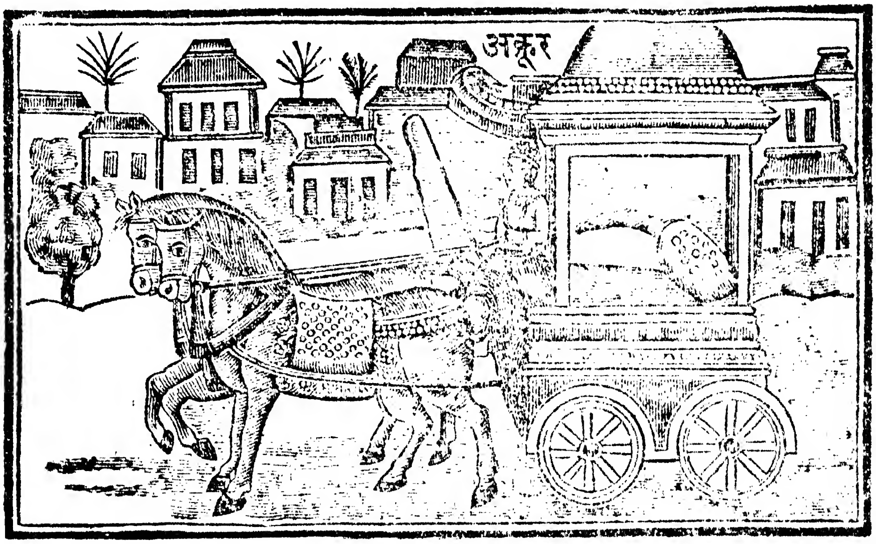

श्रीशुकदेवमुनि बोले, कि महाराज ! कार्तिक वदी द्वादशीको तो केशी और व्योमासुर मारागया और त्रयोदशीको भोरके तड़केही अक्रूर कंसके पास आय बिदाहो रथपर चढ़ अपने मनमें यों विचारता वृन्दावनको चला, कि ऐसा मैंने क्या जप, तप, यज्ञ, दान, तीर्थ, व्रत किया है जिसके पुण्यसे यह फल पाऊंगा ? अपनी जान तो इस जन्मभर कभी हरिका नाम नहीं लिया सदा कंसकी संगतिमें रहा भजनका भेद कहाँ पाऊंगा ? हाँ अगले जन्म कोई बड़ा पुण्य किया हो उस धर्मके प्रतापसे यह फल हो तो हो. जो कंसने मुझे श्रीकृष्णचंद्र आनंदकंदके लेनेको भेजाहै. अब जाय उनका दर्शन पाय जन्म सफल करूंगा.

हाथ जोरिकै पाँयन परिहौं । पुनि पगरेणु शीशपर धरिहौं ॥
पापहरण जेही पग आहि । सेवत श्रीब्रह्मादिक ताहि ॥
जे पग कालीके शिरपरे । जे पग कुचकुकुमसों भरे ॥
नाचे रासमंडली आछे । जे पग डोलैं गायन पाछे ॥
जा पगरेणु अहल्या तरी । जा पगते गंगा निसरी ॥

बलिछलिकियोइन्द्रको काज। ते पग हौं देखोंगो आज॥
मोको शकुन होतहैं भले। मृगके झुंड दाहिने चले॥

महाराज! ऐसे विचार फिर अक्रूर अपने मनमें कहने लगा कि-कहीं मुझे वे कंसका दूत तो न समझें? फिर आपही सोचा कि जिनका नाम अंतर्यामी है वे तो मनकी प्रीति मानतेहैं और सब मित्र शत्रुको पहिंचानते हैं ऐसा कभी न समझेंगे. बरन् मुझे देखतेही गलेलगाय दबाकर अपना कोमल कमलसा कर मेरे शिरपर धरेंगे तब मैं उस चंद्रवदनकी शोभा इकटक निरख अपने नयन चकोरोंको सुख दूंगा कि जिसका ध्यान ब्रह्मा रुद्र आदि सब देवता सदा करते हैं.

इतनी कथा सुनाय श्रीशुकदेवजीने राजापरीक्षितसे कहा कि महाराज! इस भाँति सोच विचार करते रथ हाँक इधरसे तो अक्रूरजीगये. और उधर बनसे गोचराय ग्वाल बाल समेत कृष्ण बलराम भी आये तो इनसे वृंदावनके बाहरही भेंट भई, हरि छवि दूरसे देखतेही अक्रूर रथसे उतर अति अकुलाय दौड़ उनके पाँवोंपर जा गिरा और ऐसा मग्न हुआ. कि मुँहसे बोल न आया. महा आनंदकर नयनोंसे जल बरसावने लगा. तब श्रीकृष्णजी उसे उठाय अति प्यारसे मिल हाथ पकड़ घर लिवाय लेगये. वहाँ नंदराय अक्रूरजीको देखतेही प्रसन्न हो उठकर मिले और बहुतसा आदर मान किया, पाँव धुलवाय आसन दिया.

लियेतेलमरदनियाँ आये। उबटि सुगंधचुपरिअन्हवाये॥
चौकापटायशोदा दियो। षटरसरुचिसों भोजन कियो॥

जब अँचयके पान खाने लगे तब नंदजी उनसे कुशल क्षेम पूंछ बोले, कि तुम यदुवंशियोंमें बड़े साधुहो सदा अपनी बड़ाई से रहेहो. कहो उस कंस दुष्टके पास कैसे रहतेहो? और वहाँके लोगोंकी क्या गतिहै. सो सब भेद कहो? अक्रूरजी बोले.

जबते कंस मधुपुरी भयो। तबते सबहीको दुख दयो॥
पूंछो कहा नगर कुशलात। परजा दुखी होतहै गात॥

जौलों है मथुरामें कंस । तौलों कहाँ बचै यदुवंश ॥

दो०—पशुमेंढ़े छेरीनको, ज्यों खटीक रिपु होय ।
त्यों परजाको कंसहै, दुख पावे सब कोय ॥

इतना कह फिर बोले कि तुम तो कंसका व्योहार जानते हो हम अधिक क्या कहेंगे ?

इति श्रीलल्लूलालकृते प्रेमसागरे अक्रूरवृन्दावनगमनं नाम एकोनचत्वारिंशोऽध्यायः ॥ ३९ ॥

अध्याय ४०.

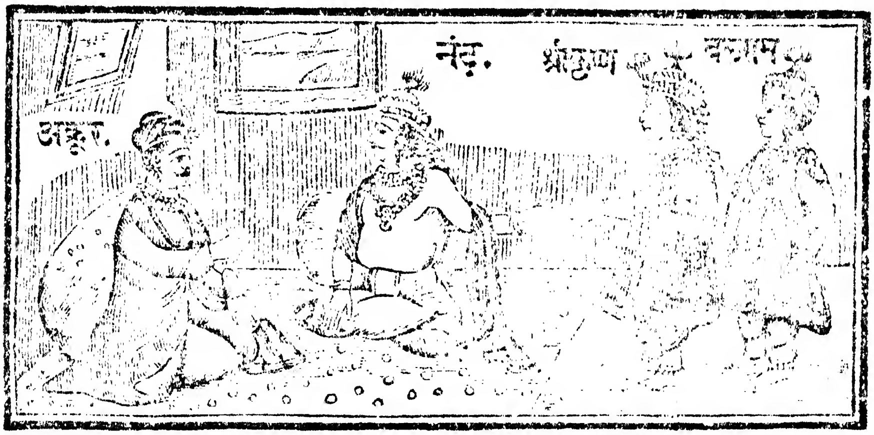

श्रीशुकदेवजी बोले, कि पृथ्वीनाथ ! जब नंदजी बातें करचुके तब अक्रूरको कृष्ण बलराम सैनसे बुलाय अलग लेगये.

आदरकर पूंछी कुशलात । कहौ कका मथुराकी बात ॥
हैं वसुदेव देवकी नीके । राजा वैरपरो तिनहींके ॥
अतिपापी है मामाकंस । जिनखोयोसिगरोयदुवंश ॥

कोई यदुकुलका महारोग जन्म ले आया है. तिसीने सब यदुवंशीयोंको सताया है. और सच पूँछो तो वसुदेव देवकी हमारे लिये इतना दुःख पातेहैं जो हमें न छिपाते तो वे इतना दुःख न पाते. यों कह श्रीकृष्ण फिर बोले.

तुमसोंकहाचलतउनकह्यो । तिनको सदाऋणीहौंरह्यो ॥
करतुहोयँगे सुरति हमारी । संकटमें पावत दुखभारी ॥

यह सुन अक्रूरजी बोले, कि, कृपानाथ! तुम सब जानतेहो मैं क्या कहूंगा कंसकी अनीति, उसकी किसीमें नहींहै प्रीति. वसुदेव और उग्रसेनके मारनेको नित विचार किया करता है. पर वे आजतक अपनी प्रारब्धसे बचे रहे हैं, और जबसे नारदमुनि आय आपके होनेका सब समाचार बुझायके कहगये हैं. तबसे वसुदेवजीको वेड़ी हथकड़ीदे महादुःखमें रक्खा है, और कल उसके यहाँ महादेवका यज्ञ है व धनुषधराहै सब कोई देखनेको आवेंगे तुम्हारे बुलानेको मुझे भेजाहै. यह कह कर कि तुम जाय राम कृष्ण समेत नंदरायको भेंटसहित लिवाय लावो. सो मैं तुम्हें लेनेको आयाहूं इतनी बात अक्रूरजीसे सुन रामकृष्ण ने आ नन्दरायसे कहा.

कंस बुलायेहैं सुनतात । कहीअक्रूरककायहबात ॥
गोरस मेंढे छेरी लेहु । धनुपयज्ञ है ताको देहु ॥
सब मिलचलोसाथलेअपने । राजाबोलेरहतनबने ॥

जब ऐसे समझाय बुझायकर श्रीकृष्णचन्द्रजीने नन्दजीसे कहा, तब नंदरायजीने उसी समय ढँढोरियेको बुलाय सारे नगरमें यों कह डौंडी फिरवायदी, कि कल सबेरेही सब मिल मथुराको जायँगे. राजाने बुलाया है. इस बातके सुननेसे भोर होतेही भेंट लेले सकल ब्रजवासी आन पहुँचे और नंदजी भी दूध, दही, माखन, मेंढे, बकरे, भैंसे ले शकट जुतवाय उनके साथ होलिये. और कृष्ण बलदेव भी अपने ग्वाल बाल सखावोंको साथले रथपर चढे.

आगेभये नंद उपनंद । सब पाछें हलधर गोविंद ॥

श्रीशुकदेवजी बोले, कि पृथ्वीनाथ! एकाएकी श्रीकृष्णका चलना सुन सब ब्रजकी गोपियाँ अति घबराय व्याकुल हो घर छोड़ हड़बड़ाय उठ धाईं, और कुठती झुकतीं गिरती पड़ती वहाँ आईं जहाँ श्रीकृष्णचंद्रका. रथथा; आतेही रथके चारों ओर खड़ी हो हाथ जोड़ विनतीकर कहने

लगीं. हमें किसलिये छोड़तेहो ब्रजनाथ! सर्वस्व दियाहै तुम्हारे साथ साधुकी तो प्रीति कभी घटती नहीं, करकीसी रेखा सदा करहीमें रह तीहै और मूढ़की प्रीति नहीं ठहरती, जैसे बालूकी भीति; ऐसा तुम्हारा क्या अपराध कियाहै! जो हमें पीठ दिये जातेहो. यों श्रीकृष्णचन्द्रको सुनाय फिर गोपियाँ अक्रूरकी ओर देख बोलीं.

यह अक्रूर क्रूर है भारी। जानी कछु न पीर हमारी॥
जाबिनछिनसबहोतिअनाथ। ताहिचल्योलै अपने साथ॥
कपटी क्रूरकठिनमनभयो। नाम अक्रूरवृथाकिनदयो॥
हे अक्रूर कुटिल मतिहीन। क्यों दाहतअबलाआधीन॥

ऐसे कड़ी कड़ी बातें सुनाय शोच संकोच छोड़ हरिका रथ पकड़ आपसमें कहने लगीं मथुराकी रानियाँ अति चंचल चतुर रूपगुण भरी हैं. उनसे प्रीतिकर गुण और रसके वशहो वहाँही रहेंगे बिहारी; तब काहेको करेंगे सुरत हमारी; उन्हींके बड़े भाग्यहैं जो प्रीतमके संग रहेंगी हमारे जप तप करनेमें ऐसी क्या चूक पडीथी. जिससे श्रीकृष्ण चन्द्र बिछुड़तेहैं. यों आपसमें कह फिर हरिसे कहने लगीं. कि, तुम्हारा तो नामहै गोपीनाथ, किसलिये नहीं ले चलते हमें अपने साथ!

तुमबिन छिनछिन कैसेकटै। पलकओटभेछातीफटै॥
हितलगायक्योंकरत बिछोह। निठुरनिर्दयीधरतनमोह॥
ऐसी तहाँ आय सुन्दरी। सोचैं दुखसमुद्रमें परी॥
चाहिरहीं इकटक हरि ओर। ठगी मृगीसीचंद्रचकोर॥
परहिं नयनते आंसूटूट। रही बिथुरिलट मुखपरछूट॥

श्रीशुकदेवमुनि बोले कि राजा! उस समय गोपियोंकी तो यह दशाथी, जो मैंने कही. और यशोदारानी ममताकर पुत्रको कण्ठ लगाय रोरो अति प्यारसे कहतीथीं बेटा जै दिनमें तुम वहांसे फिर आवो तै दिनके लिये कलेऊ लेजावो. वहां जाय किसीसे प्रीति मतकीजो. वेग आय अपनी जननीको दर्शन दीजो, इतनी बात सुन श्रीकृष्ण रथसे उतर

सबको समझाय बुझाय वहाँसे विदाहो दंडवतकर आशीश ले फिर रथपर चढ़ चले. तिसकाल इधरसे तो गोपियों समेत यशोदाजी अति अकुलाय रोरो कृष्ण कृष्ण कर पुकारतीथीं. और उधरसे श्रीकृष्ण रथपर खड़े खड़े पुकार पुकार कहते जातेथे कि तुम घर जावो. किसी बात की चिंता मतकरो. हम पाँच चार दिनमें हो फिरकर आतेहैं. ऐसे कहते कहते और देखते देखते जब रथ दूर निकल गया और धूलि आकाश तक छाई, तिसमें रथकी ध्वजा भी नहीं दिखाई; तब निराशहो एकबेर तो सबकी सब नीर बिन मीनकी भाँति तड़फड़ाय मूर्च्छा खाय गिरीं; पीछे कितनी एक बेरमें चेतकर उठीं और अवधिकी आश मनमें धर धीरज कर इधर यशोदाजी तो सब गोपियोंको ले वृंदावनको गईं और उधर श्रीकृष्णचन्द्रसमेत सब चले चले यमुनातीर पर आपहुँचे. तहाँ ग्वाल बालोंने जल पिया और हरिने भी एक वड़की छाँहमें रथ खड़ा किया इधर अक्रूरजी न्हानेका विचारकर रथसे उतरे तब श्रीकृष्णचन्द्रजीने नंद रायसे कहा कि, आप सब ग्वालबालोंको ले आगे चलिये चचा अक्रूर स्नान कर लें तो पीछे हम भी आ मिलतेहैं. यह सुन सबको ले नंदजी आगे बढ़े और अक्रूरजी कपड़े खोल हाथ पाँव धोय आचमनकर तीरपर जाय नीरमें पैठ डुबकी ले पूजा, तर्पण, जप, ध्यानकर फिर डुबकी मार आँखें खोल जलमें देखें तो वहाँ रथ समेत श्रीकृष्ण दृष्टि आये.

पुनि उन देख्यो शीशउठाय। तिहिठां बैठेहैं यदुराय ॥
करैं अचंभो हिये विचारि। वे रथ ऊपर दूर मुरारि ॥
बैठे दोऊ वड़की छाहँ। तिनहींको देखौं जलमाहँ ॥
बाहर भीतर भेद न लहौं। साँचो रूप कौनसों कहौं ॥

महाराज! अक्रूरजी तो एकही सूरत बाहर भीतर देख सोचतेहीथे इस बीच पहले तो श्रीकृष्णचन्द्रजीने चतुर्भुज हो शंख, चक्र, गदा, पद्म धारणकर सुर, मुनि, किन्नर, गंधर्व आदि सब भक्तोंसमेत जलमें दर्शन दिया और पीछे शेषशायी, तो अक्रूर देख और भी भूलरहा.

इति श्रीलल्लूलालकृते प्रेमसागरे श्रीकृष्णमथुरागमनो नाम चत्वारिंशोऽध्यायः ४०

अध्याय ४१.

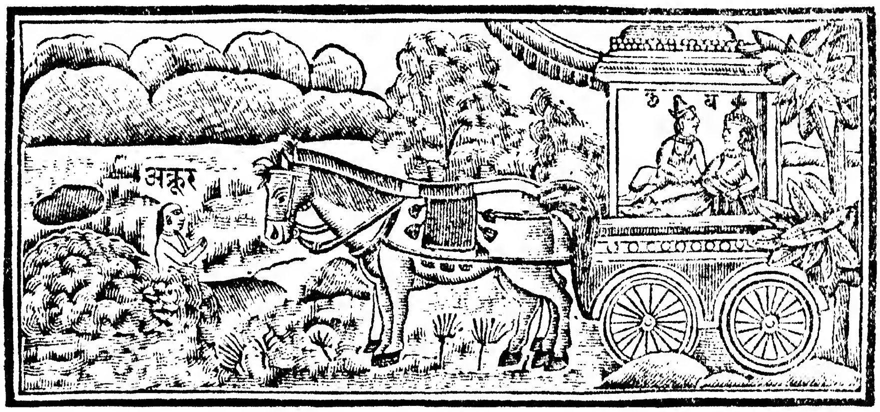

श्रीशुकदेवजी बोले, कि, महाराज ! पानीमें खड़े अक्रूरको कितनी एक बेरमें प्रभुका ध्यान करनेसे ज्ञान हुआ तो हाथ जोड़ प्रणामकर कहने लगा, कि कर्त्ता हर्त्ता तुम्हींहो भगवंत, भक्तोंके हेतु संसारमें आय धरते हो वेप अनंत; और सुर, नर, मुनि तुम्हारेही अंशहैं तुम्हींसे प्रगट हो तुम्हींमें ऐसे समाते हैं जैसे जलसागरसे निकल सागरमें समाताहै. तुम्हारी महिमाहै अनूप, कौन कहसके सदा रहतेहो विराट स्वरूप. शिर स्वर्ग, पृथ्वी पाँव, समुद्र पेट, नाभि आकाश, बादल केश, वृक्ष रोम, अग्नि मुख, दशोंदिशा कान, नयन चन्द्र और भानु, इन्द्र भुजा, बुद्धि ब्रह्मा, अहंकार रुद्र, गर्जन वचन, प्राण पवन जल वीर्य, पलक लगाना रात दिन इस रूपसे सदा विराजतेहो; तुम्हें कौन पहिंचान सके इस भाँति स्तुतिकर अक्रूरजीने प्रभुके चरणोंका ध्यानकर कहा कृपानाथ ! मुझे अपने चरणोंमें रक्खो.

इति श्रीलल्लूलालकृते प्रेमसागरे अक्रूरस्तुतिकरणोनाम एकचत्वारिंशोऽध्यायः ॥ ४१ ॥

अध्याय ४२.

श्रीशुकदेवजी बोले कि महाराज! जब श्रीकृष्णचन्द्रने नटमायाकी भाँति जलमें अनेक रूप दिखाय हरलिये, तब अक्रूरजी नीरसे निकल तीरपर आ हरिको प्रणाम किया, तिसकाल नंदलालने अक्रूरजीसे पूंछा कि, कका शीत समय जलके बीच इतनी बेर क्यों लगी? हमें यह अति चिंताथी तुम्हारी, कि चचाने किसलिये बाट चलनेकी सुधि बिसारी, क्या कुछ अचरज तो जाकर नहीं देखा यह समझायके कहो जो हमारे मनकी दुबिधा जाय.

सुनि अक्रूर कहजोरे हाथ। तुम सब जानतहो ब्रजनाथ॥
भलोदरशदीनो जलमाहीं। कृष्णचरितको अचरजनाहीं॥
मोहिं भरोसो भयो तिहारो। वेगनाथ मथुरा पगधारो॥
अवतो यहाँविलंब नकरिये। शीघ्रचलो कारजचित धरिये॥

इतनी बातके सुनतेही हरि उठ रथपर बैठ अक्रूरको साथले चल खड़े हुए. और नंद आदि जो सब गोप ग्वाल आगे गयेथे उन्होंने जा मथुराके बाहर डेरे किये, और कृष्ण बलदेवकी बाट देख देख अति चिंताकर अपने मनमें कहने लगे कि, इतनी अबेर न्हाते क्यों लगी. और किसलिये अबतक हरि नहीं आये? कि इस बीच चले चले आनंद कंद

श्री कृष्णचंद्र भी जाय मिले उस समय हाथ जोड़ शिर झुकाय बिनती कर अक्रूरजी बोले कि ब्रजनाथ ! अब चलके मेरा घर पवित्र कीजे और अपने भक्तोंको दर्शन दे सुख दीजे. इतनी बातके सुनतेही हरिने अक्रूरसे कहा.

पहले शोध कंसको देहु । तब अपनो दिखरावो गेहु ॥
सबकी बिनतीकह्यो जुजाय । सुनि अक्रूर चल्यो शिरनाय ॥

चले चले कीतनी एक बेरमें रथसे उतरकर वहाँ पहुँचे जहाँ कंस सभा किये बैठाथा. इनको देखतेही सिंहासनपरसे उठ नीचे आय अति हितकर मिला. और बड़े आदर मान से हाथ पकड़ लेजाय सिंघासनपर अपने पास बैठाय इनकी कुशल क्षेम पूंछ बोला; जहाँ गयेथे वहाँकी बात कहो.

सुनि अक्रूर कहैं समुझाय । ब्रजकीमहिमा कही न जाय ॥
कहा नंदकी करों बड़ाई । बात तुम्हारी शीश चढ़ाई ॥
रामकृष्ण दोऊ हैं आये । भेंट सबै ब्रजबासी लाये ॥
डेरा किये नदीके तीर । उतरे गाडा भारी भीर ॥

यह सुन कंस प्रसन्नहो बोला अक्रूरजी आज तुमने हमारा बड़ा काम किया. जो रामकृष्ण को ले आये; अब घर जाय विश्राम करो. इतनी कथा कह श्रीशुकदेवजीने राजापरीक्षितसे कहा कि महाराज ! कंसकी आज्ञा पाय अक्रूरजी तो अपने घर गये और वह सोच विचार करने लगा. और जहाँ नंद उपनंद बैठेथे तहाँ उनसे हलधर और गोविंदने पूंछा जो हम आपकी आज्ञा पावें तो नगर देख आवें. यह सुन पहले तो नंदरायजीने कुछ खानेको मिठाई निकालदी. उन दोनों भाइयोंने मिलकर खायली. पीछे बोले अच्छा जावो पर विलंब मतकीजो. इतना वचन नंदमहरके मुखसे निकलतेही आनंदकंद दोनों भाई अपने ग्वाल बाल सखावोंको साथले नगर देखने चले आगे बढ़ देखें तो नगरके बाहर चारों ओर वन उपवन फूल फल रहेहैं. तिनपर पक्षी बैठे अनेक २

भाँतिकी मनभावन बोलियाँ बोलते हैं. और बड़े बड़े सरोवर निर्मल जलसे भरेहैं. उनमें कमल खिलेहुए जिनपर भौरोंके झुंडके झुंड गुंजरहे. और तीरमें हंस सारस आदि पक्षी कलोलें कर रहे. शीतल सुगंध समीर मंद मंद बहरही. और बड़ी बड़ी बाड़ियों वा बाड़ीपर पनबाड़ियाँ लगी हुई, बीच बीच वर्ण वर्ण के फूलोंकी क्यारियाँ कोसोंतक फूली हुई ठौर ठौर इंदारो बावड़ियों पर रहँट परोहे चलरहे. माली मीठे मीठे सुरोंसे गाय गाय जलसींच रहेहैं.

यह शोभा वन उपवनकी निरख हर्ष प्रभु सब समेत मथुरापुरीमें पैठे वह पुरी कैसीहै कि,जिसके चहुँओर ताँबेका कोट और पक्की चुआन चौड़ी खाई, स्फटिकके चार फाटक तिनमें अष्टधाती किवाड़ कंचन खचित लगेहुए, और नगरमें वर्ण वर्णके राते पीले हरे धोले पंचखने सतखने मंदिर ऊँचे ऐसे कि घटासे बातें कररहे. जिसके सोनेके कलश कलशियोंकी ज्योति बिजलीसी चमक रहीं. ध्वजा पताका फहराय रहीं जाली झरोखों मोखोंसे धूपकी सुगंध आयरही. द्वार द्वार पर केलेके खंभ और सुवर्ण कलश सपल्लव भरे धरेहुए तोरण बंदनवार बँधी हुई घर घर बाजन बाज रहे. और एक ओर भाँति भाँतिके मणिमय कंचनके मंदिर राजाके न्यारेही जगमगायरहे. तिनकीशोभा कछु वर्णी नहीं जाती. ऐसी जो सुंदर सुहावनी मथुरापुरी तिसे श्रीकृष्ण बलदेव ग्वाल बालोंको साथ लिये देखते चले.

दो०-पडीधूममथुरानगर, आवत नंदकुमार ।
सुनिधायेपुरलोगसब, गृहकोकाजबिसार ॥

और जो मथुराकी सुंदरी। सुनत कान अतिआतुरखरी ॥
कहैं परस्पर वचन उचारी। आवतहैं बलभद्र मुरारी ॥
तिन्हैं अक्रूर गयेहैं लैन। चलहु सखी अब देखहि नैन ॥
कोऊ खातन्हातसे भजैं। गुहत शीश कोऊ उठि तजैं ॥
कामकेलि पियते बिसरावैं। उलटे भूषण वसन बनावैं ॥

जैसेही तैसे उठिधाई । कृष्णदरश देखनको आई ॥
लाज कान डर डारै कोऊ । खिरकिन कोउ अटनपरकोऊ ॥
कोऊ खडी द्वार कोउ ताकैं । दौरी गलियनफिरतउझाकैं ॥
ऐसे जहाँ तहाँ खडिनारी । प्रभुहि बतावैं बाँह पसारी ॥
नीलवसन गोरे बलराम । पीतांबर ओढे घनश्याम ॥
ये भानजे कंसके दोऊ । इनते असुर बचो नाहिं कोऊ ॥
सुनतहुतीं पुरुषारथ जिनको । देखहु रूप नैनभरि तिनको ॥
पूरबजन्म सुकृतकछुकीना । सोविधियहदरशनफलदीना ॥

इतनी कथा कह श्रीशुकदेवमुनि बोले कि, महाराज ! इसी रीतिसे सब पुरवासी क्या स्त्री क्या पुरुष अनेक अनेक प्रकारकी बातें कह कह दर्शन कर मग्नहोते थे; और जिस हाट बाट चौहटे में हो सब समेत कृष्ण बलराम निकलते थे; तहीं अपने अपने कोठों पर खड़े इनपर चोआ चंदन छिड़क छिड़क आनन्दसे वे फूल बरसावतेथे. और ये नगरकी शोभा देख देख ग्वालबालों से कहतेजातेथे. भैया कोई भूलियो मत, और जो कोई भूले तो पिछले डेरों पर जाइयो. इसमें कितनी एक दूर जाय देखें तो क्याहैं, कि कंसके धोबी धोये कपड़ोंकी लादियाँ लादे पोटे मोटे लिये मद पिये रंगराते कंस यश गाते नगरके बाहरसे चले आतेहैं उन्हें देख श्रीकृष्णचन्द्रने बलदेवजीसे कहा; कि भैय्या ! इनके सब चीर छीन लीजिये, और आप पहर ग्वाल बालोंको पहराय बचें सो लुटाय दीजिये ऐसे भाई को सुनाय सब समेत धोबियोंके पास जाय हरि बोले.

हमकोउज्ज्वल कपडा देहु । राजहिं मिलिआवैं फिरिलेहु ॥
जो पहिरावनि नृपसों पैहैं । तामेंते कछु तुमको दैहैं ॥

इतनी बातके सुनतेही उनमेंसे जो बड़ा धोबीथा सो हँसकरकहनेलगा

सो०-राखौ घरी बनाय, है आवो नृपद्वार लौं ।
तबलीजोपटआय, जो चाहो सो दीजियो ॥

बनवनफिरतचरावतगैया । अहिरजातिकामरीउढैया ॥

नटको वेष बनाये आये। नृपअंबर पहरन मनभाये ॥
जुरिकै चले नृपतिके पास। पहिरावनि लेवेकी आस ॥
नेकआशजीवनकीजोऊ । खोवनचहतअबहिंपुनिसोऊ ॥

यहबात धोबीकी सुनकर हरिने फिर मुसकरायकर कहा कि, हम तो सूधी चालसे माँगते हैं तुम उलटी क्यों समझतेहो कपड़े देनेसे कुछ तुम्हारा न बिगड़ेगा, बरन् यश लाभ होगा. यह वचन सुन रजक झुंझलायकर बोला कि राजाके बागे पहरनेका मुँह तो देखो; मेरे आगेसे जा नहीं तो अभी मार डालताहूं, इतनी बातके सुनतेही क्रोधकर श्रीकृष्णचन्द्रने तिरछाकर एक हाथ ऐसा मारा कि; उसका शिर भुट्टासा उड़गया. तब जितने उसके साथी टहलुयेथे सबके सब छोटे मोटे लादियाँ छोड़ अपना जीवले भागे और कंसकेपास जा पुकारे. यहाँ श्रीकृष्णजीने सब कपड़े लेलिये और आप पहन भाईको पहराय ग्वालबालोंको बाँट बचे सो लुटायदिये. तिससमयग्वालबाल अतिप्रसन्नहोलगे उलटे पुलटे वस्त्रपहरने.

दो०-कटिकस पग पहरें झँगा, सूथन मेलें बाँह ।
वसन भेद जानें नहीं, हँसत कृष्ण मनमाँह ॥

जो वहाँसे आगे बढे तो एक सूजीने आय दंडवत् कर खड़ेहो कर जोड़के कहा-महाराज! मैं कहनेको तो कंसका सेवक कहलाताहूँ पर मनसे सदा आपहीका गुण गाताहूँ दयाकर कहिये तो बागे पहराऊँ, जिससे तुम्हारा दास कहाऊं; इतनी बात उसके मुखसे निकलतेही अन्तर्यामी श्रीकृष्णचंद्रजीने उसे अपना भक्त जान निकट बुलायके कहा तू भले समय आया, अच्छा पहरायदे. तब तो उसने झटपटही खोल उधेड़ कतर छाँट सीकर ठीक ठाक बनाय चुन चुन राम कृष्ण समेत सबको बागे पहराय दिये उसकाल नंदलाल उसे भक्ति दे साथ ले आगे चले.

तहां सुदामा माली आयो। आदर कर अपनेघरलायो ॥
सबहीको माला पहराई। मालीके घर भई बधाई ॥

इति श्रीलल्लूलालकृते प्रेमसागरे मथुरापुरीनिरीक्षणोनामद्विचत्वारिंशोऽध्यायः ४२

अध्याय ४३.

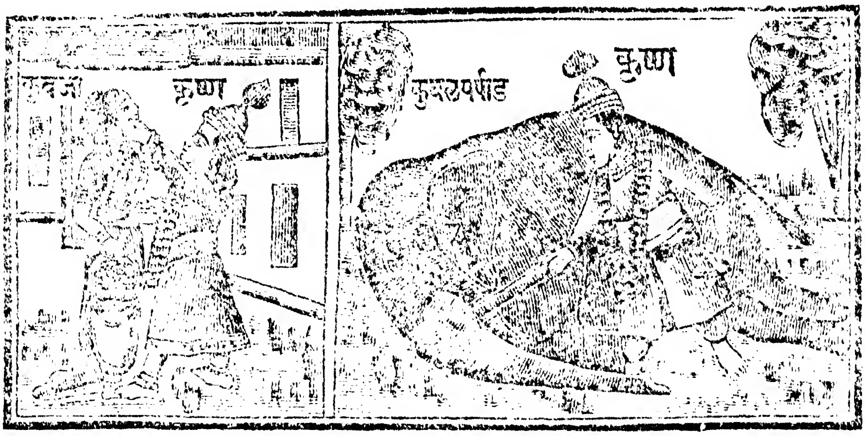

श्रीशुकदेवजी बोले, कि–पृथ्वीनाथ ! मालीकी लग्न देख मग्नहो श्रीकृष्णचंद्र उसे भक्ति पदार्थ दे वहाँसे आगे जाय देखें तो सोहीं गलीमें एक कुबड़ी, केशर चंदनसे कटोरियां भरे थालीके बीच धरे हाथमें लिये खड़ीहै. उससे हरिने पूंछा-तू कौनहै ? और यह कहाँ ले चली? वह बोली-दीनदयालु ! मैं कंसकी दासीहूं मेरा नाम कुबजा. नित चंदन घिस कंसको लगावतीहूं और मनसे तुम्हारेही गुण गावतीहूं तिसीके प्रतापसे आज आपका दर्शन पाय जन्म सार्थ किया; और नयनोंका फल लिया अब दासीका मनोरथ यहहै कि, जो प्रभुकी आज्ञा पाऊं तो चंदन अपने हाथों चढ़ाऊं. उसकी अति भक्तिदेख हरिने कहा जो तेरी इसमें प्रसन्नताहै तो लगाव. इतना वचन सुनतेही कुबजाने बड़े रावचावसे चित्तलगाय जब राम कृष्णको चंदन चरचा तब श्रीकृष्णचंद्रने उसके मनकी लाग देख दया कर पाँवपर दो अँगुली ठोड़ीके तले लगाय उचकाय उसे सीधी किया. हरिका हाथलगतेही वह महासुंदरी हुई. और निपट बिनतीकर प्रभुसे कहने लगी, कि–कृपानाथ ! जो आपने कृपाकर इस दासीकी देह सूधी की, तो दयाकर अब चलके घर पवित्र कीजे, और विश्राम ले, दासीको सुख दीजे. यह सुन हरि उसका हाथ पकड़ मुसकराय के कहने लगे.

तें श्रम दूर हमारो कियो । मिलके शीतल चंदन दियो ॥
रूप शील गुण सुंदरि नीकी । तोसों प्रीति निरंतर जीकी ॥
आय मिलौंगो कंसहि मारि । यों कह आगे चले मुरारि ॥

और कुबजा अपने घरजाय केशर चंदनसे चौक पुराय हरिके मिलनेकी आश मनमें रख मंगलाचार करने लगी.

आवें तहँ मथुराकी नारी । करें अचंभो कहें निहारी ॥
धनि धनि कुबजा तेरो भाग । जाकोविधनादियो सुहाग ॥
ऐसो कहा कठिन तपकियो । गोपीनाथ भेंट भुज लियो ॥
हम नीके नहिं देखे हरी । तोको मिले प्रीति अतिकरी ॥
ऐसे तहाँ कहत सब नारी । मथुरा देखत फिरत मुरारी ॥

इस बीच नगर देखते २ सब समेत प्रभु धनुषपौरपर जा पहुँचे, इन्हें अपने रँगराते माते आते देखतेही पौरिये रिसायके बोले इधर किधर चले आते हो गँवार, दूर खड़े रहो यहहै राजद्वार; द्वारपालोंकी बात सुनी अनसुनीकर हरि सब समेत दर्राने वहाँ चलेगये. जहाँ तीन ताड़ लंबा अतिमोटा भारी महादेवका धनुष धराथा. जातेही झट उठाय चढ़ाय सहज स्वभावही खैंच यों तोड़ डाला, कि, ज्यों हाथी गाँड़ा तोड़ताहै. इसमें सब रखवाले जो कंसके बिठाये धनुष की चौकी देतेथे सो चढ़आये, प्रभुने उन्हें भी मार गिराया. तिस समय पुरवासी तो यह चरित्र देख विचारकर निःशंकहो आपसमें यों कहने लगे कि, देखो! राजाने घरबैठे अपनी मृत्यु आप बुलाई है इन दोनों भाइयोंके हाथ से अब जीता न बचेगा. और धनुष टूटनेका अति शब्द सुन कंसभयखाय अपने लोगोंसे पूँछने लगा कि,यह महाशब्द काहेका हुआ?इसबीच कितने एक लोग राजाके जो खड़े दूरसे देखतेथे वे मूड़ उघार यों जा पुकारे कि महाराजकी दुहाई;रामकृष्णने आय नगरमें बड़ी धूममचाई,शिवका धनुष तोड़ सब रखवालोंको मारडाला.इतनी बात सुनतेही कंसने बहुतसेयोद्धा-वोंको बुलायके कहा-तुम इनके साथ जावो और कृष्ण बलदेवको छल

बल कर अभी मारकर आवो. इतना वचन कंसके मुखसे निकलतेही ये अपने २ अस्त्र शस्त्रले वहाँ गये, जहाँ दोनों भाई खड़ेथे. इन्होंने उन्हें ज्यों ललकारा त्यों उन्होंने इनको भी आय मारडाला. जद हरिने देखा कि, अब यहाँ कंसका सेवक कोई नहीं रहा. तद बलरामजी से कहा, कि-भाई हमें आये बड़ी बेर हुई अब डेरोंपर चला चाहिये, क्योंकि बाबानंद हमारी बाट देख २ भावना करते होयँगे, यों कह सब ग्वाल बालोंको साथ ले प्रभु बलराम समेत चलकर वहाँ आये जहाँ डेरे पड़ेथे आतेही नंदमहरसे तो कहा, कि-पिता हम नगरमें जाय भला कुतूहल देख आये और गोप ग्वालोंने अपने बागे दिखलाये.

तब लखि नंद कहैं समुझाय । कान्ह तुम्हारी टेंव न जाय ॥
ब्रजवन नहीं हमारो गाँव । यहहै कंसरायको ठाँव ॥
यहँ जनि कछु उपद्रव करो । मेरी सीख पूत मन धरो ॥

जद नंदरायजी ऐसे समझाय चुके तद नंदलाल बड़े लाड़से बोले कि-पिता! भूंख लगीहै जो हमारी माताने खानेको साथ कर दियाहै सो दीजिये. इतनी बातके सुनतेही उन्होंने जो पदार्थ खानेको साथ लाये-थे सो निकाल दिया. कृष्ण बलदेवने ले ग्वाल बालोंके साथ मिलकर खाय लिया. इतनी कथा कह श्रीशुकदेव मुनि बोले, कि-महाराज! इधर तो ये आय परमानंदसे ब्यालू कर सोये, और उधर श्रीकृष्णकी बातें सुन कंसके चित्तमें अति चिंता हुई, कि उठते बैठते चैन न था. खड़े२ मनहीं मन कुढ़ताथा अपनी पीर किसीसे न कहताथा, कहाहै कि-

दो०-ज्यों काठहि घुन खातहै, कोउ न जानैं पीर ।
त्यों चिंता चितमें भई, बुधिबलघटतशरीर ॥

निदान अति घबराय मंदिरमें जाय सेजपर सोया पर उसे मारे डरके नींद न आई.

तीन पहर निशि जागतगई । लागी पलक नींद क्षणभई ॥
तब सपनो देख्यो मनमाँह । फिरे शीशबिन धरकीछाँह ॥

कबहूं नगन रेतमें न्हाय। धावै गदहाचढ विषखाय॥
बसे मशान भूत सँग लिये। रक्तफूलकी माला हिये॥
बरतरूख देखे चहुँ ओर। तिनपर बैठे बाल किशोर॥

महाराज! जब कंसने ऐसा स्वप्न देखा, तब तो वह अति व्याकुलहो चौंक पड़ा; और सोच विचार करता उठकर बाहर आया व अपने मंत्रियों को बुलाय बोला-तुम अभी जावो रंगभूमिको झड़वाय छिड़कवाय सवाँरो, और नंद उपनंद समेत सब ब्रजवासियोंको और वसुदेव आदि यदुवंशियोंको रंगभूमिमें बुलाय बिठावो और जो सब देश देशके राजा आये हैं तिन्हें भी. इतनेमें मैंभी आताहूं, उसकी आज्ञा पाय मंत्री रंगभूमिमें आये; उसे झड़वाय छिड़कवाय तहाँ पाटंबर बिछवाय ध्वजा पताका तोरण बंदनवार बँधवाय अनेक अनेक भाँतिके बाजे बजवाय सबको बुलाय भेजा, वे आये; और अपने अपने मंचपर जाय जाय बैठे. इस बीच राजा कंसभी अति अभिमान भरा, अपने मचान पर आय बैठा. उसकाल देवता विमानोंमें बैठे आकाशमेंसे देखनेलगे.

इति श्रीलल्लूलालकृते प्रेमसागरे कंसस्वप्नदर्शनं नाम
त्रिचत्वारिंशोऽध्यायः॥ ४३॥

अध्याय ४४.

अथ कुवलयापीड़वध।

श्रीशुकदेवजी बोले कि-महाराज! भोरही जब नंद उपनंद आदि सब बड़ेरगोप रंगभूमिकी सभामें गये, तब श्रीकृष्णचंद्रजीने बलदेवजीसे कहा कि-भाई! सब गोप आगे गये, अब विलंब न करिये शीघ्र ग्वाल बाल सखावोंको साथ ले रंगभूमि देखने चलिये. इतनी बातके सुनतेही बलरामजी उठ खड़े हुए, और सब ग्वाल बाल सखावोंसे कहा कि-भाइयो! चलो रंगभूमिकी रचना देख आवें. यह वचन सुनतेही तुर्त सब होलिये. निदान, श्रीकृष्णचंद्र बलराम नटवर वेष किये ग्वाल बाल सखावोंको

सार्थलिये चले चले रंगभूमिकी पौरपर आय खड़े हुए. जहाँ दशसहस्र हाथियोंका बलवाला बड़ा मतवाला गजकुवलया खड़ा झूमताथा.

देख मतंग द्वार मतवारो। गजपालहिं बलराम पुकारो॥
सुनो महावत बात हमारी। लेहु द्वारते गज तुम टारी॥
जान देहु हमको नृपपास। नातर ह्वैहै गजको नास॥
कहे देत नहिं दोष हमारो। मत जानो हरिको तुम बारो॥

ये त्रिभुवनपतिहैं दुष्टोंको मार भूमिका भार उतारनेको आये हैं. यह सुन महावत क्रोधकर बोला-मैं जानताहूं गौ चरायके त्रिभुवनपति भयेहैं इसीसे यहाँ आय बड़े शूरकी भाँति अड़े खड़ेहैं. धनुपका तोड़ना न समझियो मेरा हाथी दशसहस्र हाथियोंका बल रखताहै जबतक इससे न लड़ेंगे तबतक भीतर न जाने पावेंगे. तुमने तो बहुत बली मारे हैं पर आज इसके हाथसे बचोगे तो मैं जानूंगा कि तुम बड़े बलीहो.

दोहा-तबहिं कोपिहलधर कह्यो, सुन रे मूढ़ कुजात।
गजसमेत पटकों अबहिं, मुखसँभारिकहुबात॥
सो०-नेक न लगिहैवार, हाथी मरिजैहै अबहिं।
तासों कहत पुकार, अजहुँ मान मेरो कह्यो॥

इतनी बातके सुनतेही झुँझलाकर गजपालने गज पेला ज्यों वह बलदेवजीपर टूटा त्यों इन्होंने हाथ घुमाय एक थपेड़ा ऐसा मारा कि, वह सूंड़ सिकोड़ चिंघाड़मार पीछे हटा. यह चरित्र देख कंसके बड़े बड़े योद्धा जो खड़े देखतेथे, सो अपने जियोंसे हार मान मनही मन कहने लगे, कि इन महाबलवानोंसे कौन जीत सकेगा ? और महावत भी हाथीको पीछे हटाजान अति भयमान जीमें विचार करने लगा, कि जो ये बालक न मारे जायँ तो कंसभी मुझे जीता न छोड़ेगा. यों सोच समझ उसने फिर अंकुश मार हाथीको तत्ता किया, और इन दोनों भाईयों पर हुला दिया. उसने आतेही सूंड़से हरिको पकड़ पछाड़ खुनसाय ज्यों दाँतोंसे दबाया त्यों प्रभु सूक्ष्म शरीर बनाय दाँतोंके बीचमें बचरहे.

दो०-डरपि उठेतिहि काल सब, सुर मुनि पुरनरनारि ।
दुहूंदशनबिच ह्वै कढे, बलनिधि प्रभु दै तारि ॥
सो०-उठे गजहिके साथ, बहुरि ख्यालहो हाँक दे ॥
तुरतहि भये सनाथ, देखि चरित बलश्यामके ॥
हांकसुनतअतिकोप बढायो । झटकिशुंडबहुरोगजधायो ॥
रहे उदरतर दबकि मुरारी । भजेजानिगजरह्यो निहारी ॥
पाछे प्रगट फेर हरि टेरो । बलदाऊ आगे ते घेरो ॥
लागे गजहि खिलावनदोऊ । भौंचकिरहे देख सबकोऊ ॥

महाराज ! उसे कभी बलराम सूंड़ पकड़ खैंचतेथे, कभी श्याम पूँछ पकड़, और वह उन्हे पकड़नेको आताथा तब ये अलग हो जातेथे कितनी एक बेरतक उससे ऐसे खेलते रहे जैसे बछड़ोंके साथ बालकपनोंमें खेलतेथे; निदान हरिने पूँछ पकड़ फिराय उसे दे पटका और मारे घूंसोंके मार डाला, दाँत उखाड़ लिये, तब उसके मुँहसे लोहू नदीकी भाँति बह निकला हाथीके मरतेही महावत ललकारकर आया प्रभुने उसे भी हाथीके पाँवतले झट मार गिराया, और हँसते२ दोनोंभाई नटवर वेष किये एक२दाँत हाथोंमें लिये रंगभूमिके बीच जा खड़े हुए. उसकाल नंदलालको जिन जिनने जिस जिस भावसे देखा उस उसको उसी उसी भावसे दृष्टि आये. मल्लोंने मल्ल माना, राजावोंने राजा जाना, देवताओंने अपना प्रभु बुझाया, ग्वालबालोंने सखा माना, नंद उपनंदने बालक समझा, और पुरकी युवतियोंने रूपनिधान, और कंसादिक राक्षसोंने काल समान देखा. महाराज ! इनको निहारतेही कंस अति भयमान हो पुकारा अरे मल्लो ! इन्हें पछाड़ मारो, कै मेरे आगेसे टालो. इतनी बात जो कंसके मुँहसे निकली तो सब मल्ल अतिशीघ्रतासे, शस्त्र संगलिये, वर्ण वर्णके बेषकिये. ताल ठोंक २ भिड़नेको कृष्ण बलरामके चारों ओर घिर आये जैसे वे आये तैसे येभी सँभल खड़ेभये तब उनमेंसे इनकी ओर देख चतुराई कर चाणूर बोला, सुनो हमारे राजा कुछ उदासहैं इससे जीव

बहलानेको तुम्हारा युद्ध देखा चाहतेहैं क्योंकि तुमने वनमें रह सब विद्या सीखी हैं और किसी बातका मनमें सोच न कीजे, हमारे साथ मल्लयुद्ध कर अपने राजाको सुख दीजे. श्रीकृष्ण बोले-राजाजीने बड़ी दया कर हमें बुलाया है आज हमसे क्या सरेगा इनका काज; तुम अति बली गुणवान्, हम बालक अनजान्; तुमसे हाथ कैसे मिलावें. कहाहै व्याह वैर प्रीति समानसे कीजे, पर राजाजीसे कुछ हमारा वश नहीं चलता. इससे तुम्हारा कहा मानतेहैं. हमें बचा लीजो बलकर पटक न दीजो. अब हमें तुम्हें उचितहै जिसमें धर्म रहे सोकीजे, मिलकर अपने राजाको सुख दीजे.

सुनि चाणूर कहै भयखाय।तुम्हरी गति जानी नहिंजाय॥
तुम बालक मानुष नहिं दोऊ। कीन्हें कपटबलीहौ कोऊ॥
खेलत धनुष खंड द्वै करो। मारे तुरत कुवलया तरो॥
तुमसे लरे हानि नहिं होई। ये बातें जानै सब कोई॥

इति श्रीलल्लूलालकृते प्रेमसागरे कुवलयापीडवधो नाम चतुश्चत्वारिंशोऽध्यायः॥ ४४॥

अध्याय ४५.

श्रीशुकदेवजी बोले कि पृथ्वीनाथ! ऐसे कितनी एक बातें कर ताल

ठोंक चाणूर तो श्रीकृष्णके सोहीं हुआ और मुष्टिक बलरामजीसे आय भिड़ा इनसे उनसे महा मल्लयुद्ध होने लगा.

दो०-शिरसों शिर भुजसों भुजा, दृष्टि दृष्टिसों जोरि ।
चरण चरण गहि झपटके, लपट झपट झकझोरि ॥

उसकाल सब लोग उन्हें इन्हें देख देख आपसमें कहने लगे कि, भाइयो; इस सभामें अति अनीति होतीहै, देखो कहाँ ये बालक रूपनिधान, कहाँ ये सब मल्ल वज्रसमान; जो बरजें तो कंस रिसाय, न बरजें तो धर्म नशाय; इससे यहाँ रहना उचित नहीं. क्योंकि, हमारा कुछ वश नहीं चलता. महाराज ! इधर तो ये सब लोग यों कहतेथे और उधर श्रीकृष्ण बलराम मल्लोंसे मल्लयुद्ध करतेथे; निदान इन दोनों भाइयोंने मल्लोंको पछाड़ मारा, उनके मरतेही सब मल्ल आय टूटे प्रभुने पलभरमें तिन्हें भी मार गिराया. तिस समय हरि भक्त तो प्रसन्नहो बाजा बजाय बजाय जयजयकार करने-लगे, और देवता आकाशसे अपने विमानोंमें बैठ श्रीकृष्णयश गाय गाय फूल बरसावने लगे और कंस अति दुःख पाय व्याकुलहो रिसाय अपने लोगोंसे कहने लगा-अरे ! बाजा क्यों बजातेहो ? तुम्हें क्या कृष्णकी जीत भातीहै ? यों कह बोला-ये दोनों बालक बड़े चंचलहैं. इन्हें पकड़ बाँध सभासे बाहर लेजावो; और देवकी समेत उग्रसेन वसुदेव कपटीको पकड़ लावो. पहले उन्हें मार पीछे इन दोनों को भी मार डालो. इतना बचन कंसके मुखसे निकलतेही भक्तोंके हितकारी मुरारी सब असुरोंको क्षण-भरमें मार उछलके वहाँ जाय चढ़े जहाँ. अति ऊँचे मंचपर झीलम पहने टोप दिये फरी खाँड़ा लिये बड़े अभिमानसे कंस बैठाथा वह इनको काल समान निकट देखतेही भयखाय उठ खड़ा हुआ. और थर थर काँपने लगा, मनसे तो चाहा कि भागूं, पर मारे लाजके भाग न सका. फरी खाँड़ा सँभाल लगा चोट करने, उसकाल नंदलाल अपनी घात लगाये उसकी चोट बचातेथे, और सुर नर मुनि गंधर्व यह महायुद्ध देख देख भयमान हो यों पुकारतेथे हे नाथ ! इस दुष्टको बेगमारो. कितनी एक बेरतक मंचपर युद्ध होता रहा, निदान प्रभुने सबको दुःखि-

तजान उसके केश पकड़ मंचसे नीचे पटका. तब सब सभाके लोग पुकारे श्रीकृष्णचंद्रने कंसको मारा. यह शब्द सुन सुर नर मुनि सबको अति आनंद हुआ.

दो०–करि अस्तुति पुनिपुनि हरष, बरषसुमन सुरवृंद।
मुदित बजावत दुंदुभी, कहि जय जय नँदनंद ॥

सो०–मथुरापुरनरनारि, अतिप्रफुलित सबको हियो।
मनहुँकुमुदवनचारि, विकसितहरिशशिमुखनिरखि ॥

इतनी कथा सुनाय श्रीशुकदेवजीने राजापरीक्षितसे कहा कि-धर्माव-तार! कंसके मारतेहीजो बलवान् आठ भाई उसकेथे सो लड़नेको चढ़ आये प्रभुने उन्हें भी मारगिराया. जब हरिने देखा कि, अब यहाँ राक्षस कोई नहीं रहा, तब कंसकी लोथको घसीट यमुनातीरपर ले आये. और दोनों भाइयोंने बैठ विश्राम लिया. तिसी दिनसे उस ठौरका नाम विश्रा-मघाट हुआ. आगे कंसका मरना सुन कंसकी रानियां द्यौरानियों समेत अति व्याकुलहो रोती पीटती वहाँ आईं जहाँ यमुनाके तीर दोनों वीर मृतक लिये बैठेथे, और लगीं अपने पतिका मुख निरख निरख सुख सुमिर सुमिर गुण गाय गाय व्याकुल हो हो पछाड़ खाय खाय गिरने; कि, इस बीच करुणानिधान कान्ह करुणाकर उनके निकट जाय बोले.

मामी सुनहु शोकनहिं कीजै। मामाजीको पानी दीजै ॥
सदा न कोऊ जीवत रहै। झुंठो सो जो अपनो कहै ॥
मातुपिता सुतबंधुन कोई। जन्ममरण फिरहीफिरहोई ॥
ज्यहिसम्बन्ध जबैलों रहै। तौहीलों तासों सुखलहै ॥

महाराज! जद श्रीकृष्णचन्द्रने रानियोंको ऐसे समझाया. तद उन्होंने वहाँसे उठ धीरजधर यमुनातीर पै आ पतिको पानी दिया; और आप प्रभुने अपने हाथ कंसको आगदे उसकी गतिकी.

इति श्रीलल्लूलालकृते प्रेमसागरे कंसासुरवधो नाम
पंचचत्वारिंशोऽध्यायः ४५ ॥

अध्याय ४६.

श्रीशुकदेवमुनि बोले कि, राजा ! रानियां तो सौरानियों समेत वहाँसे न्हाय धोय रोय राजमंदिरको गई और श्रीकृष्ण बलराम, वसुदेव देवकीके पास आय उनके हाथपाँवकी हथकड़ियां बेड़ियां काट दंडवत् कर हाथजोड़ सन्मुख खड़े हुए तिस समय प्रभुका रूप देख वसुदेव देवकीको ज्ञान हुआ. तो उन्होंने अपने जीमें निश्चयकर जाना कि, ये दोनों विधाताहैं असुरोंको मार भूमिका भार उतारनेको संसारमें अवतार ले आये हैं. जब वसुदेव देवकीने यों जीमें जाना तब अंतर्यामी हरिने अपनी माया फैलायदी. उसने उनकी वह मति हरली. फिरतो उन्होंने पुत्रकर समझा कि, इतनेमें श्रीकृष्णचंद्र अति दीनताकर बोले.

तुम बहु दिवससह्यो दुख भारी। करतरहे अतिसुरत हमारी॥

इसमें हमारा कुछ अपराध नहीं क्योंकि, जबसे आप हमें गोकुलमें नंदके यहाँ रख आये तबसे परवश थे हमारा वश न था. पर मनमें सदा यह आताथा कि, जिसके गर्भमें दश महीने रह जन्म लिया. उसे नेकभी सुख न दिया, न हमहीं माता पिताका सुख देखा, वृथा जन्म पराये यहाँ खोया, तिन्होंने हमारे लिये अति विपत्ति सही. हमसे

कुछ उनकी सेवा न भई. वही संसारमें सामर्थी बेटेहैं जो बापकी सेवा करतेहैं. हम उनके ऋणीरहे. टहल न करसके. पृथ्वीनाथ! जब श्रीकृष्ण-जीने अपने मनका खेद यों कह सुनाया तब उन्होंने अति आनंदकर उन दोनोंको हितकर कंठ लगाय और सुख मान पिछला दुःख सब गँवाया ऐसे माता पिताको सुख दे दोनों भाई वहाँसे चले चले उग्रसेनके पास आये. और हाथ जोड़कर बोले.

नाना जू अब कीजे राज। शुभ नक्षत्र नीक दिन आज॥

इतनी बात हरीके मुखसे निकलतेही राजा उग्रसेन उठकर आय श्रीकृ-ष्णचंद्रके पाँवोंपर गिर कहने लगा कि—कृपानाथ! मेरी बिनती सुन लीजिये. जैसे आपने सब असुरों समेत कंस महादुष्टको मार भक्तोंको सुख दिया. तैसेही सिंहासनपर बैठ अब मधुपुरीका राज्यकर प्रजा पालन कीजिये. प्रभु बोले-महाराज ! यदुवंशियोंको राज्यका अधिकार नहीं. इस बातको सबकोई जानतेहैं "जब राजा ययाति बूढेहुए, तब अपने पुत्र यदुको उन्होंने बुलाकर कहा कि, अपनी तरुण अवस्था मुझेदे और मेरा बुढापा तू ले. यह सुन उसने अपने जीमें बिचारा कि, जो मैं पिताको युवावस्था दूंगा तो यह तरुण हो भोग करेगा इसमें मुझे पाप होगा इससे नहीं करनाही भलाहै यों सोच समझके उसने कहा कि पिता! यह तो मुझसे न हो सकेगा. इतनी बातके सुनतेही राजा ययातिने क्रोधकर यदुको शाप दिया कि तेरे वंशमें राजा कोई न होगा. इसबीच पुरु नाम उनका छोटा बेटा सन्मुख आ हाथ जोड़ बोला कि-पिता! अपनी वृद्ध अवस्था मुझे दो और मेरी तरुणाई तुम लो यह देह किसी कामकी नहीं. जो आपके काम आवे तो इससे, उत्तम क्या है? जब पुरुने यों कहा तब राजा ययाति प्रसन्नहो अपनी वृद्ध अवस्थादे उसकी युवा अवस्था ले बोलाकी तेरे कुलमें राजगद्दी रहेगी" इससे नानाजी हम यदुवंशीहैं हमें राज्य करना उचित नहीं.

सो०-करो बैठ तुम राज, दूर करहु संदेह सब॥
हम करिहैं सब काज, जो आयसु देहो हमें॥

जो न मानिहै आनतुम्हारी। ताहि दंडकरिहैं हम भारी॥

और कछु चितशोचनकीजै। नीतिसहितपरजा सुखदीजै ॥
यादव जिते कंसके त्रास। नगर छाडिकै गये प्रवास ॥
तिनको अब करजोर मँगावो। सुखदै मथुरा माँझ बसावो ॥
विप्र धेनु सुरपूजन कीजै। इनकी रक्षामें चितदीजै ॥

इतनी कथा कह श्रीशुकदेवमुनि बोले, कि-धर्म्मावतार! महाराजाधिराज भक्तहितकारी श्रीकृष्णचन्द्रने उग्रसेनको अपना भक्तजान ऐसे समझाय सिंहासनपर बिठाय राजतिलक किया और छत्र फिरवाय दोनों भाइयोंने अपने हाथों चमर लिया. उसकाल सब नगरके वासी अति आनंदमें मग्नहो धन्य धन्य कहनेलगे, और देवता फूल बरसावने लगे महाराज! जो उग्रसेनको राजपाटपर बिठाय दोनों भाई बहुतसे वस्त्र आभूषण अपने साथ लिवाय वहाँसे चलेचले नंदरायजीके पासआये और सन्मुख हाथ जोड़ खड़ेहो अति दीनता कर बोले हम तुम्हारी क्या बड़ाई करें जो सहस्र जीभें होयँ तोभी तुम्हारे गुणका बखान हमसे न होसकेगा तुमने हमें अति प्रीतिकर अपने पुत्रकी भाँति पाला सब लाड़ प्यार किया यशोदा मैया भी बड़ा स्नेह करती. अपना हित हमहीं पैं रखती. सदा निज पुत्र समान जानती, कभी मनसे भी हमें पराया कर न मानती. ऐसे कह फिर श्रीकृष्णचंद्र बोले, कि हे पिता! तुम यह बात सुनकर कुछ बुरा मत मानो हम अपने मनकी बात कहते हैं कि, माता पिता तो तुम्हेंही कहेंगे पर अब कुछ दिन मथुरामें रहेंगे; अपने जात भाइयोंको देख यदुकुलकी उत्पत्ति सुनेंगे. और अपनी मातासे मिल उसे सुख देंगे. क्योंकि उन्होंने हमारे लिये बड़ादुःख सहाहै जो हमें तुम्हारे यहाँ न पहुँचा आते; तो वे दुःख न पाते. इतना कह वस्त्र आभूषण नंदमहरके आगेधर प्रभुने निरमोही हो कहा.

मैयासों पालागन कहियो। हममें प्रेम करे तुम रहियो ॥

इतनी बात श्रीकृष्णके मुँहसे निकलतेही नंदराय तो अति उदास हो लगे लंबी २ श्वासे लेने और ग्वालबाल विचारकर मनही मन यों कहनेंलगे कि, यह क्या अचंभेकी बात कहतेहैं. इससे ऐसा समझमें आताहै कि-

अब ये कपटकर जाया चाहतेहैं नहीं तो ऐसे निठुर वचन न कहते. महाराज! निदान उनमें से सुदामा नाम सखा बोला-भैया! कन्हैया! अब मथुरामें तेरा क्या कामहै जो निठुराईकर पिताको छोड़ यहाँ रहता है. भला किया कंसको मारा. सबकाम सँवारा; अब नंदके साथ हो लीजिये. और वृंदावनमें चल राज्य कीजिये. यहाँका राज्य देख मनमें मत ललचावो. वहाँ कासा सुख न पावोगे. सुनो राज्य देख मूरख भूलते हैं और हाथी घोड़े देख फूलतेहीहैं, तुम वृंदावन छोड़ कहीं मत रहो, वहाँ सदा वसंतऋतु रहतीहै; सघन वन और यमुना की शोभा मनसे कभी नहीं बिसरती. भाई! जो यह सुख छोड़ हमारा कहा न मान माता पिता की माया तज यहाँ रहोगे;तो तुम्हारी इसमें क्या बड़ाई होगी. उग्रसेनकी सेवा करोगे; और रात दिन चिंतामें रहोगे. जिसे तुमने राज्य दिया उसीके अधीन होना होगा. यह अपमान कैसा सहा जायगा. इससे उत्तम यहीहै कि, नंदरायको दुःख न दीजे उनके साथ हो लीजे.

ब्रजवन नदी विहार विचारो। गायनको मनते न विसारो॥
नहीं छाँडिहैं हम ब्रजनाथ। चलिहैं सबै तिहारे साथ॥

इतनी कथा कह श्रीशुकदेवमुनिनें राजापरीक्षितसे कहा कि-महाराज? ऐसे कितनी एक बातें कह दशबीसक सखा श्रीकृष्ण बलरामजीके साथ रहे और उन्होंने नंदरायसे बुझाकर कहा आप सबको ले निस्संदेह आगे बढ़िये; पीछेसे हम भी इन्हें साथ लिये चले आतेहैं. इतनी बातके सुनतेही

सो०--व्याकुल सबै अहीर, मानहुँ पन्नगके डसे।
हरिमुख लखत अधीर, ठाढे काढे चित्रसे॥

उस समय बलदेवजी नंदरायको अति दुःखित देख समझाने लगे कि पिता! तुम इतना दुःख क्यों पातेहो;थोड़े एक दिनोंमें यहाँका काजकर हम भी आते हैं आपको आगे इसलिये बिदा करते हैं कि, माता हमारी अकेली व्याकुल होती होंगी तुम्हारे गयेसे उन्हे कुछ धीरज होगा. नंदजी बोले कि बेटा! एकबार तुम मेरे साथ चलो फिर मिलकर चले आइयो.

दो०—ऐसे कह अति विकलहो, रहे नंद गहिपाय।
भई क्षीण द्युति मंदमति, नैनन जल न रहाय॥

महाराज जब माया रहित श्रीकृष्णचन्द्रजीने ग्वाल बालों समेत नंदमहर को महाव्याकुल देखा तब मनमें विचारा कि, ये मुझसे बिछुड़ेंगे तो जीते न बचेंगे. त्योंही उन्होंने अपनी उस मायाको छोड़ी जिसने सारे संसारको भुला रक्खाहै उसने आतेही नंदजीको सब समेत अज्ञान किया. फिर प्रभु बोले कि—पिता! तुम इतना क्यों पछताते हो? पहले यही विचारो कि मथुरा और वृंदावनका अंतरही क्याहै? तुमसे हम कहीं दूर तो नहीं जाते जो इतना दुःख पातेहो वृन्दावनके लोग दुःखी होंगे. इसलिये तुम्हें आगे भेजतेहैं. जद ऐसे प्रभुने नंदमहरको समझाया तद ये धीरजधर हाथ जोड़ बोले, प्रभु जो तुम्हारेही जीमें यों आया तो मेरा क्या वश है? जाताहूं. तुम्हारा कहा टाल नहीं सकता. इतना वचन नंदजीके मुखसे निकलतेही हरिने सब ग्वाल बालोंसमेत नंदरायको तो वृंदावनको बिदा किया. और आप कईएक सखावों समेत दोनों भाई रहे उसकाल नंदसहित गोप ग्वाल—

चले सकल मग सोचतभारी। हारे सर्वस मनहुँ जुआरी॥
काहू सुधि काहू सुधि नाहीं। लटपटचरणपरतमगमाहीं॥
जातवृन्दावनदेखतमधुवन। विरहविथाबाढ़ीव्याकुलतन॥

इसी रीतिसे ज्यों त्योंकर वृन्दावन पहुँचे. इनका आना सुनतेही यशोदा रानी अति अकुलाकर दौड़ी आई और राम कृष्णको न देख महा व्याकुलहो नंदजीसे कहने लगी—

कहो कंत सुत कहाँ गवाँये। वसन अभूषण लीन्हें आये॥
कंचनफेंककाँचघर राख्यो। अमृतछाँडिमूढविषचाख्यो॥
पारस पाय अंध जो डारै। फिरिगुण सुनहिकपारहिमारै॥

ऐसे तुमने भी पुत्र गवाँये, और वसन आभूषण उनके पलटे लेआये अब उन बिन धन क्या करोगे? हे मूरखकंत! जिनके पलक ओट भये

छाती फटै, उन बिन निशि दिन कैसे कटै? जब उन्होंने तुमसे बिछुड़नेको कहा, तब तुम्हारा हिया कैसे रहा? इतनी बात सुन नंदजीने बड़ा दुःख पाया और नीचा शिरकर यह वचन सुनाया सच कहे, ये वस्त्र अलंकार कृष्णने दिये. पर मुझे यह सुध नहीं किसने लिये, और मैं कृष्णकी बात क्या कहूँगा सुनकर तूभी दुःख पावेगी.

कंस मार मोपै फिर आये। प्रीतिहरन कहि वचनसुनाये॥
वसुदेवके पुत्र वे भये। कर मनुहार हमारी गये॥
हौं तब महरि मचंभे रह्यो। पोषन भरन हमारो कह्यो॥
अबजनिमहरिहरिहिसुतकहिये। ईश्वरजानिभजनकरिरहिये

उसे तो हमने पहलेही नारायण जानाथा. पर माया वश पुत्र कर माना महाराज! जद नंदरायजीनें सच २ बातें श्रीकृष्णकी कही कह सुनाई, तिस समय मायावशहो यशोदारानी कभी तो प्रभुको अपना पुत्र जान मनहीं मन पछताय व्याकुल होहो रोतीथी. और कभी ज्ञानकर ईश्वर जान उनका ध्यानधर गुणगाय गाय मनका खेद खोतीथी. और इसरीतिसे सब वृन्दावनवासी क्या स्त्री क्या पुरुष हरिके प्रेम रँगराते अनेक अनेक प्रकारकी बातें करतेथे, सो मेरी सामर्थ्य नहीं जो मैं वर्णन करूँ. इससे अब मथुराकी लीला कहताहूं तुम चित्त दे सुनो. कि जब हलधर और गोविंद नंदरायको बिदाकर वसुदेव देवकीके पास आये, तब उन्होंने इन्हें देख दुःख भुलाय ऐसे सुख माना; कि जैसे तपी तपकर अपने तपका फल पाय सुख माने. आगे वसुदेवजीने देवकीसे कहा कि, कृष्ण बलदेव पराये यहाँ रहेहैं इन्होंने उनके साथ खाया पियाहै और अपनी जातिका व्यवहार भी नहीं जानते. इससे अब उचित है कि, पुरोहितको बुलाय पूँछें जो वह कहें सो करें. देवकी बोली बहुत अच्छा. तद वसुदेवजीने अपने कुलपूज्य गर्गमुनिजीको बुला भेजा, वे आये उनसे इन्होंने अपने मनका संदेह सब कहके पूँछा कि–महाराज! अब हमें क्या करना उचितहै? सो दया कर कहिये, गर्गमुनि बोले पहले सब जाति भाइयोंको नौता बुलाइये, पीछे जात कर्म कर राम कृष्णको जनेऊ दीजे इतना वचन पुरो-

हितके मुखसे निकलतेही वसुदेवजी नगरमें नौता भेज सब ब्राह्मण और यदुवंशियोंको नौत बुलाया. वे आये तिन्हें अति आदर मानकर बिठाया. उसकाल पहले तो वसुदेवजीने विधिसे जातकर्म कर जन्मपत्रिका लिखवाय दशसहस्र गौ सोनेके सींग, ताँबेकी पीठ, रूपेके खुर समेत पाटंबर उढ़ाय, ब्राह्मणको दीं. जो श्रीकृष्णजीकी जन्म समय संकल्पी थीं पीछे मंगलाचार करवाय वेदकी विधिसे सब रीति भाँतिकर रामकृष्णका यज्ञोपवीत किया, और उन दोनों भाइयोंको कुछदे विद्या पढ़नेको भेज-दिया. वे चले चले अवंतिकापुरीके सांदीपननाम ऋषि जो महापंडित और बड़ा ज्ञानवान काशीपुरीमें था; उसके यहाँ आये दंडवत् कर हाथ जोड़ सम्मुखखड़े हो अतिदीनता कर बोले-

हमपर कृपा करो ऋषिराय । विद्यादान देहु मन लाय ॥

महाराज ! जब श्रीकृष्ण बलरामजीने सांदीपनऋषिसे यों दीनता कर कहा, तब तो उन्होंने इन्हें अति प्यारसे अपने घरमें रक्खा; और लगे बड़ी कृपाकर पढ़ावने, कितने एक दिनोंमें ये चारवेद, उपवेद, छःशास्त्र नौ व्याकरण, अठारहपुराण, मंत्र, यंत्र, तंत्र, आगम, ज्योतिष, वैद्यक, कोक. संगीत, पिंगल पढ़ चौदहविद्या निधान हुए. तब एक दिन दोनों भाइयोंने हाथ जोड़ अति विनतीकर गुरुसे कहा कि-महाराज ! कहाहै जो अनेक जन्म अवतार ले बहुतेरा कुछ दीजिये तोभी विद्याका पलटा नहीं दिया जाता, पर आप हमारी शक्तिदेख गुरुदक्षिणाकी आज्ञा कीजे तो हम यथाशक्ति दे आशीश ले अपने घरजायँ, इतनी बात श्रीकृष्ण बलरामजीके मुखसे निकलतेही सांदीपनऋषि वहाँसे उठ सोच विचार करता घरभीतर गया. और उसने अपनी स्त्रीसे उनका भेद यों समझाकर कहा कि, ये रामकृष्ण जो दोनों बालक हैं सो आदिपुरुष अविनाशीहैं भक्तोंके हेतु अवतार ले भूमिका भार उतारनेको संसारमें आयेहैं. मैंने इनकी लीला देख यह भेद जाना क्योंकि पढ़ पढ़ फिर फिर जन्मलेते हैं सोभी विद्यारूपी सागरकी थाह नहीं पाते, और देखो इस बालअवस्थासे थोड़ेही दिनोंमें ये ऐसे अगम

अपार समुद्रके पार होगये; जो किया चाहें सो पलभरमें करसकते हैं. इतना कह फिर बोले.

इनपै कहा माँगिये नारी । सुनके सुंदरि कहै विचारी ॥
मृतक पुत्र माँगो तुम जाय । जो हरि हैं तौ देहैं ल्याय ॥

ऐसे घरमेंसे विचारकर सांदीपनऋषि स्त्री सहित बाहरआय श्रीकृष्ण बलदेवजीके सन्मुख कर जोड़ दीनताकर बोले, महाराज ! मेरे एक पुत्रथा तिसे साथले मैं कुटुंब समेत एक पर्वमें समुद्र न्हाने गयाथा जो वहाँ पहुँचा कपड़े उतार सब समेत तीरमें न्हाने लगा. तो एक सागरकी लहर आई उसमें मेरा पुत्र बहगया. सो फिर न निकला, किसी मगर मच्छने निगल लिया . उसका दुःख मुझे बड़ाहै. जो आप गुरुदक्षिणा दिया चाहते हो तो वही सुत लादीजे और हमारे मनका दुःख दूर कीजे यह सुन श्रीकृष्ण बलराम गुरुपत्नी और गुरुको प्रणाम कर रथपरचढ़ उनका पुत्र लानेके निमित्त समुद्रकी ओर चले. और चले चले कितनी एक बेरमें तीरपर जा पहुँचे कि, इन्हें क्रोधवान् आते देख सागर भयवानहो मनुष्य शरीर धारणकर बहुतसी भेंटले नीरसे निकल तीरपर डरता काँपता इनके सोहीं आखड़ा हुआ और भेंटरख दंडवत् कर हाथ जोड़ शिर नवाय अति विनती कर बोला.

वडीभाग्यप्रभुदरशनदयो । कौनकाजइतआवनभयो ॥

श्रीकृष्णचंद्र बोले हमारे गुरुदेव यहाँ कुनबे समेत न्हाने आये थे. तिनके पुत्रको जो तू तरंगसे बहाय लेगया है तिसे लादे इसलिये हम यहाँ आयेहैं.

सुनतसिंधु बोल्यो शिरनाय । मैं नहिं लीन्हों वाहि बहाय ॥
तुम सबहीके गुरु जगदीश । रामरूप बाँध्योहो ईश ॥

तभीसे मैं बहुत डरताहूं और अपनी मर्यादा से रहताहूं. हरि बोले जो तूने नहीं लिया तो यहाँसे और कौन उसे लेगया. समुद्रने कहा कृपानाथ ! इसका भेद बताताहूं कि, एक शंखासुरनाम असुर शंखरूप मुझमें रहता है. सो सब जलचर जीवोंको दुःख देताहै और जो कोई तीरपर न्हानेको

आताहै तो उसे पकड़कर ले जाताहै. कदाचित् वह आपके गुरुसुतको ले गया होय तो मैं नहीं जानता आप भीतर पैठ देखिये.

योंसुन कृष्ण धँसे मनलाय । माँझ समुँदर पहुँचेजाय ॥
देखतही शंखासुर मारचो । पेटफाडकै बाहर डारचो ॥
तामें गुरुको पुत्र न पायो । पछिताने बलभद्र सुनायो ॥

कि भैया! हमने इसे विनकाज मारा. बलरामजी बोले कुछ चिंता नहीं, अब आप इसे धारण कीजो. यह सुन हरिने उस शंखको अपना आयुध किया, आगे दोनों भाई वहाँसे चलेरथमपुरीमें जापहुँचे जिसका संयमनी नामहै और धर्मराज वहाँका राजाहै. उनको देखतेही धर्मराज अपनी गद्दीसे उठ आगे आय अति भाव भक्तिकर लेगया, सिंहासनपर बैठाय पाँव धो चरणामृतले बोला, धन्य यह ठौर धन्य यह पुरी जहाँ आकर प्रभुने दर्शन दिया, और अपने भक्तोंको कृतार्थ किया. अब कुछ आज्ञा कीजे, जो सेवक पूर्ण करे. प्रभुने कहा कि, हमारे गुरुपुत्रको लादे इतना वचन हरिके मुखसे निकलतेही धर्मराज झट जाकर बालकको ले आया, और हाथ जोड़ बिनतीकर बोला कि, कृपानाथ ! आपकी कृपासे यह बात मैंने पहलेही जानीथी; कि, आप गुरुसुतको लेने आवोगे, इसलिये मैंने यत्न कर रक्खाहै. इस बालकको आजतक जन्म नहीं दिया. महाराज ! ऐसे कह धर्मराजने बालक हरिको दिया. प्रभुने लेलिया और तुरंत उसे रथपर बैठाय वहाँसे चल कितनी एक बेरमें ला गुरुके सोंही खड़ा किया और दोनों भाइयोंने हाथ जोड़के कहा गुरुदेव ! अब क्या आज्ञा होतीहै ? इतनी बात सुन और पुत्रको देख सांदीपनऋषि अति प्रसन्नहो श्रीकृष्ण बलरामजीको बहुतसी आशीश देकर बोले.

अबहों माँगों कहा मुरारी । दीन्हों मोहिं पुत्र सुखभारी ॥
अतियश तुमसो शिष्यहमारो । कुशलक्षेम अब घरहिंपधारो ॥

जब ऐसे गुरुने आज्ञाकी, तब दोनों भाई बिदाहो दंडवतकर रथपर बैठ वहाँसे चले चले मथुरापुरीके निकट आये, इनका आना सुन राजा उग्रसेन वसुदेव समेत नगरवासी क्या स्त्री क्या पुरुष सब उठधाये, और

नगरके बाहर आय भेंटकर अति सुख पाय बाजे गाजेसे पाटंबरके पाँवड़े डालते प्रभुको नगरमें लेगये. उसकाल घर घर मंगलाचार होने लगे और बधाई बाजने लगीं.

इति श्रीलल्लूलालकृते प्रेमसागरे शंखासुरवधोनाम षट्चत्वारिंशोऽध्यायः॥ ४६ ॥

अध्याय ४७.

श्रीशुकदेवजीबोलेकि, पृथ्वीनाथ ! जो श्रीकृष्णचंद्रजीने वृंदावनकीसुरत करी सो मैं सब लीला कहताहूं तुम चित्त दे सुनो कि, एक दिन हरिने बलरामजीसे कहा कि, भाई! सब वृन्दावनवासी हमारी सुरतकर अति दुःख पाते होंगे, क्योंकि जो मैंने उनसे अवधिकीथी सो बीतगई. इससे अब उचितहै कि किसीको वहाँ भेजदीजे. जो जाकर उनका समाधान कर आवे. यों भाईसे मतोकर हरिने उद्धवको बुलायके कहा कि अहो उद्धव ! एक तो तुम हमारे सखाहो, दूजे अति चतुर ज्ञानवान और धीर; इसलिये हम तुम्हें वृन्दावन भेजा चाहतेहैं कि, तुम जाकर नंद यशोदा और गोपियोंको ज्ञानदे उनका समाधान कर आवो, और माता रोहिणी को ले आवो. उद्धवजीने कहा जो आज्ञा; फिर श्रीकृष्णचन्द्र बोले, तुम प्रथम नंदमहर और यशोदाजीको ज्ञान उपजाय उनके मनका मोह मिटाय ऐसे

समझाकर कहियो जो वे मुझे निकट जान दुःख तजें और पुत्रभाव छोड़ इश्वरमान भजें पीछे उन गोपियोंसे कहियो जिन्होंने मेरे काज, छोड़ीहैं लोक वेदकी लाज, रातदिन लीलायश गातीहैं और अवधिकी आश किये प्राण मूठीमें लियेहैं कि तुम कंतभाव छोड़ हरिको भगवान जान भजो और विरहदुःख तजो. महाराज! ऐसे उद्धवको कह दोनों भाइयोंने मिलकर एक पाती लिखी. जिसमें "नंद यशोदा समेत गोप ग्वालोंको तो यथायोग्य दंडवत प्रणाम आशीर्वाद लिखा, और सब व्रजयुवतियोंको योगका उपदेश" लिख उद्धवके हाथदी और कहा यह पाती तुमहीं पढ़-सुनाइयो. जैसे बने तैसे उन सबको समझाय शीघ्र आइयो. इतना सँदेशा कह प्रभुने निजवस्त्र आभूषण मुकुट पहराय अपनेही रथपर बैठाय उद्धव जीको वृंदावन बिदा किया. ये रथ हाँक कितनी एक बेरमें मथुरासे चले चले वृन्दावनके निकट जा पहुँचे. तो वहाँ देखते क्याहैं कि, सघन सघन कुंजोंके पेड़ोंपर भाँति भाँतिके पक्षी मनभावन बोलियाँ बोलरहेहैं. और जिधर तिधर धौली, धूमरी, भूरी, पीली, गायें वटासी फिरती हैं. और ठौर ठौर गोपी गोप ग्वाल बाल श्रीकृष्ण यश गाय रहेहैं. यह शोभा निरख हर्षते और प्रभुका विहारस्थल जान प्रणाम करते उद्धवजी जो गाँवके खरिक निकट गये तो किसीने दूरसे हरिका रथ पहिंचान पास आय इनका नाम पूंछ नंदमहरसे जा कहा कि, महाराज! श्रीकृष्णका वेषकिये उन्हीं का रथलिये कोई उद्धवनाम मथुरासे आयाहै इतनी बातके सुनतेही नंद राय जैसे गोप मंडलके बीच अथाई पर बैठेथे. तैसेही उठ धाये और तुरंत उद्धवजीके निकट आये, राम कृष्णका संगी जान अति हितकर मिले, और कुशल क्षेम पूंछ बड़े आदर मानसे घर लिवाय लेगये पहले पाँव धुलवाय आसन बैठने को दिया. पीछे षड्रस भोजन बनवाय उद्धवजीकी पहुनई की; जब वे रुचिसे भोजन करचुके तब एक सुठौर उज्वल फेनसी सेज बिछवादी; तिसपर पान खाय जाय उन्होंने पौढ़कर अति सुखपाया और मार्गका श्रम सब गँवाया. कितनी एक बेरमें जो उद्धवजी सोकर उठे तो नंदमहर उनके पास जा बैठे और पूंछने लगे कि, कहो उद्धवजी शूरसेन

के पुत्र हमारे परममित्र वसुदेवजी कुटुंब समेत आनन्दसे हैं और हमसे कैसी प्रीति रखते हैं ? यों कह फिर बोले-

कुशल हमारे सुतकी कहौ । जिनके संग सदा तुम रहौ ॥
कबहूँ वे सुधि करत हमारी । उनबिनदुखपावतहमभारी ॥
सबहीसों आवन कहगये । बीतीअवधि बहुत दिन भये ॥

नित उठ यशोदा दही बिलोय माखन निकाल हरिके लिये रखतीहै. उसकी और ब्रजयुवतियोंकी जो उनके प्रेमरंगमें रँगीहैं सुरत कभू कान्ह करतेहैं कि, नहीं ?

इतनी कथा सुनाय श्रीशुकदेवजीने राजापरीक्षितसे कहा कि, पृथ्वीनाथ ! इसी रीतिसे समाचार पूँछते पूँछते और श्रीकृष्णचन्द्रजीकी पूर्वलीला गाते गाते नंदरायजी तो प्रेमसे भींज, इतना कह प्रभुका ध्यानकर अवाक् हुये कि-

महाबली कंसादिक मारे । अब हम काहे कृष्ण बिसारे ॥

इस बीच अति व्याकुल हो सुध बुध देहकी बिसारे मनमारे रोते यशोदारानी उद्धवजीके निकट आय राम कृष्णकी कुशल पूँछ बोली, कहो उद्धवजी ! हरि हमबिन वहाँ कैसे इतनेदिन रहे? और क्या सँदेशा भेजाहै, कब आय दर्शन देंगे ? इतनी बात सुनतेही पहले तो उद्धवजीने नंद यशोदाको कृष्ण बलरामकी पाती पढ़ सुनाई पीछे समझाकर कहने लगे कि, जिनके घरमें भगवान्‌ने जन्म लिया और बाललीला कर सुख दिया. तिनकी महिमा कौन कहसके. तुम बड़े भाग्यवान्हो. क्योंकि जो आदिपुरुष अविनाशी शिव विरंचिका कर्त्ता न जिसके माता न पिता न भाई न बंधु तिन्हें तुम अपना पुत्र जान मानतेहो. और सदा उसीके ध्यानमें मनलगाये रहतेहो, वह तुमसे कब दूर रह सकताहै, कहाहै-

सदा समीप प्रेमवशहरी । जनके हेतु देहनिजधरी ॥
जाके वैरी मित्र न कोई । ऊँचनीच कोऊ किन होई ॥
जोई भक्तिभजन मन धरे । सोई हरिसों मिलअनुसरे ॥

जैसे भृंगी कीटको ले जाताहै, और अपना रूप बनादेता है, और जैसे कमलके फूलमें भौंरा मूंद जाताहै, और रातभर उसके ऊपर गुंजता रहताहै, उसे छोंड़ और कहीं नहीं जाता तैसेही जो हरिसे हित करताहै और उनका ध्यान धरताहै, तिसे वेभी आपसा बना लेतेहैं, और सदा उसके पासही रहते हैं. योंकह फिर उद्धवजी बोले कि अब तुम हरिको पुत्र कर मत जानो, ईश्वर कर मानो वे अंतर्यामी भक्त हितकारी प्रभु आय दर्शनदे तुम्हारा मनोरथ पूरा करेंगे, तुम किसी बातकी चिंता मत करो.

महाराज ! इसी रीतिसे अनेक अनेक प्रकारकी बातें कहते और सुनते सुनाते जब सब रात व्यतीत भई और चारघड़ी पिछली शेषरही तब नंदरायजीसे उद्धवजीने कहा कि, महाराज ! अब दधि मथनेकी बिरिया हुई जो आपकी आज्ञा पाऊँ, तो यमुना स्नान करि आऊँ; नंदमहर बोले बहुत अच्छा, इतना कह वे तो वहाँ बैठे सोच विचार करते रहे, और उद्धव उठ झट रथमें बैठ यमुना तीरपर आये, पहले वस्त्र उतार देह शुद्धकरी पीछे नीरके निकट जाय रज शिर चढ़ाय हाथ जोड़ कालिंदीकी स्तुति गाय आचमनकर जलमें पैठ और न्हाय धोय संध्या पूजा तर्पणसे निश्चित हो लगे जपकरने, उसीसमय सब ब्रजयुवतियाँ भी उठीं और अपना अपना घर झाड़ बुहार लीप पोत धूप दीपकर लगीं दही मथने.

दधिको मथन मेहसों गाजे । गावैं नूपुरकी धुनि बाजे ॥

दो०--दधिमथिके माखन लियो, कियो गेहको काम ।
तब सब मिलि पानी चलीं, सुंदर ब्रजकी बाम ॥

महाराज ! वे गोपियाँ श्रीकृष्णके वियोग मद मातियाँ उनकाही यशगातियाँ अपने झुंड लिये प्रीतमका ध्यान किये बाटमें प्रभुकी लीला गाने लगीं.

एक कहै म्वहिं मिले कन्हाई । एककहै वे भजे लुकाई ॥
पाछेते पकरी मों बाँह । वे टाढे हरि वटकी छाँह ॥
कहत एक गो दोहत देखे । बोली एक भोरही पेखे ॥

एक कहै वे धेनु चरावें। सुनहुँ कानदै वेणु बजावें॥
या मारग हम जायँ न माई। दानमाँगि है कुँवरकन्हाई॥
गागरि फोरें गांठि छोरिहैं। नेक चितकै चित्त चोरिहैं॥
हैं कहुँ दुरे दौरि आय हैं। तव हम कहा जानि पायहैं॥
ऐसे कहत चलीं ब्रजनारी। कृष्णवियोगविकलतनुभारी॥

इति श्रीलल्लूलालकृते प्रेमसागरे उद्धववृन्दावनगमनो
नाम सप्तचत्वारिंशोऽध्यायः॥ ४७॥

अध्याय ४८.

श्रीशुकदेवमुनि बोले कि, पृथ्वीनाथ! जब उद्धवजी जप करचुके तब नदीसे निकल वस्त्र आभूषण पहन रथमें बैठ जो कालिंदी तीरसे नंदगेहकी ओर चले तो गोपियाँ जो जल भरनेको निकलींथीं तिन्होंने रथ दूरसे पंथमें आते देखा देखतेही आपसमें कहने लगीं कि, यह रथ किसका चला आताहै इसे देखलो, आगे पाँव न

बढ़ावो. यों सुन उनमेंसे एक गोपी बोली कि, सखी ! कहीं वही कपटी अक्रूर तो न आया होय? जिसने श्रीकृष्णचन्द्रको लेजाय मथुरामें बसाया, और कंसको मरवाया. इतना सुन एक और उनमेंसे बोली यह विश्वासघाती फिर काहेको आया. एक बार तो हमारे जीवनमूलको लेगया, अब क्या जीवलेगा. महाराज ! इसीभाँतिकी आपसमें अनेक २ बातें कह.

ठाढी भई तहाँ ब्रजनारी । शिरते गागरि धरी उतारी ॥

इतनेमें जो रथ निकट आया तो कुछ एक दूरसे उद्धवजीको देखकर आपसमें कहने लगीं कि, सखी यह तो कोई श्यामवर्ण, कमलनयन, मुकुट शिर दिये, वनमाला गलेमें डाले, पीतांबर पहिरे, पीतपट ओढे, श्रीकृष्णचंद्रसा रथमें बैठा हमारी ओर देखता चला आताहै; तब तिनहींमेंसे एक गोपीने कहा कि सखी ! यह तो कलसे नंदजीके यहाँ आयाहै उद्धवइसका नामहै, और श्रीकृष्णचंद्रजीने कुछ सँदेशा इसके हाथ कह पठायाहै. इतनीबात के सुनतेही गोपियाँ एकांत ठौर देख सोच संकोच छोड़ दौड़ कर उद्धवजीके निकट गईं और हरिका हितूजान दंडवतकर कुशल क्षेम पूंछ हाथ जोड़ रथके चारों ओर घेरके खड़ी हुईं उनका अनुराग देख उद्धवजी भी रथसे उतर पड़े. तब सब गोपियाँ उन्हें एक पेड़ की छायामें बैठाय आप भी चारों ओर घेर के बैठीं और अति प्यारसे कहने लगीं.

भली करी उद्धव तुम आये । समाचार माधवके लाये ॥
सदा समीप कृष्णके रहौ । उनको कह्यो सँदेशो कहौ ॥
पठये मात पिताके हेत । और न काहूकी सुधिलेत ॥
सर्वस दीन्हों उनके हाथ । उरझे प्राण चरणके साथ ॥
अपनेहीं स्वारथके भये । सबहीको अब दुख देगये ॥

और जैसे फलहीन तरुवरको पक्षी छोड़ जाताहै तैसेही हरि हमें छोड़ गये. हमने उन्हें अपना सर्वस दिया तौभी हमारे न हुए. महाराज ! जब प्रेमसें मग्न है इसी ढबकी बातें बहुतसी गोपियोंने कहीं, तब उद्धवजी उनके प्रेमकी दृढ़ता देख ज्यों प्रणाम करनेको उठा चाहतेथे त्योंहीं किसी गोपीने एक भौंराको फूलपर बैठते देख उसके मिस उद्धवसे कहा,

अरे मधुकर! तैंने माधवके चरण कमलका रस पियाहै तिसीसे तेरो नाम मधुकर हुआ. और कपटीका मित्रहै इसलिये तुझे उसने अपना दूतकर भेजाहै, तू हमारे चरण मत परसे. क्योंकि हम जानैहैं जितने श्यामवर्ण हैं उतने सब कपटीहैं जैसा तू है तैसाही है श्याम, इससे तुम हमें मत-करो प्रणाम; जो तू फूल फूलका रस लेता फिरताहै और किसीका नहीं होता. तो वेभी प्रीतिकर किसीके नहीं होते, ऐसे गोपी कह रहीं थीं कि, एक भौंरा और आया उसे देख ललिता नाम गोपी बोली.

अहो भ्रमर तुम अलगी रहौ । यहतुमजायमधुपुरी कहौ ॥

जहां कुबजासी पटरानी और श्रीकृष्णचंद्र विराजतेहैं कि,एक जन्मकी हम क्याकहैं तुम्हारी तो जन्म जन्मकी यही चालहै,बलिराजाने सर्वस दिया तिसे पाताल पठाया औरसीतासी सतीको बिन अपराध घरसे निकाला; जब उनकी यह दशाकी तो हमारी क्या चलीहै. योंकह फिर सब गोपी मिल हाथजोड़ उद्धवसे कहने लगीं कि, उद्धवजी हम अनाथहैं श्रीकृष्ण बिन, तुम अपने साथ ले चलो. श्रीशुकदेवजी बोले, कि महाराज! इतना वचन गोपियोंके मुखसे निकलतेही उद्धवजीने कहा,जो सँदेशा श्रीकृष्ण चंद्रजीने लिख भेजाहै सो मैं समझाकर कहताहूं तुम चित्त दे सुनो, लिखाहै तुम भोगकी आश छोड़ योग करो तुमसे वियोग कभी न होगा-और कहाहै कि-

निशिदिनकरतीमेराध्यान। प्रियनहिंकोइममतुमहिंसमान ॥

इतना कह फिर उद्धवजी बोले, जो है आदिपुरुष अविनाशी हरी, तिनसे तुमनें प्रीति निरंतर करी; जिन्हें सब कोई अलख अगोचर अभेद बखाने, तिन्हे तुमने अपने कंत कर माने. पृथ्वी, पवन, पानी, तेज, आकाशकाहै जैसे देहमें निवास, ऐसे प्रभु तुममें विराजतेहैं. पर मायाके गुणोंसे न्यारे दिखाई देतेहैं. उनका सुमिरण ध्यान किया करो, वे सदा अपने भक्तोंके वश रहतेहैं औरपास रहनेसे होताहै ज्ञान ध्यानका नाश, इसलिये हरिनें कियाहै दूर जायके बास. और मुझे यह भी श्रीकृष्णचंद्रने समझायके कहाहै, कि तुम्हें वेणु बजाय वनमें बुलाया और जब देखा

तुम्हारेमें मदन वीरका प्रकाश, तब हमनें तुम्हारे साथ मिलकर कियाथा रास विलास.

जद तुम सुरता दी बिसराई । अंतर्द्धान भये यदुराई ॥

फिर जो तुमने ज्ञानकर ध्यान हरिका मनमें किया त्योंहीं तुम्हारे चित्तकी भक्ति ज्ञान देख प्रभुने आय दर्शन दिया. महाराज ! इतना वचन उद्धवजीके मुखसे निकलतेही.

गोपी तबै कहैं सतराय । सुनीबात अबरहु अरगाय ॥
ज्ञान योगविधि हमहिंसुनावैं । ध्यानछोड़आकाशबतावैं ॥
जिनको लीलामें मन रहै । तिनको को नारायण कहै ॥
बालापनतेजिनसुखदयो । सो क्यों अलख अगोचर भयो ॥
जो सब गुणयुत रूप स्वरूप । सोक्योंनिर्गुणहोयनिरूप ॥
जो तुममें प्रिय प्राण हमारे । तोकोसुनिहै वचन तिहारे ॥
एक सखी उठि कहै विचारी । उद्धवकी कीजै मनुहारी ॥
इनसों सखीकछूनहिंकहिये । सुनके वचनदेखमुखरहिये ॥
एक कहति अपराध न याको । यहआयो पठयोकुबजाको ॥
अब कुबजा जो जाहि सिखावै । सोई वाको गायो गावै ॥
कबहूं श्याम कहैं नहिं ऐसी । कहीआयब्रजमें इन जैसी ॥
ऐसी बात सुनैको माई । उठत शूल सुनि सही न जाई ॥
कहत भोग तजि योग अराधो । ऐसी कैसे कहिहैं माधो ॥
जप तप संयम नेम अपार । यह सब विधवाको व्योहार ॥
युगयुग जीवहु कुँवर कन्हाई । शीश हमारे परसुखदाई ॥
आछत पती विभूति लगाई । कहो कहाँकी रीति चलाई ॥
हमको नेम योग व्रत एहा । नंदनँदनपद सदा सनेहा ॥
उद्धव तुम्हैं दोषको लावै । यह सब कुबजा नाच नचावै ॥

इतनी कथा सुनाय श्रीशुकदेवमुनि बोले कि महाराज ! जब गोपियोंके

मुखसे ऐसे प्रेमरस साने वचन सुने तब योग कथा कहके उद्धव मनहींमन पछताय सकुचाय मौन साध शिर नवाय रहगये, फिर एक गोपीने पूंछा; कहो! बलभद्रजी कुशल क्षेमसे हैं? और बालापनकी प्रीति विचार कभी हमारी सुधि करतेहैं कि नहीं? यह सुन उनहींमेंसे किसी और गोपीने उत्तर दिया कि, तुम तो हो अहीरी गँवारी, और मथुराकी हैं सुंदरी नारी; तिनके वश हो हरि विहार करते हैं. अब हमारी सुरत क्यों करेंगे. जबसे वहाँ जाके छाये, सखी तबसे पिव भये पराये; जो पहले हम ऐसा जानतीं; तो काहेको जाने देतीं, अब पछताये कुछ हाथ नहीं आता, इससे उचितहै कि, सब दुःख छोड़ अवधिकी आश करि रहिये. क्योंकि जैसे आठ महीने पृथ्वी, वन, पर्वत, मेघकी आश किये तपन सहतेहैं, और तिन्हें आय वह ठंढा करता है तैसे हरि भी आय मिलेंगे.

एककहति हरि कीन्हों काज । वैरी मारो लीन्हों राज ॥
काहेको वृंदावन आवें । राज्य छाँडि क्यों गाय चरावें ॥
छोडहु सखी अवधिकी आश । चिंता जैहै भये निराश ॥
एक त्रिया बोली अकुलाय । कृष्णआश क्यों छोडी जाय ॥

वन, पर्वत और यमुनाके तीरमें जहाँ २ श्रीकृष्ण बलवीरने लीला करी, तहाँ तहाँ वही ठौर देख सुध आती है खरी; प्राणपति! हरिको यों कह फिर बोली.

दोहा०-दुखसागर यह व्रजभयो, नाम नाव विचधार ।
बूडहि विरह वियोग जल, कृष्णकरैं कबपार ॥
गोपीनाथते क्योंसुधि गई । लाजनकछुनामकीभई ॥

इतनी बात सुन उद्धवजी मनहींमन विचार करने लगे कि, धन्यहै इन गोपियोंको और इनकी दृढ़ताको जो सर्वस्व छोड़ श्रीकृष्णचंद्रके ध्यानमें लीन होरही हैं महाराज! उद्धवजीतो उनका प्रेमदेख मनहींमन सराहतेहीथे, कि उसकाल सब गोपी उठखड़ी हुई, और उद्धवजीको बड़े आदर मानसे अपने घर लिवाय लेगईं; उनकी प्रीति देख इन्होंने भी वहाँ जाय

भोजन किया, और विश्राम कर श्रीकृष्णकी कथा सुनाय उन्हें बहुत सुख दिया. तब सब गोपी उद्धवजीकी पूजाकर बहुतसी भेंट आगेधर हाथ जोड़ अति विनतीकर बोलीं; उद्धवजी! तुम हरिसे जाय कहियो कि, नाथ! आगे तो तुम बड़ी कृपा करतेथे, हाथ पकड़ अपने साथ लिये फिरतेथे, अब ठकुराई पाय नगरनारी कुबजाके कहे योग लिख भेजा. हम अबला अपवित्र अबतक गुरुमुख भी नहीं हुई हम ज्ञान क्या जानें.

उनसों बालापनकी प्रीति। जानें कहा योगकी रीति॥
वे हरि क्यों न योग दे जात। यह न सँदेशेकी है बात॥
उद्धव यों कहियो समुझाय। प्राणजातहैं राखैं आय॥

महाराज! इतनी बात कह सब गोपियाँ तो हरिका ध्यानकर मग्न होरहीं. और उद्धवजी उन्हें दंडवतकर यहाँसे उठ रथपर बैठ गोवर्द्धनमें आये. वहाँ कईएक दिन रहे फिर वहाँसे जो चले तो जहाँ जहाँ श्रीकृष्णचंद्रजीने लीला करीथीं तहाँ तहाँ गये. और दो दो चार चार दिन सब ठौर रहे. निदान कितने एकदिन पीछे फिर वृंदावनमें आये. और नंद यशोदाजीके पास जा हाथ जोड़कर बोले आपकी प्रीति देख मैं इतने दिन व्रजमें रहा; अब आज्ञापाऊं तो मथुराको जाऊं, इतनी बातके सुनतेही यशोदा रानी दूध, दही, माखन, और बहुतसी मिठाई घरमें जाय ले आई, और उद्धवजीको देके कहा कि, यह तो तुम श्रीकृष्ण बलराम प्यारोंको देना. और बहन देवकीसे यों कहना, कि मेरे श्रीकृष्ण बलरामको भेजदे; विलमाय न रक्खे. इतना सँदेशा कह नंदरानी अति व्याकुलहो रोने लगी. तब नंदजी बोले, कि उद्धवजी! हम तुमसे अधिक क्या कहें तुम आप चतुर गुणवान् महासुजान हो. हमारी ओरसे प्रभुसे ऐसे जाय कहियो कि, वे व्रजवासियोंका दुःख विचार बेग आय दर्शनदें और हमारीसुधिनबिसारें इतना कह जब नंदरायने आँशू भरलिये, और जितने व्रजवासी क्या स्त्री क्या पुरुष वहाँ खड़ेथे सोभी सब रोने लगे. तब उद्धवजी उन्हें समझाय बुझाय आशा भरोसा दे ढाढ़स बँधाय विदाहो रोहिणीको साथ ले मथुराकोचले, और कितनी एक बेरमें चले चले श्रीकृष्णके पास आ पहुँचे.

उन्हें देखतेही श्रीकृष्ण बलदेव उठकर मिले और बड़े प्यारसे इनकी कुशल क्षेम पूंछ वृंदावनके समाचर पूंछने लगे. कहो उद्धवजी! नंद यशोदासमेत सब ब्रजवासी आनंदसे हैं और कभी हमारी सुरत करते हैं कि नहीं? उद्धवजी बोले कि, महाराज! ब्रजकी महिमा और ब्रजवासियोंका प्रेम मुझसे कुछ कहा नहीं जाता उनके तो तुम्हीं हो प्रान, निशि दिन करते हैं वे तुम्हाराही ध्यान; और ऐसी देखी गोपियोंकी प्रीति. जैसे होतीहै पूरण भजनकी रीति; आपका कहा योगका उपदेश जा सुनाया. पर मैंने भजनका भेद उनहींसे पाया इतना समाचार कह, उद्धवजी बोले कि, दीनदयालु! मैं अधिक क्या कहूं आप अंतर्यामी घट घटकी जानतेहो थोड़ेही में समझिये कि, ब्रजमें क्या जड़, क्या चैतन्य, सब आपके दर्शनपर्शन बिन महादुःखी हैं. केवल अवधिकीआश कररहे हैं इतनी बातके सुनतेही जद दोनोंभाई उदास होरहे तद उद्धवजी तो श्रीकृष्णचंद्रजीसे बिदाहो नंद यशोदाका सँदेशा वसुदेव देवकीको पहुँचाय अपने घरगये और रोहिणीजी श्रीकृष्ण बलराममे मिल अति आनंदकर निज मंदिरमें रहीं.

इति श्रीलल्लूलालकृते प्रेमसागरे गोपीसं० भ्रमरगीत नामाष्टचत्वारिंशोऽध्यायः ४८

अध्याय ४९.

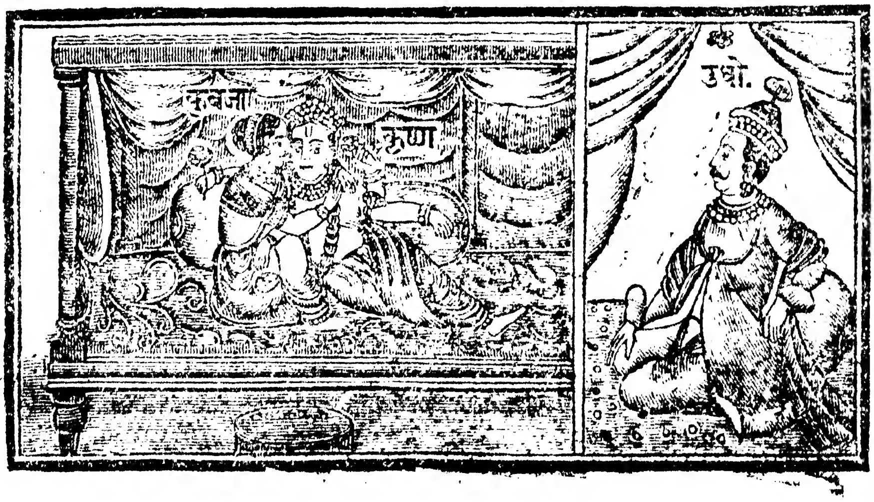

श्रीशुकदेवमुनि बोले कि, महाराज! एकदिन श्रीकृष्णविहारी भक्त-

हितकारी, कुबजाकी प्रीति विचार अपना वचन प्रतिपालनेको उद्धवको साथले उसके घर गये.

जब कुबजा जान्यो हरि आये। पाटंबर पाँवडे बिछाये ॥
अति आनंद लये उठि आगे। पूरबपुण्य पुंज सबजागे ॥
उद्धवको आसन बैठारी। मंदिर भीतर धँसे मुरारी ॥

वहाँ जाय देखें तो चित्रशालामें उज्ज्वल बिछौना बिछाहै उसपर एक फूलोंसे सँवारी अच्छी सेज बिछीहै. तिसपर हरि जा विराजे. और कुबजा एक ओर मंदिरमें जाय सुगंध उबटन लगाय न्हाय धोय कंघी चोटीकर सुथरे कपड़े पहन नखशिखसे शृंगार कर पानखाय सुगंध लगायकर ऐसे रावचावसे श्रीकृष्णचंद्रके निकट आई कि, जैसे रति अपने पतिके पास आई होय और लाजसे घूँघट किये प्रथम मिलनका भय डरलिये चुप चाप एक ओर खड़ी होरही, देखतेही श्रीकृष्णचन्द्र आनंदकन्दने उसे हाथ पकड़ अपने पास बिठाय लिया और उसका मनोरथ पूर्ण किया.

तब उठि उद्धवके ढिग आये। भई लाज हँसि नैन नवाये॥

महाराज ! यों कुबजाको सुखदे उद्धवजीको साथले श्रीकृष्णचद्र फिर अपने घर आये. और बलरामजीसे कहने लगे कि भाई हमने अक्रूरजीसे कहाथा कि, तुम्हारा घर देखने आवेंगे सोपहले तो वहाँ चलिये; पीछे उन्हें हस्तिनापुरको भेज वहाँके समाचार मँगवाइये इतना कह दोनों भाई अक्रूरके घर गये. वह प्रभुको देखतेही अति सुखपाय प्रणामकर चरणरज शिर चढ़ाय हाथ जोड़ विनती कर बोला कृपानाथ ! आपने बड़ी कृपा की जो आय दर्शन दिया, और मेरा घर पवित्र किया. यह सुन श्रीकृष्णचंद्र बोले कका इतनी बड़ाई क्यों करतेहो; हम तो आपके लड़के हैं. यों कह फिर सुनाया कि, कका आपके पुण्यसे असुर तो सब मारे गये, पर एकही चिंता हमारे जीमें है कि, पांडु वैकुंठ सिधारे; और दुर्योधनके हाथ पाँच भाई हैं दुःखी हमारे.

कुंतीफुफी अधिक दुखपावे। तुमबिन जायकौन समझावे॥

इतनी बातके सुनतेही अक्रूरजीने हरिसे कहा आप इस बातकी चिंता न कीजे मैं हस्तिनापुर जाऊँगा. और उन्हें समझाय वहाँकी सुध ले आऊँगा

इति श्रीलल्लूलालकृते प्रेमसागरे कुब्जागृहलीलावर्णनो नाम एकोनपंचाशत्तमोऽध्यायः॥ ४९॥

अध्याय ५०.

श्रीशुकदेवमुनि बोले कि पृथ्वीनाथ! जब ऐसा श्रीकृष्णचंद्रजीने अक्रूरके मुखसे सुना तब उन्हे पांडवोंकी सुधलेनेको बिदा किया. वे रथपर बैठ चले चले कई एक दिनमें मथुरासे हस्तिनापुर पहुँचे, और रथसे उतर जहाँ राजा दुर्योधन अपनी सभामें बैठा था तहाँ जाजुहार कर खड़े हुए. इन्हें देखते ही दुर्योधन सभासमेत उठकर मिला, और अतिआदर मानसे अपने पास बिठाय इनकी क्षेम कुशल पूंछ बोला.

नीके शूरसेन वसुदेव। नीकेहैं मोहन बलदेव॥
उग्रसेन राजा केहि हेत। नाहिन काहूकी सुधिलेत॥
पुत्रहि मार करतहै राज। तिन्हें न काहूसों है काज॥

ऐसे जब दुर्योधनने कहा तब अक्रूर सुन चुप होरहा और मनहींमन कहने लगा कि, यह पापियोंकी सभा है यहाँ मुझे रहना उचित नहीं. क्योंकि जो मैं रहूंगा तो ये ऐसी ऐसी अनेक बातें कहेंगे सो मुझसे कब सुनी जायँगी. इससे यहाँ रहना भला नहीं, यों विचार अक्रूरजी वहाँसे उठ विदुरको साथले पांडुके घर गये. तहाँ जाय देखें तो कुंती पतिके शोकसे महाव्याकुल हो रोरही है; उसके पास जा बैठे और लगे समझाने कि, माई! विधनासे कुछ किसीका वश नहीं चलता, और सदा कोई अमरहो जीता भी नहीं रहता. देहधर जीव दुःख सुख सहताहै. इससे मनुष्यको चिंता करनी उचित नहीं, क्योंकि चिंता कियेसे कुछ हाथ नहीं आता, केवल चित्तको दुःख देनाहै. महाराज! जद ऐसे समझाय बुझाय अक्रूरजीने कुंतीसे कहा तद वह सोच समझ चुप होरही. और इनकी कुशल पूंछ बोली हे अक्रूरजी! हमारे माता पिता और भाई वसुदेवजी कुटुम्बसमेत भले हैं? और श्रीकृष्ण बलराम कभी युधिष्ठिर, भीम, अर्जुन, नकुल, सहदेव इन अपने पाँचो भाइयोंकी सुध करतेहैं? ये तो यहाँ दुःखसमुद्रमें पड़े हैं वे इनकी रक्षा कब आय करेंगे? हमसे अब तो इस अंध धृतराष्ट्रका दुःख सहा नहीं जाता. क्योंकि अब दुर्योधनकी मतिसे चलताहै, इन पाँचोंके मारनेके उपायमें दिन रात रहताहै, कई बेर तो विष घोल दिया. सो मेरे भीमसेनने पीलिया इतना कह पुनि कुंती बोली कि, कहो अक्रूरजी जब सब कौरव यों बैर कररहे, तब यह मेरे बालक किसका मुँह चहें. और नीचसे बच कैसे होयँ सयाने, यह दुःख बड़ाहै, हम क्या बखानें, ज्यों हरिणी झुंडसे बिछुड़ करती है त्रास, त्यों मैं भी सदा रहती हूं उदास.

जिन कंसादिक असुरन मारे। सोई हैं मेरे रखवारे॥
भीम युधिष्ठिर अर्जुनभाई। इनको दुख तुम कहियो जाई॥

जब ऐसे दीनहो कुंतीने कहे वयन, तब सुनकर अक्रूरने भरलिये नयन, और समझाके कहने लगा कि, तुम कुछ चिंता मत करो. ये जो पाँचों पुत्र तुम्हारे हैं सो महाबली यशीहोंगे. शत्रु और दुष्टोंको मार करेंगे निकंद, इनके पक्षीहैं श्रीगोविंद; यों कह फिर अक्रूरजी बोले कि, श्रीकृष्ण बलरामने मुझे यहाँ तुम्हारे पास भेजाहै कि, फूफीसे कहियो किसी बातसे दुःख न

पावै. हम बेगही तुम्हारे निकट आतेहैं. महाराज ! ऐसे श्रीकृष्णकी कही बातें कह अक्रूरजी कुंतीको समझाय बुझाय आशा भरोसा दे बिदाहो विदुरको साथ ले धृतराष्ट्रके पास गये और उससे कहा कि. तुम पुरखा है ऐसी अनीति क्यों करते हो ? जो पुत्रके वश है अपने भाईका राजपाट ले भतीजोंको दुःख देतेहो यह कहाँका धर्म है ? जो ऐसा अधर्म करते हो.

लोचनगये न सूझे हिये । कुलबहिजाय पापकेकिये ॥

तुमने भले चंगे बैठे बिठाये क्यों ? भाईका राज्य लिया और भीम युधिष्ठिरको दुःख दिया ? इतनी बातके सुनतेही धृतराष्ट्र अक्रूरका हाथ पकड़ बोला कि, मैं क्या करूं मेरा कहा कोई नहीं सुनता; ये सब अपनी अपनी मतिसे चलतेहैं. मैं तो इनके सोहीं मूरख होरहाहूं, इससे इनकी बातोंमें कुछ नहीं बोलता. एकांत बैठ चुप चाप अपने प्रभुका भजन करताहूं. इतनी बात जो धृतराष्ट्रने कही तो अक्रूरजी दंडवतकर वहाँसे उठ रथपर चढ़ हस्तिनापुरसे चले चले मथुरानगरमें आये.

दोहा०–उग्रसेन वसुदेवसों, कही पांडुकी बात ।
कुंतीके सुत अति दुखित, भये क्षीण सबगात ॥

यों उग्रसेन वसुदेवजीसे हस्तिनापुरके सब समाचार कह अक्रूरजी फिर श्रीकृष्ण बलरामजीके पास जा प्रणाम कर हाथ जोड़ बोले महाराज ! मैंने हस्तिनापुरमें जाय देखा, आपकी फूफी और पाँचोभाई कौरवोंके हाथसे महादुःखी हैं. अधिक क्या कहूं? आप अंतर्यामी हैं, वहाँकी व्यवस्था और विपरीत तुमसे कुछ छिपी नहीं, यों कह अक्रूरजी तो कुंतीका कहा सँदेशा सुनाय बिदा हो अपने घर गये; और सब समाचार सुन श्रीकृष्ण बलदेव जो हैं सबदेवनके देव सो लोकरीतिसे बैठ चिंताकर भूमिका भार उतारनेका विचार करने लगे.

इतनी कथा शुकदेवमुनिने राजा परीक्षितको सुनायकर कहा कि, हे पृथ्वीनाथ ! यह जो मैंने ब्रजवन मथुराको यश गायो सो पूर्वार्द्ध कहा; अब आगे उत्तरार्द्ध गाऊंगा जो द्वारकानाथका बल पाऊंगा.

इति श्रीलल्लूलालकृते प्रेमसागरे अक्रूरहस्तिनापुरगमनो नामपंचाशत्तमोऽध्यायः

इति श्रीप्रेमसागरस्य पूर्वार्द्धकथा समाप्ता ॥

॥ श्रीः ॥

अथ उत्तरार्द्धकथाप्रारंभः ।

अध्याय ५१.

श्रीशुकदेवजी बोले कि, महाराज! ज्यों श्रीकृष्णचंद्र दलसमेत जरासंधको जीत कालयवनको मार मुचकुंदको तार ब्रजको तज द्वारकामें जाय बसे त्यों मैं सब कथा कहताहूँ, तुम सचेतहो चित्त लगाय सुनो कि, राजा उग्रसेन राजनीतिसे मथुरापुरीका राज्य करतेथे और श्रीकृष्ण बलरामसेवककी भाँति उनके आज्ञाकारी, इससे राजा राजप्रजा सब सुखीथे पर एक कंसकी रानियां ही अपने पतिके शोकसे महादुःखी थीं न इन्हें नींद आतीथी. न भूंख न प्यास लगतीथी. आठप्रहर उदास रहतीथीं एक दिन वे दोनों बहन अति चिन्ताकर आपसमें कहनेलगीं कि, जैसे नृपबिन प्रजा, चंद्रबिन यामिनी शोभा नहीं पाती, तैसे कंतबिन कामिनी भी शोभा नहीं पाती;अब अनाथ हो यहाँ रहना भला नहीं इससे अपने पिताके घर चलरहिये सो अच्छा.महाराज! वे दोनों रानियाँ ऐसे आपसमें सोच विचारकर रथ मँगवाय उसपर.चढ़ मथुरासे चलीं चलीं मगधदेशमें अपने पिताके यहाँ आईं और जैसे श्रीकृष्ण बलरामजीने सब

असुरों समेत कंसको मारा तैसे उन दोनोंने रोरो समाचार अपने पितासे सब कह सुनाया. सुनतेही जरासंध अति क्रोधकर सभामें आया और कहने लगा कि, ऐसे बली कौन यदुकुलमें उपजे, जिन्होंने सब असुरोंसमेत महाबली कंसको मार मेरी बेटियोंको रांड़ किया. मैं अभी अपना सब कटक ले चढ़धाऊं और सब यदुवंशियोंसमेत मथुरापुरीको जलाय श्रीकृष्ण बलरामको जीता बांध लाऊँ तो मेरा नाम जरासंध, नहीं तो नहीं. इतना कह उसने तुरंही चारोंओरके राजाओंको पत्र लिखे कि, तुम अपना २ दल लेले हमारे पास आवो. हम कंसका पलटा ले यदुवंशियोंका निर्वंश करेंगे, जरासंधका पत्र पाते ही सब देश देशके नरेश अपना २ दल साथले उठ चले आये और यहां जरासंधने भी अपनी सेना ठीकठाक बनारक्खी. निदान सब असुरदल साथले जरासंधने जिस समय मगधदेशसे मथुरापुरीको प्रस्थान किया, तिस समय उसके संग तेईस अक्षौहिणी सेनाथी (इक्कीससहस्र आठसौ सत्तर रथी, और इतनेही गजपति, एकलाख नवसहस्रसाढेतीनसौ पैदल, और छासठ सहस्र अश्वपति. यह अक्षौहिणीका प्रमाण है) ऐसी तेईस अक्षौहिणी उसके साथ थीं और उनमेंसे एक एक राक्षस ऐसा बली था सो मैं कहाँतक वर्णन करूं, महाराज! जिसकाल जरासंध सब असुर सेना साथले धौंसादे चला, उसकाल दशोदिशाके दिक्पाल लगे थर थर काँपने, और सब देवता मारे डरके भागने; पृथ्वी न्यारीही बोझसे लगी छतसी हिलने निदान कितने एक दिनोंमें चला चला जा पहुँचा. और उसने चारों ओरसे मथुरापुरीको घेरलिया. तब नगर निवासी अति भय खाय श्रीकृष्णचंद्रके पास जा पुकारे कि, महाराज! जरासंधने आय चारों ओरसे सेना ले नगर घेरा, अब क्या करें और किधर जायँ? इतनी बातके सुनतेही हरि कुछ सोच बिचार करने लगे. इतनेमें बलरामजीने आय प्रभुसे कहा कि, महाराज! आपने भक्तोंका दुःख दूर करनेके हेतु अवतार लियाहै अब अग्नि तनुधारण कर असुररूपी वनको जलाय भूमिका भार उतारिये यह सुन श्रीकृष्णचन्द्र उनको साथ ले उग्रसेनके पास गये और कहा कि, महाराज! हमें तो लड़नेकी आज्ञा दीजे और आप सब यदुवंशियोंको

साथ ले गढकी रक्षाकीजै इतना कह जो माता पिताके निकट आये तो सब नगर निवासी घेर आये व लगे अतिव्याकुलहो कहने कि, हे कृष्ण! अब इन असुरोंके हाथसे कैसे बचें ? तब हरिने माता पिता समेत सबको भयातुर देख समझाके कहा कि, तुम किसी भाँतिकी चिंता मत करो यह असुरदल जो तुम देखतेहो सो पलभरमें यहाँका यहाँ ऐसे बिलाय जायगा कि, जैसे पानीके बबूले पानीमें बिलाय जाते हैं; यों कह सबको समझाय बुझाय ढाढ़स बँधाय उनसे बिदाहो प्रभु जो आगे बढे तो देवताओंने दो रथ शस्त्रभर इनके लिये भेजदिये. वे आय इनके सोहीं खड़े हुए तब यह दोनों रथोंमें बैठ लिये;

निकसे दोउ भ्रात यदुराय। पहुँचे शीघ्र सु दलमें जाय॥

जहाँ जरासंध खड़ाथा तहाँ जा निकले देखतेही जरासंध श्रीकृष्णचन्द्रसे अति अभिमानकर कहने लगा अरे! तू मेरे सोहींसे भागजा. मैं तुझे क्या मारूं तू मेरे समानका नहीं जो मैं तुझपर शस्त्र चलाऊं, भला बलरामको मैं देखे लेताहूं श्रीकृष्णचंद्र बोले अरे मूर्ख अभिमानी! यह क्या बकता है जो शूरमा होतेहैं सो बड़ा बोल नहीं बोलते; सबसे दीनता करतेहैं. काम पड़े अपना बल दिखातेहैं. और जो अपने मुँह अपनी बड़ाई मारतेहैं सो क्या कुछ भले कहातेहैं. कहाहै कि गर्जताहै सो वर्षता नहीं इससे वृथा बकवाद क्यों करताहै.

इतनी बातके सुनते ही जरासंधने जो क्रोध किया तो श्रीकृष्ण बलदेव चल खड़े हुए. इनके पीछे वह भी अपनी सब सेना ले धाया. और उसने यों पुकारके कह सुनाया. अरे दुष्टो! मेरे आगेसे तुम कहाँ भाग जावोगे. बहुत दिन जीते बचे, तुमने अपने मनमें क्या समझा है अब जीते न रहने पावोगे. जहाँ सब असुरोंसमेत कंस गया है तहाँई सब यदुवंशियों समेत तुम्हें भी भेजूंगा. महाराज! ऐसे दुष्ट वचन उस असुरके मुखसे निकलते ही कितनी एक दूरजाय दोनों भाई फिर खड़े हुए. श्रीकृष्णजीने तो सब शस्त्र लिये और बलरामजीने हल मुशल, ज्यों असुरदल उनके निकट गया, त्यों दोनों वीर ललकारके ऐसे टूटे कि, जैसे हाथियोंके यूथपै सिंह

टूटे और लगा लोहाबाजने. उसकाल बाजा मारू जो बाजताथा, सो तो मेघसा गाजताथा. और चारों ओरसे राक्षसोंका दल जो घेर आयाथा सो दल बादलसा छायाथा. और शस्त्रोंकी झड़ी झड़ीसी लगीथी. उनके बीच श्रीकृष्ण बलराम युद्ध करते ऐसे शोभायमान लगतेथे जैसे सघन घनमें दामिनी सुहावनी लगती है. सब देवता अपने अपने विमानोंपर बैठ आकाशसे देख देख प्रभुका यश गातेथे, और इन्हींकी जीत मनातेथे; और उग्रसेन समेत सब यदुवंशी अति चिंताकर मनहींमन पछतातेथे. कि हमने यह क्या किया. जो श्रीकृष्ण बलरामको असुर दलमें जाने दिया. इतनी कथा सुनाय श्रीशुकदेवजी बोले कि, पृथ्वीनाथ! जब लड़ते लड़ते असुरोंकी बहुतसी सेना कटगई तब बलदेवजीने रथसे उतर जरासंधको बाँधलिया. इसमें श्रीकृष्णचंद्रजीने जा बलरामसे कहा कि, भाई! इसे जीता छोड़ दो मारो मत; क्योंकि यह जीता जायगा तो फिर असुरोंको साथ ले आवेगा, तिन्हे मार हम भूमिका भार उतारेंगे. और जो जीता न छोड़ोगे तो जो राक्षस भाग गये हैं सो हाथ न आवेंगे. ऐसे बलदेवजीको समझाय प्रभुने जरासंधको छुड़वाय दिया. वह अपने उन लोगोंमें गया जो रणसे भागके बचेथे.

चहुँदिशि चितै कहै पछताय। सिगरी सेना गई बिलाय॥
भयो दुःख अति कैसे जीजै। अबघरछाँडि तपस्या कीजै॥
मंत्री तबै कहै समझाय। तुमसे ज्ञानी क्यों पछिताय॥
कबहूं हार जीत पुनि होई। राज्य देश छाँडै नहिंकोई॥

क्या हुआ जो अबकी लड़ाईमें हारे फिर अपना दलजोड़ लावेंगे. और सब यदुवंशियों समेत श्रीकृष्ण बलदेवको स्वर्ग पठावेंगे तुम किसी बातकी चिंता मत करो. महाराज! ऐसे समझाय बुझाय जो असुर रणसे भागके बचेथे तिन्हें और जरासंधको मंत्रीने घरले पहुँचाया; और वह फिर वहाँ कटक जोड़ने लगा, यहाँ श्रीकृष्ण बलराम रणभूमिमें देखते क्या हैं. कि लहूकी नदी बह निकली है. तिसमें रथ विना रथी नावसे बहे जाते हैं, ठौर ठौर हाथी मरे पहाड़से पड़े दृष्टि आते हैं; उनके

वावोंसे रक्त झरनेकी भाँति झरता है. तहाँ महादेवजी भी भूत प्रेत संगलिये अति आनंदकर नाच २ गाय २ मुंडोंकी माला बनाय बनाय पहनते हैं भूतनी प्रेतनी योगिनियाँ खप्पर भर भर रक्त पीतीहैं. शृगाल गृध्र काग लोथोंपर बैठ बैठ मांस खाते हैं. और आपसमें लड़ते जाते हैं.

इतनी कथा कह श्रीशुकदेवजी बोले कि, महाराज! जितने रथ, हाथी घोड़े और राक्षस उसके खेतमें मरेथे.तिन्हें पवनने तो समेट इकट्ठा किया. और अग्निने पलभरमें सबको जलाय भस्म करदिया. पंचतत्त्वमें पंचतत्त्व मिलगये. उन्हें आते तो सबने देखा पर जाते किसीने न देखा कि, किधर गये.ऐसे असुरोंको मार भूमिका भार उतार श्रीकृष्ण बलराम भक्तहित-कारी उग्रसेनके पास आय दंडवत्कर हाथ जोड़ बोले कि, महाराज! आपके पुण्य प्रतापसे असुर दल मार भगाया. अब निर्भय राज्य कीजे और प्रजाको सुख दीजे. इतना वचन इनके मुखसे निकलते ही राजा उग्रसेनने अति आनंदमान बड़ी बधाई की और धर्मराज्य करने लगे. इसमें कितने एक दिन पीछे फिर जरासंध उतनीहीं सेना ले चढ़ आया, और श्रीकृष्ण बलदेवजीने पुनि त्योंहीं मार भगाया ऐसे तेईस२ अक्षौहिणी ले जरासंध सत्रह बेर चढ़ आया, और प्रभुने मार हटाया।

इतनी कथा कह श्रीशुकदेवमुनिने राजा परीक्षितसे कहा कि, महाराज! इसबीच नारदमुनिजीके जो कुछ जीमें आई तो ये एका एकी उठकर कालयवनके यहाँ गये इन्हें देखतेही वह सभा समेत उठ खड़ा हुआ. और उसनें दंडवत् कर हाथ जोड़ पूछा कि महाराज! आपका आना यहाँ कैसे भया?

सुनिकै नारद कहैं विचारि। मथुरामें बलभद्र मुरारि॥
तूबिन तिन्हैं हतै नहिं कोई। जरासंधसों कुछ नहिं होई॥
तू है अजर अमर अति बली। बालक वासुदेव औ हली॥

यों कह फिर नारदजी बोले कि, जिसे तू मेघवर्ण कमलनयन अतिसुंदर वदन पीतांबर पहरे पीतपट ओढ़े देखे तिसका तू पीछा बिन

मारे मत छोड़ियो. इतना कह नारदमुनि तो चले गये और कालयवन अपना दल जोड़ने लगा, इसमें कितने एक दिन बीच उसनें तीन करोड़ म्लेच्छ अति भयावने इकट्ठे किये. ऐसे कि जिनके मोटे भुज, लंबे गले, बड़े दाँत, मैले वेष, भूरे केश, नयन लाल घुंघचीसे तिन्हें साथले डंकादे मथुरापुरीपर चढ़आया और उसे चारों ओरसे घेर लिया, उसकाल श्रीकृष्णचन्द्रजीने उसका व्यवहार देख अपने जीमें विचारा कि, अब यहाँ रहना भला नहीं क्योंकि आज यह चढ़ आयाहै और कलको जरासंध भी चढ़ आवे तो प्रजा दुःख पावेंगे, इससे उत्तम यही है कि, यहाँ न रहिये सब समेत अंत जाय बसिये. महाराज! हरिने यों विचारकर विश्वकर्माको बुलाय समझाय बुझायके कहा कि, तुम अभी जाके समुद्रके बीच एक नगर बनावो. ऐसा कि जिसमें सब यदुवंशी सुखसे रहें पर वे यह भेद न जानें कि, ये हमारे घर नहीं और पलभरमें सबको वहाँ ले पहुँचावो. इतनी बातके सुनते ही विश्वकर्मा जा समुद्रके बीच शुद्धधरतीके ऊपर बारह योजनका नगर जैसा श्रीकृष्णने कहाथा तैसाही रातमें बनाया उसका नाम द्वारका रख आ हरिसे कहा, फिर प्रभुने उसे आज्ञा दी कि इसी समय तू सब यदुवंशियोंको वहाँ ऐसे पहुँचाय दे कि कोई यह भेद न जाने कि हम कहाँ आये, और कौन ले आया.

इतना वचन प्रभुके मुखसे ज्यों निकला त्यों रातो रातही उग्रसेन वसुदेव समेत विश्वकर्माने सब यदुवंशियोंको ले पहुँचाया. और श्रीकृष्ण बलरामजी भी वहाँ पधारे. इस बीच समुद्रकी लहरका शब्द सुन सब यदुवंशी चौंकपड़े. और अति अचरज कर आपसमें कहने लगे कि, मथुरामें समुद्र कहाँसे आया? यह भेद कुछ जाना नहीं जाता. इतनी कथा सुनाय श्रीशुकदेवजीने राजा परीक्षितसे कहा कि पृथ्वीनाथ! ऐसे सब यदुवंशियोंको द्वारकामें बसाय श्रीकृष्णचन्द्रजीने बलदेवजीसे कहा कि, भाई! अब चलके प्रजाकी रक्षा कीजे और कालयवनका वध कीजे इतना कह दोनों भाई वहाँसे चल ब्रजमंडलमें आये.

इति श्रीलल्लूलालकृते प्रेमसागरे जरासंधपराजयोनामैकपंचाशत्तमोऽध्यायः ५१॥

अध्याय ५२.

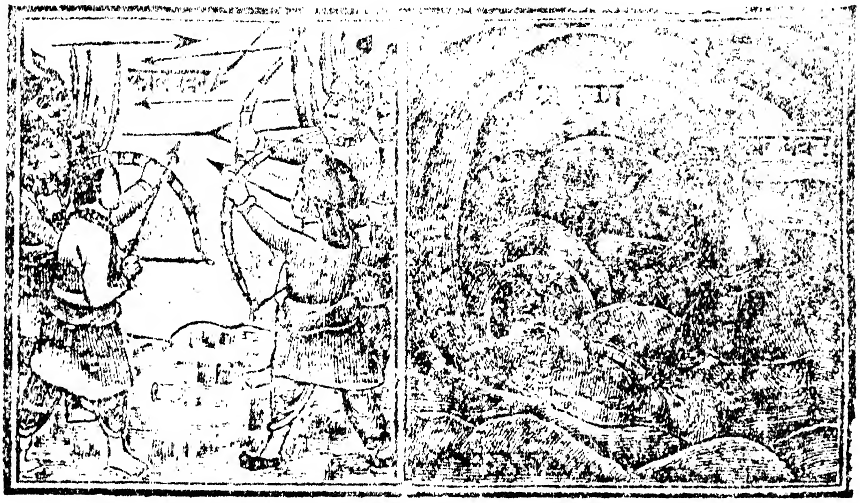

श्रीशुकदेवमुनि बोले कि, महाराज ! ब्रजमंडलमें आतेही श्रीकृष्ण-चन्द्रजीने बलरामजीको तो मथुरामें छोड़ा और आप रूपसागर जगतउजागर पीतांबर पहने पीतपट ओढे सब शृंगार किये कालयवनके दलमें जाय उसके सन्मुखहो निकले, वह इन्हें देखतेही अपने मनमें कहने लगा कि, हो न हो यही कृष्णहै नारदमुनिने जो चिह्न बतायेथे सो सब इसमें पाये जातेहैं इसीने कंसादिक असुर मारे जरासंधकी सेना हनी; ऐसे मनहीमन विचार कर कहा.

कालयवन यों कहै पुकारी । काहे भागेजात मुरारी ॥
आयपर्‍यो अब मोसों काम । ठाढे रहौ करौ संग्राम ॥
जरासंध हौं नाहीं कंस । यादवकुलको करौं विध्वंस ॥

हे राजन् ! यों कह कालयवन अति अभिमानकर अपनी सब सेनाको छोड़ अकेला श्रीकृष्णचंद्रके पीछे धाया. पर उस मूरखने प्रभुका भेद न पाया, आगे आगे तो हरि भागे जाते थे और एक हाथके अंतरसे पीछे २ वह दौड़ा जाताथा. निदान भागते भागते जब अनेक दूर निकल गये तब प्रभु एक पहाड़की गुफामें घुस गये वहाँ जा देखें तो

एक पुरुष सोया पड़ाहै, ये झट अपना पीतांबर उसे उढ़ाय आप अलग एक ओर छिपरहे पीछेसे कालयवन भी दौड़ता हाँफता उस अति अँधेरी कंदरामें जा पहुँचा और पीतांबर ओढे उस पुरुषको सोता देख इसने अपने जीमें जाना कि, यह श्रीकृष्णहीं छलकर सोरहाहै. महाराज ! ऐसे मनहीं मन विचार क्रोधकर उस सोतेहुए को एक लात मार कालयवन बोला, अरे कपटी! क्या मिसकर साधुकी भाँति निश्चिंताईसे सोरहा है उठ मैं तुझे अभी मारताहूं; यों कह इसने उसके ऊपरसे पीतांबर झटक लिया. तब वह नींदसे चौंक पड़ा और जो उसने इसकी ओर क्रोधकर देखा तो यह जल बल भस्म होगया. इतनी बातके सुनतेही राजा परीक्षितने कहा

यह शुकदेव कहौ समुझाय । को वह रह्यो कंदरा जाय ॥
ताकी दृष्टि भस्म क्यों भयो । कौने वाहि महा वर दयो ॥

श्रीशुकदेवमुनि बोले पृथ्वीनाथ ! इक्ष्वाकुवंशी क्षत्रिय मांधाताका बेटा मुचकुंद अतिबली महाप्रतापी जिसका अरिदल दलन यश छाय रहा नौखण्ड, एक समय सब देवता असुरोंके सताये निपट घबराये मुचकुंदके पास आये, और अति दीनता कर उन्होंने कहा महाराज ! असुर बहुत बढे अब तिनके हाथसे बच नहीं सकते अब हमारी रक्षा करो; यह रीति परंपरासे चली आई है. जब जब सुर, मुनि, ऋषि; अबल हुएहैं, तब तब उनकी सहायता क्षत्रियोंने करी है. इतनी बातके सुनतेही मुचकुंद इनके साथ होलिया. और जाके असुरोंसे युद्ध करने लगा इसमें लड़ते लड़ते कितनेहीं युग बीत गये तब देवतावोंने मुचकुंदसे कहा कि महाराज ! आपने हमारे लिये बहुत श्रम किया अब कहीं बैठ विश्राम लीजिये और देहको सुख दीजिये.

बहुत दिनन कीन्हों संग्राम । गयो कुटुंबसहित धनधाम ॥
रह्यो न कोऊ तहाँ तिहारो । तातें अब जनि घरपगुधारो ॥

और जहाँ तुम्हारा मन माने तहाँ जावो. यह सुन मुचकुंदने देवतावोंसे कहा कृपानाथ ! मुझे कृपाकर ऐसी एकांत ठौर बतावो कि, जहाँ जाय मैं निश्चिंताईसे सोऊं और कोई न जगावे. इतनी बातके सुनते ही

प्रसन्नहो देवतावोंने मुचकुंदसे कहा कि, महाराज! आप धौलागिरि पर्वतकी कंदरामें जाय शयन कीजिये, वहाँ तुम्हें कोई न जगावेगा. और जो कोई जाने अनजाने वहाँ जा तुम्हें जगावेगा, तो वह देखतेही तुम्हारीदृष्टिसे जल बल राख होजावेगा. इतनी कथा सुनाय श्रीशुकदेवजीने राजासे कहा कि, महाराज! ऐसे देवतावोंसे वर पाय मुचकुंद उस गुफामें रहाथा. इससे उसकी दृष्टि पड़तेही कालयवन जलकर छार होगया, आगे करुणानिधान कान्ह भक्त हितकारीने मेघवर्ण, चंद्रमुख, कमलनयन, चतुर्भुज, शंख, चक्र, गदा, पद्म लिये मोर मुकुट मकराकृत कुंडल वनमाल और पीतांबर पहरे मुचकुंदको दर्शन दिया स्वरूप देखतेही वह अष्टांग प्रणाम कर खड़ाहो हाथजोड़ बोला कि, कृपानाथ! जैसे आपने इस महा अँधेरी कंदरामें आय उजालाकर तम दूर किया तैसे दया कर अपना भेद बताय मेरे मनका भी भ्रम दूर कीजै. श्रीकृष्णचन्द्र बोले कि, मेरे तो जन्म कर्म और गुणहैं घने, वे किसी भाँति गने न जायँ कोई कितनाही गने; पर मैं इस जन्मका भेद कहताहूं सो सुनो कि; अबके वसुदेवके यहाँ जन्म लिया इससे वासुदेव मेरा नाम हुआ. और मथुरापुरीमें सब असुरों समेत कंसको मैंनेहीं मार भूमिका भार उतारा और सत्रहबेर तेईस २ अक्षौहिणी सेनाले जरासंध युद्ध करनेको चढ़ आया, सोभी मुझसे हारा और यह कालयवन तीन करोड़ म्लेच्छकी भीड़भाड़ ले लड़नेको अयाथा. सो तुम्हारी दृष्टिसे जलमरा, इतनी बात प्रभुके मुखसे निकलतेही सुनकर मुचकुंदको ज्ञान हुआ. तो बोला कि, महाराज! आपकी माया अति प्रबलहै उसने सारे संसारको मोहाहै. इसीसे किसीकी कुछ सुधि बुधि ठिकाने नहीं रहती.

करत कर्म सब सुखके हेत। ताते भारी दुख सहिलेत॥

दो०—चुभे हाड ज्यों श्वानमुख, रुधिर चिचोरै आप।
जानत ताही ते चुवत, सुखमानै संताप॥

और महाराज! जो इस संसारमें आयाहै सो गृहरूपी अंधकूपसे बिन आपकी कृपा निकल नहीं सकता. इससे मुझे भी चिंता

है कि मैं कैसे गृहरूप कूपसे निकलूंगा. श्रीकृष्णजी बोले सुन मुचकुंद! बात तो ऐसीही है जैसे तूने कही, पर मैं तेरे तरनेका उपाय बताये देताहूं सो तू कर, तैंने राज्य पाय भूमि धन स्त्रीके लिये अधिक अधर्म किये हैं सो बिन तपकिये न छूटेंगे. इससे उत्तर दिशामें जाय तू तपस्याकर यह अपनी देह छोड़ फिर ऋषिके घर जन्मलेगा, तब तू मुक्ति पदार्थ पावेगा. महाराज! इतनी बात जो मुचकुंदने सुनी तो जाना कि अब कलियुग आया. यह समझ प्रभुसे विदाहो दंडवत्कर परिक्रमा दे मुचकुंद तो बदरीनाथको गया; और श्रीकृष्णचंद्रजीने मथुरामें आय बलरामजीसे कहा कि-

कालयवनको कियों निकंद। बदरीवन पठयों मुचकुन्द॥
कालयवनकी सेना घनी। तिन घेरी मथुरा आपनी॥
आवहु तहाँ म्लेच्छन मारौं। सकल भूमिको भार उतारौं॥

ऐसे कह हलधरको साथ ले श्रीकृष्णचंद्र मथुरापुरीसे निकल वहाँ आये जहाँ कालयवनका दल खड़ाथा और आतेही दोनों उनसे युद्ध करने लगे, निदान लड़ते लड़ते जब म्लेच्छकी सेना प्रभुने सब मारी, तब बलदेवजीसे कहा कि भाई! अब मथुरापुरीकी सब संपत्तिले द्वारकाको भेज दीजे. बलरामजी बोले बहुत अच्छा. तब श्रीकृष्णचंद्रने मथुराका सब धन निकलवा भैंसों छकड़ों ऊटों हाथियोंपर लदवाय द्वारकाको भेजदिया. इसबीच फिर जरासंध तेईस अक्षौहिणी सेना ले मथुरापुरी पर चढ़ आया तब श्रीकृष्ण बलराम अतिघबरायके निकले. और उसके सन्मुख आ दिखाई दे उसके मनका संताप मिटानेको भाग चले. तब मंत्रीने जरासंधसे कहा कि, महाराज! आपके प्रतापके आगे ऐसा कौन बली है जो ठहरे, देखो वे दोनों भाई कृष्ण बलराम; छोड़के सब धन धाम; अपना प्राण लेके तुम्हारे त्रासके मारे नंगे पाँवों भागे चलेजातेहैं. इतनी बात मंत्रीसे सुन जरासंध भी यों पुकारकर कहता हुआ सेना ले उनके पीछे दौड़ा.

काहे डरके भागे जात। ठाढे रहौ करौ कुछ बात॥

परत उठत कंपत क्यों भारी। आईहै ढिग मीच तुम्हारी ॥

इतनी कथा कह श्रीशुकदेवमुनि बोले कि, पृथ्वीनाथ ! जब श्रीकृष्ण और बलदेवजीने भागके लोकरीति दिखाई, तबजरासंधके मनमें पिछला सब शोक गया. और अति प्रसन्न हुआ ऐसा कि जिसका कुछ वर्णन नहीं किया जाता. आगे श्रीकृष्ण बलराम भागते २ एक गोमंतनाम पर्वत ग्यारह योजन ऊँचा था तिसपर चढगये. और उसकी चोटीपर जाय खड़े भये.

देख जरासँध कहे पुकारी। शिखर चढे बलभद्र मुरारी ॥
अब किमि हमसों जायँ पलाय। या पर्वतको देहु जलाय ॥

इतना वचन जरासंधके मुखसे निकलतेही सब असुरोंने उस पहाड़को जा घेरा. नगर नगर गाँव गाँवसे काठ कबाड़ लाय उसके चारों ओर चुनदिया. तिसपर गडगूदड़ घी तेलमें भिगो २ डालकर आगलगादी. जब वह आग पर्वतकी चोटीतक लगी; तब उन दोनों भाइयोंने वहाँसे इस भाँति द्वारकाकी बाट ली कि किसीने उन्हें जाते भी न देखा और पहाड़ जलकर भस्म होगया. उसकाल जरासंध श्रीकृष्ण बलरामको उस पर्वतके संग जला मरा जान अति सुखमान सब दल साथ ले मथुरापुरीमें आया. और वहाँका राज्य ले नगरमें ढँढोरा दे उसने अपना थाना बैठाया। जितने उग्रसेन वसुदेवके पुराने मंदिरथे सो सब ढहवाये और उसने आप अपने नये बनवाये इतनी कथा सुनाय श्रीशुकदेवजीने राजासे कहा कि महाराज ! इसरीतिसे जरासंधको धोकादे श्रीकृष्ण बलरामजी तो द्वारकामें जाय बसे; और जरासंध भी मथुरा नगरीसे चल सब सेना ले अति आनंदकरता निःशंक हो अपने घर आया.

इति श्रीलल्लूलालकृते प्रेमसागरे कालयवनमरण-मुचुकुंदतरण-श्रीकृष्ण-बलरामद्वारकागमनो नाम द्विपंचाशत्तमोऽध्यायः ॥ ५२ ॥

अध्याय ५२.

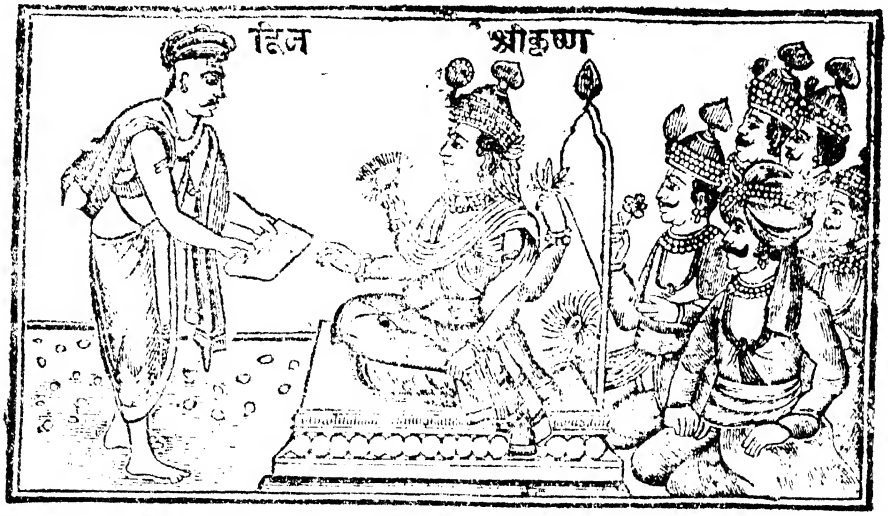

श्रीशुकदेवमुनि बोले कि, महाराज ! अब आगे कथा सुनिये कि, जब कालयवनको मार मुचकुंदको तार जरासंधको धोखादे बलदेवजीको साथ ले श्रीकृष्णचंद्र आनंदकंद ज्यों द्वारकामें गये त्यों सब यदुवंशियोंके जीमें जी आया. और सारे नगरमें सुख छाया. सब चैन आनंदसे पुरवासी रहने-लगे. इसमें कितने एक दिन पीछे एक दिन कई एक यदुवंशियोंने राजा उग्रसेनसे जा कहा कि, महाराज ! अब कहीं बलरामजीका विवाह किया चाहिये. क्योंकि ये समर्थ हुए. इतनी बातके सुनतेही उग्रसेनने एक ब्राह्मणको बुलाय अति समझाय बुझायके कहा कि, देवता ! तुम कहीं जा-कर अच्छा कुल घर देख बलरामजीकी सगाई कर आवो, इतना कह रोरी अक्षत रुपया नारियल मँगवाय उग्रसेनजीने उस ब्राह्मणको तिलककर रुपया नारियल दे विदा किया. वह चला चला आनर्तदेशमें राजा रैवतके यहाँ गया और उसकी कन्या रेवतीसे बलरामजीकी सगाईकर लग्न ठहराय उसके ब्राह्मणके साथ टीका लिवाय द्वारकामें राजाउग्रसेनके पास ले आया और उसने वहाँका सब ब्योरा कह सुनाया. सुनते ही राजाउग्रसेनने अति प्रसन्नहो उस ब्राह्मणको बुलाय जो टीका ले आयाथा मंगलाचार कर-वाय टीका लिया. और बहुत सा धनदे उसे बिदाकिया. पीछे आप सब

यदुवंशियोंको साथ ले बड़ी धूम धामसे आनर्तदेशमें जाय बलरामजीका व्याह करलाये.

इतनी कथा कह श्रीशुकदेवमुनिने राजासे कहा कि, पृथ्वीनाथ ! इसरीतिसे तो सब यदुवंशी बलदेवजीको व्याह करलाये और श्रीकृष्णचन्द्रजी आपही भाईको साथ ले कुंडिनपुरमें जाय भीष्मकनरेशकी बेटी रुक्मिणी शिशुपालकी माँगको राक्षसोंसे युद्धकर छीनलाये. घरमें लाय व्याह किया. यह सुन राजा परीक्षितने श्रीशुकदेवजीसे पूँछा कि, कृपासिंधु ! भीष्मकसुता रुक्मिणीको श्रीकृष्णचंद्र कुंडिनपुरमें जाय असुरोंको मार किस रीतिसे लाये. सो तुम मुझे समझाकर कहो. श्रीशुकदेवजी बोले, कि, महाराज ! आप मन लगाय सुनिये. मैं सब भेद वहाँका समझाकर कहताहूं कि, विदर्भदेशमें कुंडिनपुरनाम एक नगर तहाँ भीष्मकनाम नरेश, जिसका यश छाय रहा चहुँ देश; उनके यहाँ जाय श्रीसीताजीने अवतार लिया, कन्याके होतेही राजा भीष्मकने ज्योतिषियोंको बुलाय भेजा, उन्होंने आय लग्नसाध उस लड़कीका नाम रुक्मिणी धरकर कहा कि महाराज ! हमारे विचारमें ऐसा आताहै कि, यह कन्या अति सुशीलस्वभाव रूपनिधान गुणोंमें लक्ष्मी समान होगी और आदिपुरुषसे व्याही जायगी, इतना वचन ज्योतिषियोंके मुखसे निकलतेही राजाभीष्मकने अति सुख मान बड़ा आनंद किया और बहुत सा कुछ ब्राह्मणोंको दिया. आगे वह लड़की चंद्रकलाकी भाँति दिन २ बढ़ने लगी, और बाललीलाकर माता पिताको सुख देने;इसमें कुछबड़ी हुई तो लगी सखीसहेलियोंकेसाथअनेक अनेक प्रकारके अनूठे अनूठे खेल खेलने, एक दिन वह मृगनयनी चंपक वरणी चंद्रमुखी सखियोंके संग आँखमिचौली खेलनेगई तो खेलते समय सब सखियाँ उससे कहनेलगीं कि, रुक्मिणी तू हमारा खेल बिगाड़नेको आई है, क्योंकि जहाँ तू हमारे साथ अँधेरेमें छिपती है, तहाँ तेरे मुखचंद्रकी ज्योतिसे चाँदना होजाता है, इससे हम छिप नहीं सकतीं. यह सुन वह हँसकर चुप होरही. इतनी कथा कह श्रीशुकदेवजीने कहा कि महाराज ! इसीभाँति वह सखियोंके संग खेलतीथी. और दिन दिन छवि उसकी दूनी होती थी. इसबीच एक दिन नारदजी कुंडिनपुरमें आये, और रुक्मि-

णीको देख श्रीकृष्णचंद्रके पास द्वारकामें जाय उन्होंने कहा कि, महाराज ! कुंडिनपुरमें राजा भीष्मकके घर एक कन्या रूप गुण शीलकी खान लक्ष्मीजीके समान जन्मीहै सो तुम्हारे योग्य है, यह भेद जब नारदमुनिसे सुन पाया, तभीसे रात दिन हरिने अपना मन उसपर लगाया, महाराज ! इसरीति करके तो श्रीकृष्णचंद्रजीने रुक्मिणीका नाम गुण सुना; और जैसे रुक्मिणीने प्रभुका नाम और यश सुना तो कहताहूं कि एक समय देश देशके कितने एक याचकोंने जाय कुंडिनपुरमें श्रीकृष्णचंद्रका यश गाया जैसे प्रभुने मथुरामें जन्मलिया और गोकुल वृंदावनमें जाय ग्वालबालोंके संगमिल बालचरित्र किया; और असुरोंको मार भूमिका भार उतार यदुवंशियोंको सुखदिया था तैसे ही गाय सुनाया.

हरिके चरित्र सुनते ही सब नगरनिवासी अति आश्चर्य कर आपसमें कहने लगे कि, जिनकी लीला हमने कानसे सुनी, तिन्हें कब नयनोंसे देखेंगे. इसबीच याचक किसी ढबसे राजा भीष्मककी सभामें जाय प्रभुका चरित्र और गुण गाने लगे उसकाल–

चढी अटा रुक्मिणि सुन्दरी । हरिचरित्रध्वनि श्रवणनपरी ॥
अचरज करै भूलि मन रहै । फेर उझककर देखन चहै ॥
सुनिकै कुवँरि रही मनलाय । प्रेमलता उर उपजी आय ॥
भई मग्न विह्वल सुन्दरी । वाकी सुधि बुधि हरि गुण हरी ॥

यों कह श्रीशुकदेवजी बोले कि; पृथ्वीनाथ ! इस भाँति श्रीरुक्मिणीजीने प्रभुका यश और नाम सुना तो उसी दिनसे रात दिन आठ प्रहर चौसठ घड़ी सोते जागते बैठते खड़े चलते फिरते खाते पीते खेलते उन्हींका ध्यान किये रहै; और गुण गाया करै. नित भोरही उठ स्नानकर मट्टीकी गौरी बनाय रोरी अक्षत पुष्प चढाय धूप दीप कर मनाय हाथजोड शिरनवाय उसके आगे कहा करै.

मोपर गौरि कृपा तुम करो । यदुपति पति दे मम दुख हरो ॥

इसी रीतिसे सदा रुक्मिणी रहने लगी; एकदिन सखियोंके संग खेलतीथी कि; राजा भीष्मक उसे देख अपने मनमें चिंताकर कहने लगा कि,

अब यह हुई ब्याहन योग; इसे शीघ्रही न दीजे तो हँसेंगे लोग. कहाहै कि; जिसके घरमें कन्या बड़ी होय तिसका दान पुण्य जप तप करना वृथाहै क्योंकि किसीसे तबतक कुछ धर्म नहीं होता, जबतक कन्याके ऋणसे नहीं उबार होय, यों विचार राजा भीष्मक अपनी सभामें आये सब मंत्री और कुटुंबके लोगोंको बुलाय बोले, भाइयो ! कन्या ब्याहनेयोग्य हुई, इसके लिये कुलवान् गुणवान् रूपनिधान् शीलवान कहीं वर ढूँढा चाहिये. इतनी बातके सुनते ही उन लोगोंने अनेक २ देशोंके नगरोंके कुल गुण रूप और पराक्रम कह सुनाये पर राजा भीष्मकके चित्तमें किसीकी बात कुछ न आई; तब उनका बड़ा बेटा जिसका नाम रुक्म सो कहने लगा, कि पिता ! नगर चँदेरीका राजा शिशुपाल अति बलवान् है. और सब भाँतिसे हमारे समान, इससे रुक्मिणीकी सगाई वहाँ कीजे, और जगतमें यश लीजे; महाराज ! जब उनकी भी बात राजाने सुनी अनसुनी की तब रुक्मकेश नाम उनका छोटा लड़का बोला.

रुक्मिणि पिता कृष्णको दीजै। वासुदेवसों नाता कीजै ॥
यह सुन भीष्मक हरषे गात । कही पूत तैं नीकी बात ॥
दो०-छोटे बडनि पूछिकै, कीजे मन परतीति ।
सार वचन गहि लीजिये, यही जगतकी रीति ॥

ऐसे कह फिर राजा भीष्मक बोले कि, यह तो रुक्मकेशने भली बात कही, यदुवंशियोंमें राजा शूरसेन बड़े यशी और प्रतापी हुए तिनहींके पुत्र वसुदेवजी हैं. सो कैसे हैं कि जिनके घरमें आदिपुरुष अविनाशी सकल देवनके देव श्रीकृष्णचंद्रने जन्मले महाबली कंसादिक राक्षसोंको मार और भूमिका भार उतार यदुकुलको उजागर किया और सब यदुवंशियों समेत प्रजाको सुख दिया ऐसे जो द्वारकानाथ श्रीकृष्णचन्द्र उन्हें रुक्मिणी दें तो जगतमें यश और बड़ाई लें. इतनी बातके सुनते ही सब सभाके लोग अति प्रसन्नहो बोले कि, महाराज ! यह तो तुमने भली विचारी, ऐसा वर घर कहीं और नहीं मिलेगा. इससे उत्तम यही है, कि श्रीकृष्णचंद्रजीको रुक्मिणी ब्याह दीजै, महाराज ! जब सब

सभाके लोगोंने यों कहा, तब राजा भीष्मकका बड़ा बेटा जिसका नाम रुक्म सो सुन निपट झुँझलायके बोला.

समझ न बोलत महागवाँर । जानत नहीं कृष्णब्योहार ॥
सोरहवर्ष नंदके रह्यो । तब अहीर सब काहू कह्यो ॥
कामरि ओढ़ी गायचराई । बनमें बैठि छाक जिन खाई ॥

वह तो गवाँर ग्वालहै उसकी जात पाँतका क्या ठिकाना और जिसके मा बापहीका भेद नहीं जाना जाता. उसे हम पुत्र किसका कहें. कोई नन्दगोपका जानताहै कोई वसुदेवका कर मानता है. पर आजतक यह भेद किसीने न पाया कि कृष्ण किसका बेटा है; इसीसे जो जिसके मनमें आता है सो गाताहै. हम राजा हमें सब कोई जानता मानताहै और यदुवंशी राजा कब भये क्या हुआ जो थोड़े दिनोंसे बलकर इन्होंने बड़ाई पाई, पहला कलंक तो अब न छूटेगा कि, वह उग्रसेनका चाकर कहाताहै. उससे सगाई कर क्या हम कुछ संसारमें यश पावेंगे. कहाहै ब्याह, वैर, प्रीति समानसे करिये तो शोभा पाइये. और जो कृष्णको देंगे तो लोग कहेंगे ग्वालका सारा, तिससे सब जायगा नाम और यश हमारा. महाराज यों कह फिर रुक्म बोला कि; नगरचँदेरीका राजा शिशुपाल बड़ा बली और प्रतापी है उसके डरसे सब राजा थर थर काँपते हैं. और परंपरासे उसके घरमें राजगद्दी चली आती है. इससे अब उत्तम यही है,कि रुक्मिणी उसीको दीजे. और मेरे आगे फेर कृष्णका नामभी न लीजे. इतनी बातके सुनतेही सब सभाके लोग मारे डरके मनहीं मन अछता पछताके चुपहीरहे. और राजा भीष्मक भी कुछ न बोला. इसमें रुक्मने ज्योतिषीको बुलाय शुभ दिन लग्न ठहराय एक ब्राह्मणके हाथ राजा शिशुपालके यहाँ टीका भेजदिया. वह ब्राह्मण टीका लिये चला चला नगर चँदेरीमें जाय राजा शिशुपालकी सभामें पहुँचा. देखतेही राजाने प्रणाम कर जब ब्राह्मणसे पूंछा कि,कहो देवता! आपका आना कहाँसे हुआ. और यहाँ किस मनोरथके लिये आये, तब तो उस विप्रने आशीश दे अपने आनेका सब ब्योरा कहा. सुनतेही राजा शिशुपालने

अपने पुरोहितको बुलाय टीका लिया; और उस ब्राह्मणको बहुतसा कुछ दे बिदाकिया, पीछे जगसंध आदि सब देशदेशके नरेशोंको नौत बुलाया, वे अपना दल लेले आये. तब यह भी अपना सब कटक ले व्याहन चला उस ब्राह्मणने आ राजाभीष्मकसे कहा जो टीका लेगयाथा कि, महाराज ! में राजाशिशुपालको टीका देआया. वह बड़ी धूमधामसे बरात ले व्याहनेको आताहै आप अपना कार्य कीजे यह सुन राजाभीष्मक पहले तो निपट उदास हुए पीछे कुछ सोच समझ मंदिरमें जाय उन्होंने पटरानीसे कहा, वह सुनकर लगी मंगलामुखी और कुटुंबकी नारियोंको बुलाय मंगलाचार करवाय व्याहकी सबरीति भाँति करने, फिर राजाने बाहर आ प्रधान और मंत्रियोंको आज्ञादी कि,कन्याके विवाहमें हमें जो जो वस्तु चाहिये सो सो सब इकट्ठी करो. राजाकी आज्ञा पातेही मंत्री और प्रधानने सब वस्तु बातकी बातमें बनवाय मँगवाय लाय धरी; लोगोंने देखा सुना तो यह चर्चा नगरमें फैली कि, रुक्मिणीका विवाह श्रीकृष्णचंद्रसे होताथा सो दुष्ट रुक्मने होने न दिया. अब शिशुपालसे होगा.

इतनी कथा सुनाय श्रीशुकदेवजीने राजा परीक्षितसे कहा, कि पृथ्वीनाथ ! नगरमें तो यह घर घर बात हो रहीथी. और राजमंदिरमें नारियाँ गाय बजायके रीति भाँति करतीथीं. ब्राह्मण वेद पढ़ पढ़ टहलें करवातेथे, ठौर ठौर दुंदुभी बाजतेथे द्वार द्वार सपल्लव केलके खंभ गाड़ गाड़ सोनेके कलश भर भर लोग धरतेथे; और तोरण बंदनवार बाँधतेथे; और नगर निवासी न्यारेही हाट बाट चौहटे झाड़ बुहार पटसे पाटतेथे. इस भाँति घर और बाहरसे धूम मच रही थी. कि उसीसमय दोचार सखियोंने जा रुक्मिणीसे कहा कि-

तोहिं रुक्म शिशुपालहिं दई । अब तू रुक्मिणिरानीभई ॥
बोली सोच नाय कर शीश । मन वच मेरे प्रण जगदीश ॥

इतना कह रुक्मिणीने अति चिंता कर एक ब्राह्मणको बुलाय हाथ जोड़ उसको बहुतसी विनती और बड़ाई कर अपना मनोरथ उसे सब

सुनायके कहा कि, महाराज ! मेरा सँदेशा द्वारकामें लेजावो; और द्वारकानाथको सुनाय उन्हें साथ कर लेआवो तो मैं बड़ा गुण मानूंगी; और यह जानूंगी कि, तुमनेही दयाकर मुझे श्रीकृष्ण वर दिया. इतनी बातके सुनतेही वह ब्राह्मण बोला अच्छा तुम सँदेशा कहो मैं ले जाऊँगो. और श्रीकृष्णचंद्रजीको सुनाऊँगा. वे कृपानाथ हैं जो कृपाकर मेरे संग आवेंगे तो ले आऊँगा. इतना वचन जो ब्राह्मणके मुखसे निकला त्यों रुक्मिणीजीने एक पाती प्रेमरंगराती लिख उसके हाथ दी; और कहा कि, श्रीकृष्णचंद्र आनन्दकन्दको पाती दे मेरी ओरसे कहियो कि, उस दासीने कर जोड़ अति विनती कर कहा है, कि आप अंतर्यामीहैं घट घटकी जानतेही हैं अधिक क्या कहूंगी मैंने तुम्हारी शरण लीहै अब मेरी लाज तुम्हेंहै जिसमें रहे सो कीजे और इस दासीको आय बेग दर्शन दीजे; महाराज ! ऐसे कह सुन जब रुक्मिणीजीने उस ब्राह्मणको बिदाकिया, तब वह प्रभुका ध्यान कर नाम लेता द्वारकाको चला; और हरिइच्छासे बातके कहते जा पहुँचा वहाँ जाय देखे तो समुद्रके बीच वह पुरी है जिसके चहुँ ओर बड़े बड़े पर्वत और वन उपवन शोभा दे रहे हैं. तिनमें भाँति भाँतिके पशु पक्षी बोल रहे हैं और निर्मल जलभरे सुथरे सरोवर उनमें कमल डहडहाय रहे तिनपर भौंरोंके झुंडके झुंड गूंज रहे तीरपे हंस सारस आदि पक्षी कलोलें कररहे कोसोंतक अनेक प्रकारके फूल फलोंकी बाड़ियाँ चली गई हैं तिनकी बाडोंपर पनवाडियाँ लहलहारहीहैं. बावड़ी इंदारोंपै खड़े मीठे सुरोंसे गाय गाय माली रहँट परोहे चलाय चलाय ऊँचे नीचे नीर सींच रहेहैं; और पनघटोंपर पनहारियोंके ठट्टके ठट्ट लगे हुएहैं यह छवि निरख हरष वह ब्राह्मण जो आगे बढ़ा तो देखता क्याहै कि, नगरके चारों ओर अति ऊँचा कोट उसमें चार फाटक तिनमें कंचन खचित जड़ाऊ किवाँड़ लगेहुएहैं, और पुरीके भीतर चाँदी सोनेके मणिमय पँचखने सतखने मंदिर ऐसे ऊँचे कि आकाशसे बातें करें जगमगाय रहेहैं. तिनके कलशकलशियाँ बिजलीसी चमकती हैं. वर्ण वर्णकी ध्वजा पताका फहराय रही हैं; खिड़की झरोखों मोरियों जालियोंसे सुगंधकी लपटें आय रहीहैं. द्वार द्वार सपल्लव केलेके खंभ और कंचन

कलश भरेधरेहैं, तोरण बंदनवार बँधे हुये हैं और घर घर आनंदके बाजन बाज रहेहैं. ठौर २ कथा पुराण और हरिचर्चा होरही है, अठारह वर्ण सुख चैनसे वास करते हैं. सुदर्शनचक्र पुरीकी रक्षा करता है.

इतनी कथा सुनाय श्रीशुकदेवमुनि बोले कि; राजा ! ऐसी जो सुंदर सुहावनी द्वारकापुरी तिसे देखता देखता यह ब्राह्मण राजा उग्रसेनकी सभामें जा खड़ा हुआ; और आशीश देकर वहाँ इनको पूंछा, कि श्रीकृष्णचंद्रजी कहाँ विराजते हैं ? तब किसीने इसे हरिका मंदिर बता दिया. यह जो द्वारपर जाय खड़ा हुआ तो द्वारपालोंने इसे देख दंडवत् कर पूंछा.

कहिये आप कहाँते आये। कौनदेशकी पाती लाये ॥

यह बोला ब्राह्मण हूं, और कुंडिनपुरका रहनेवाला राजा भीष्मककी कन्या रुक्मिणीजीकी चिट्ठी श्रीकृष्णचंद्रको देने आयाहूं इतनी बातके सुनतेही पौरियोंने कहा महाराज ! आप मंदिरमें पधारिये श्रीकृष्णचंद्र सोहीं सिंहासनपर विराजते हैं, यह वचन सुन ब्राह्मण जो भीतर गया, तो हरिने देखतेही सिंहासनसे उतर दंडवत्कर अति आदर मान किया. और सिंहासनपर बिठाय चरण धोय चरणामृत लिया. और ऐसे सेवा करनेलगे जैसे कोई अपने इष्टकी सेवा करे. निदान प्रभुने सुगंध उबटन लगाय नहवाय धुलाय पहले तो उसे षट्रस भोजन करवाय बीड़ादे केशर चंदनसे चरच फूलोंकी माला पहिराय मणिमय मंदिरमें लेजाय एक सुथरे जड़ाऊ छपरखटमें लिटाया, महाराज ! वह भी बाटका हारा थकातो थाही लेटतेही सुखपाय सोगया श्रीकृष्णजी कितनी एक बेर तक तो उसकी बातें सुननेकी अभिलाषा किये वहाँ बैठ मनहीं मन कहतेरहे कि अब उठै अब उठै निदान जब देखा कि, न उठा, तब आतुर हो उसके पैंताने बैठ लगे पाँव दाबने. इसमें उसकी नींद टूटी तो वह उठ बैठा तब हरिने उसकी क्षेम कुशल पूंछ; पूंछा.

नीके राजदेश तुमतनो। हमसों भेद कहौ आपनो ॥

कौनकाज यहँ आवन भयो। दरशदिखाय हमैं सुखदयो॥

ब्राह्मण बोला कि कृपानिधान! आप मनदे सुनिये मैं अपने आनेका कारण कहताहूं, कि महाराज! कुंडिनपुरके राजा भीष्मककी कन्याने जबसे आपका नाम और गुण सुनाहै तभीसे वह निशिदिन तुम्हाराही ध्यान किये रहतीहै; और कोमल चरणोंकी सेवा किया चाहतीथी, संयोग भी आय बनाथा पर बात बिगड़गई प्रभु बोले सो क्या? ब्राह्मणने कहा दीनदयालु! एक दिन राजा भीष्मकने अपने सब कुटुंब और सभाके लोगोंको बुलायके कहा कि भाइयो! कन्या व्याहनेयोग्य हुई; अब इसके लिये वर ठहराया चाहिये. इतना वचन राजाके मुखसे निकलतेही उन्होंने अनेक राजाओंका कुल गुण नाम और पराक्रम कह सुनाया. पर इनके मनमें एक भी न आया. तब रुक्मकेशने आपका नाम सुनाया तो प्रसन्न हो राजाने उसका कहना मान लिया. और सबसे कहा कि भाइयो! मेरे मनमें तो इसकी बात पत्थरकी लकीर हो चुकी. तुम क्या कहते हो? वे बोले महाराज! ऐसा वर घर जो त्रिलोकमें ढूँढियेगा तोभी न पाइयेगा. इससे अब उचित यहीहै कि, बिलंब न कीजे, शीघ्र श्रीकृष्णचंद्र जीसे रुक्मिणीका विवाह करदीजे; महाराज! यही बात ठहर चुकीथी. इसमें रुक्मने भाँजीमार रुक्मिणीकी सगाई शिशुपालसे की. अब वह सब असुरदल साथले व्याहनको चढ़ाहै.

इतनी कथा सुनाय श्रीशुकदेवजी बोले पृथ्वीनाथ? ऐसे उस ब्राह्मणने समाचार कह रुक्मिणीजीकी चिट्ठी हरिके हाथ दी, प्रभुने अतिहितसे पाती ले छातीमें लगायली; और पढ़कर प्रसन्न हो ब्राह्मणसे कहा देवता तुम किसी बातकी चिंता मत करो, मैं तुम्हारे साथ चल असुरोंको मार उनका मनोरथ पूरा करूंगा. यह सुन ब्राह्मणको तो धीरज हुआ, पर हरि रुक्मिणीका ध्यानकर चिंता करने लगे.

इति श्रीलल्लूलालकृते प्रेमसागरे श्रीरुक्मिणीसंदेशो नाम त्रिपंचाशत्तमोऽध्यायः॥ ५३॥

अध्याय ५४.

अथ रुक्मिणीहरणलीला।

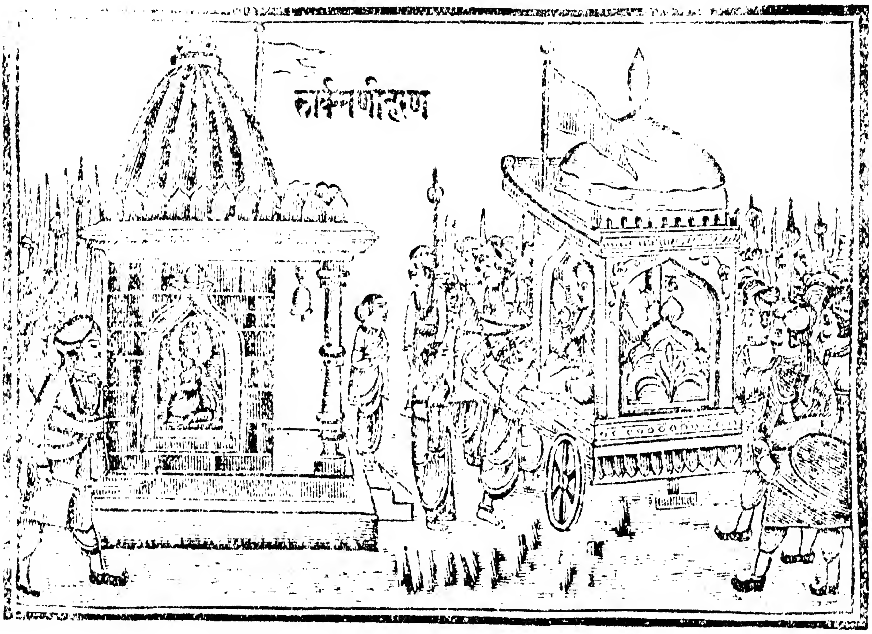

श्रीशुकदेवजी बोले कि, हे राजा ! श्रीकृष्णचंद्रने ऐसे उस ब्राह्मणको ढाँढ़स बँधाय फिर कहा.

दो०-जैसे विसके काठते, काढहि ज्वाला जारि।
ऐसे सुंदरि ल्याइहौं, दुष्ट असुर दल मारि॥

इतना कह फिर सुथरे वस्त्र आभूषण मनमानते पहन राजा उग्रसेनके पास जाय हाथ जोड़कर कहा महाराज ! कुंडिनपुरके राजा भीष्मकने अपनी कन्या देनेको पत्रलिख पुरोहितके हाथ मुझे अकेला बुलायाहै जो आप आज्ञा दो तो जाऊं और उसकी बेटी व्याहलाऊं.

सुनकर उग्रसेन यों कहै। दूरदेश कैसे मन रहै॥
तहाँ अकेले जात मुरारि। मत काहूसों उपजै रारि॥

तब तुम्हारा समाचार हमें यहाँ कौन पहुँचावेगा. यों कह पुनि

उग्रसेन बोले कि, अच्छा जो तुम वहाँ जाया चाहते हो तो अपनी सब सेना साथले, दोनों भाई जावो, और व्याह कर शीघ्र चले आवो. वहाँ किसीसे झगड़ा लड़ाई न करना, क्योंकि तुम चिरंजीव हो तो सुंदरी बहुत आय रहेंगी. आज्ञा पातेही श्रीकृष्णचन्द्र बोले कि,महाराज ! तुमने सच कहा. पर मैं आगे चलताहूं आप कटक समेत बलरामजीको पीछेसे भेज दीजियेगा. ऐसे कह हरि उग्रसेन वसुदेवसे विदा हो उस ब्राह्मणके निकट आये और रथ समेत अपने दारुक सारथीको बुलवाया, वह प्रभुकी आज्ञा पातेही चार घोड़ेका रथ तुरंत जोत लाया. तब श्रीकृष्णचन्द्र उसपर चढ़े और ब्राह्मणको पास बिठाय द्वारकासे कुंडिनपुरको चले, जो नगरके बाहर निकले तो देखते क्याहैं कि दाहनी ओर तो मृगके झुंडके झुंड चले जाते हैं. और सन्मुखसे सिंह सिंहिनी अपना भक्ष्य लिये गर्जते आते हैं यह शुभ शकुन देख ब्राह्मण अपने जीमें विचार कर बोला, कि महाराज ! इस समय इस शकुनके देखनेसे मेरे विचारमें यह आताहै कि, ये जैसे अपना काज साधके आते हैं तैसेही तुम भी अपना काज सिद्धकर आवोगे. श्रीकृष्णचंद्र बोले आपकी कृपासे, इतना कह हरि वहाँसे आगे चले और नये नये देश नगर गाँव देखते देखते कुंडिनपुरमें जा पहुँचे तो वहाँ देखा कि, ठौर ठौर व्याहकी सामा जो संयोगी धरी है तिससे नगरकी छवि कुछ औरकी औरही होरहीहै.

औरं गली चौहटे छावें । चोवाचंदनसों छिरकावें ॥
पानसुपारीझोराकिये । बिचबिच कनकनारियलदिये ॥
हरे पात फल फूल अपार । ऐसी घर घर बंदनवार ॥
ध्वजा पताका तोरण तने । सुन्दर कलश कंचनके बने ॥

और घर घरमें आनंद होरहा है महाराज ! यह तो नगरकी शोभाथी और राजमंदिरमें जो कुतूहल होरहाथा उसका वर्णन कोई क्या करे. वह देखतेही बनिआवे. आगे श्रीकृष्णचंद्रने नगर देख राजाभीष्मककी बाड़ीमें डेरा किया. व शीतल छाँहमें बैठ ठंढेहो उस ब्राह्मणसे कहा कि,

देवता ! तुम पहले हमारे आनेका समाचार रुक्मिणीजीको जा सुनावो. जो वे धीरजधर अपने मनका दुःख हरें, पीछे वहाँका भेद हमें आ बतावो, जो हम फिर उसका उपाय करें ब्राह्मण बोला कि, कृपानाथ ! आज व्याहका पहिला दिन है. राजमंदिरमें बड़ी धूमधाम होरहीहै, मैं जाताहूं पर रुक्मिणीजीको अकेली पाय आपके आनेका भेद कहूंगा यों सुनाय ब्राह्मण वहाँसे चला, महाराज ! इधरसे हरि तो यों चुप चाप अकेले पहुँचे. और उधरसे राजा शिशुपाल जरासंध समेत सब असुरदल लिये इस धूमधामसे आया कि, जिसके बोझसे लगा शेषनाग डगमगाने और पृथ्वी उथलने. उसके आनेकी सुधि पाय राजा भीष्मक मंत्री और कुटुंबके लोगोंसमेत आगू बढ़ लेने गये और बड़े आदरमानसे आगोनी कर सबको पहरावनी पहराय रत्नजटित वस्त्र आभूषण और हाथी घोड़ेदे उन्हें नगरमें लेआय जनवासा दिया. फिर खाने पीनेका सन्मान किया इतनी कथा सुनाय श्रीशुकदेवमुनि बोले कि, महाराज ! अब मैं अंतर कथा कहताहूं आप चित्त लगाय सुनिये कि, जब श्रीकृष्ण द्वारकासे चले तिसीसमय सब यदुवंशियोंने जाय राजाउग्रसेनसे कहा कि, महाराज ! हमने सुनाहै कि, कुंडिनपुरमें राजा शिशुपाल जरासंधसमेत, सब असुरदल ले व्याहने गयाहै और हरि अकेले गये हैं इससे हम जानतेहैं कि वहाँ श्रीकृष्णजीसे और उनसे युद्ध होगा. यह बात जानके भी हम अजानहो हरिको छोड़ यहाँ कैसे रहें महाराज ! मन तो मानता नहीं आगे जो आप आज्ञा कीजै सो करें. इसबातके सुनतेही राजा उग्रसेनने अति घबराय भयखाय बलरामजीको निकट बुलाय समझायके कहा, कि तुम हमारी सब सेना ले श्रीकृष्णके पहुँचते न पहुँचते शीघ्र कुंडिनपुरमें जावो; और उन्हें अपने संग कर लेआवो राजाकी आज्ञा पातेही बलदेवजी छप्पनकरोड़ यादव जोड़ ले कुंडिनपुरको चले, उस काल कटकके हाथी काले धौले धूमरे दल बादलसे जातेथे; और उनके श्वेत २ दाँत बगपाँतिसे जनातेथे धौंसा मेघसा गाजताथा; और शस्त्र बिजुलीसे चमकतेथे. राते पीले बागे पहने घुड़चढोंके टोलके टोल जिधर तिधर दृष्टि आतेथे रथोंके ताँतोंके ताँतो

झमझमाते चले जातेथे तिनकी शोभा निरख निरख हर्ष हर्ष देवता अति हितसे अपने अपने विमानोंपर बैठे आकाशसे फूल बरसाय श्रीकृष्णचंद्र आनंदकंदकी जय मनातेथे. इसबीच सब दल लिये चले चले कुंडिनपुरमें हरिके पहुँचतेही बलरामजी भी आपहुँचे, यों सुनाय फिर श्रीशुकदेवजी बोले कि, महाराज ! श्रीकृष्णचंद्र रूपसागर जगत उजागर इस भाँति कुंडिनपुर पहुँच चुके थे पर रुक्मिणीने इनके आनेका समाचार न पाया.

बिलखवदन चितवै चहुँ ओर । जैसेचंद्रमलिनभयेभोर ॥
अतिचिंता सुंदरिजियबाढी । देखै ऊंच अटापर ठाढी ॥
चढिचढिउझकै खिरकीद्वार । नयननते छोडै जलधार ॥
दो०-बिलखवदनअतिमलिनमन, लेतउसासनिसास ।
व्याकुलवर्षा नयनजल, मोचति कहतिउदास ॥

कि, अबतक क्यों नहीं हरि आये. उनका तो नामहै अंतर्यामी ऐसी मुझसे क्या चूकपड़ी जो अबलग उन्होंने मेरी सुधि न ली क्या ब्राह्मण वहाँ न पहुँचा, कै हरिने मुझे कुरूप जान मेरी प्रीति की प्रतीति न करी, कै जरासंधका आना सुन प्रभु न आये. कल व्याहका दिनहै और असुर आय पहुँचा जो वह, कल मेरा कर गहेगा तो यह पापी जीव हरि बिन कैसे रहेगा. जप तप नेम धर्म कुछ आड़े न आया अब क्या करूं किधर जाऊं.

ले बरात आया शिशुपाल । कैसेविरमे दीनदयाल ॥

इतनी बात जब रुक्मिणीके मुखसे निकली, तब एक सखीने तो कहा कि, दूर देश बिन पिता बंधुकी आज्ञा हरि कैसे आवेंगे और दूसरी बोली कि, जिनका नामहै अंतर्यामी दीनदयालु वे बिन आये नरहेंगे रुक्मिणी तू धीरज धर व्याकुल न हो मेरा मन यह हामी भरताहै कि, अभी आया कोई यों कहता है कि, हरि आये. महाराज ! ऐसे वे दोनों आपसमें बातें कह रहीथीं कि, उसी समय ब्राह्मणने आय आशीश दे कहा कि, श्रीकृष्णचंद्रजीने आय राजवाड़ीमें डेरा किया.

और सब दललिये बलदेवजी पीछेसे आतेहैं ब्राह्मणको देखते और इतनी बात सुनतेही रुक्मिणीजीके जीमें जी आया. और उन्होंने उसका ऐसा सुख माना कि, जैसे तपी तपका फल पाय सुखमाने. आगे श्रीरुक्मिणीजी हाथ जोड़ शिर झुकाय उस ब्राह्मणके सन्मुख कहने लगीं कि, आज तुमने आय हरिका आगमन सुनाय मुझे प्राणदान दिया मैं इसके पलटे क्या दूं जो त्रिलोककी माया दूं तोभी तुम्हारे ऋणसे उद्धार न हूं. ऐसे कह मनमार सकुचाय रही. तब वह ब्राह्मण अति संतुष्टहो आशीर्वाद कर वहाँसे उठ राजा भीष्मकके पास गया. और इनसे श्रीकृष्णके आनेका ब्योरा सब समझायके कहा. सुनतेही प्रणामकर राजा भीष्मक उठ धाया और चला चला वहाँ आया जहाँ बाड़ीमें श्रीकृष्ण बलराम सुखधाम विराजतेथे. आतेही अष्टांग प्रणामकर सन्मुख खड़ेहो हाथ जोड़के राजा भीष्मकने कहा कि-

मेरे मन वच हो तुम हरि। कहा कहौं जो दुष्टन करी॥

अब मेरा मनोरथ पूर्ण हुआ; जो आपने आय दर्शन दिया, यों कह प्रभुके डेरे करवाय राजा भीष्मक तो अपने घर आया और चिंता कर ऐसे कहने लगा.

हरिचरित्रजानैंनहिंकोई। क्याजानैंअबकैसीहोई॥

और जहाँ श्रीकृष्ण बलदेवथे तहाँ नगर निवासी क्या स्त्री क्या पुरुष आय शिर नाय नाय प्रभुका यश गाय गाय सराहि २ आपसमें यों कहतेथे कि, रुक्मिणीयोग्य वर श्रीकृष्णही हैं. विधना करे यह जोरी जुरे, और चिरंजीव रहै. इस बीच दोनों भाइयोंके जीमें जो कुछ आया तो नगर देखने चले. उस समय ये दोनों भाई जिस हाट बाट चौहटमें होके जातेथे, तहीं नगर नारियोंके ठट्ट लगजातेथे और इनके ऊपर चोवा चंदन गुलाब नीर छिड़क छिड़क फूल बरसाय हाथ बढ़ाय बढ़ाय प्रभुको आपसमें यों कह कह बतातेथे.

नीलांबर ओढे बलराम। पीतांबरपहनेघनश्याम॥

कुंडलचपलमुकुट शिरधरे । कमलनयनचाहतमनहरे ॥

और ये देखते जातेथे, निदान सब नगर और राजा शिशुपालका कटक देख येतो अपने दलमें आये; और इनके आनेका समाचार सुन राजा भीष्मकका बड़ा बेटा अतिक्रोधकर अपने पिताके निकट आय कहने लगा कि, सच कहो श्रीकृष्ण यहाँ किसका बुलाया आया यह भेद हमने न पाया. विन बुलाये यह कैसे आया ?

ब्याह काज यहहै सुखधाम । इसमेंइसकाक्याहै काम ॥

ये दोनों कपटी कुटिल जहाँ जातेहैं तहाँहीं उत्पात मचाते हैं जो तुम अपना भला चाहो तो मुझसे सत्य कहो. ये किसके बुलाये आये? महाराज ! रुक्म ऐसे पिताको धमकाय वहाँसे उठ सात पाँच करता वहाँ गया. जहाँ राजा शिशुपाल और जरासंध अपनी सभामें बैठेथे, और उनसे कहा कि, यहाँ राम कृष्ण आये हैं तुम अपने सब लोगोंको जता दो जो सावधानीसे रहैं. इन दोनों भाइयोंका नाम सुनतेही राजा शिशुपाल तो हरिचरित्रका लख व्यवहार मनहींमन विचार करने लगा; और जरासंधने कहा कि, सुनो जहाँ ये दोनों जाते हैं तहाँ कुछ न कुछ उपद्रव मचाते हैं. ये महाबली और कपटी हैं, इन्होंने व्रजमें कंसादिक बड़े बड़े राक्षस सहजस्वभावही मारे हैं, इन्हें तुम मत जानो बारे, ये एक भी किसीसे लड़कर नहीं हारे; श्रीकृष्णने सत्रहबेर मेरा दल हना. जब मैं अठारहवीं बेर चढ़ आया तब यह भाग पर्वतपे जाय चढ़ा जो मैंने उसमें आग लगाई तो यह छलकर द्वारकाको चलागया.

याको काहू भेद न पायो । अब यहँ करन उपद्रव आयो ॥
है यह छली महाछल करै । काहूपै नहि जान्यों परै ॥

इससे अब ऐसा कुछ उपाय कीजिये जिससे हम सबोंकी पति रहै, इतनी बात जब जरासंधने कही तब रुक्म बोला कि, वे क्या वस्तु हैं जिनके लिये तुम इतने भावितहो. उन्हें तो मैं भली भाँतिसे जानता हूं कि, वन वन नाचते गाते वेणु बजाते धेनु चराते फिरतेथे वे बालक गवाँर युद्ध विद्याकी रीति क्या जानें, तुम किसी बात की चिंता अपने मनमें मत

करो. हम सब यदुवंशियों समेत कृष्ण बलरामको क्षण भरमें मार हटावेंगे.

श्रीशुकदेवजी बोले कि, महाराज! उस दिन रुक्म तो जरासंध और शिशुपालको समझाय बुझाय ढाँढ़स बँधाय अपने घर आया; और उन्होंने सात पाँचकर रात गवाँई भोर होतेही इधर राजा शिशुपाल और जरासंध तो ब्याहका दिन जान बरात निकालनेकी धूमधाममें लगे और उधर राजा भीष्मकके यहाँ भी मंगलाचार होने लगे, इसमें रुक्मिणीजीने उठतेही एक ब्राह्मणके हाथ श्रीकृष्णचंद्रसे कहला भेजा कि, कृपानिधान! आज ब्याहका दिनहै दो घड़ी दिन रहे नगरके पूर्व देवीका मंदिर है तहाँ मैं पूजा करने जाऊँगी मेरी लाज तुम्हें है, जिसमें रहे सो करियेगा. आगे पहर एक दिन चढे सखी सहेली और कुटुंबकी स्त्रियां आईं, उन्होंने आतेही पहले तो आँगनमें गजमोतियोंका चौक पुरवाय कंचनकी जड़ाऊ चौकी बिछाय तिसपर रुक्मिणीको बिठाय सात सुहागनोंसे तेल चढ़वाय पीछे सुगंध उबटन लगाय नहवाय धुलाय उसे सोलह शृंगार करवाय बारह आभूषण पहराय ऊपरसे राता चोला उढ़ाय बनी बनाय बिठाया. इतनेमें घड़ी चार एक दिन पिछला रह गया, उसकाल रुक्मिणी अपनी सब सखी सहेलियोंको साथले बाजे गाजेसे देवीकी पूजा करनेको चली. तो राजा भीष्मकने अपने लोग रखवालोंको उसके साथ करदिये, ये समाचार पाय कि, राजकन्या नगरके बाहर देवी पूजने चलीहै, राजा शिशुपालने भी श्रीकृष्णचंद्रके डरसे अपने बड़े बड़े रावत शूरवीर योद्धाओंको बुलाय सब भाँति ऊँच नीच समझाय बुझाय रुक्मिणीजीकी चौकसीको भेज दिया. वे भी आय अपने अपने अस्त्र शस्त्र सँभाल राजकन्याके सँग होलिये, तिस बिरियां रुक्मिणीजी सब शृंगार किये सखी सहेलियोंके झुंडके झुंड लिये अंतरपटकी ओटमें और काले काले राक्षसोंके कोटमें जाते ऐसी शोभायमान लगतीथीं कि, जैसे श्यामघटाके बीच तारामंडल समेत चंद्र, निदान कितनी एक बेरमें चली चली देवीके मंदिरमें पहुँची वहाँ जाय हाथ पाँव धोय आचमन कर श्रद्धासमेत वेदकी विधिसे देवीकी पूजा की, पीछे ब्राह्मणियोंको इच्छा भोजन करवाय सुथरी तियलें पहराय रोरीकी खौर काढ़ अक्षत लगाय उन्हें दक्षिणा दी; और उनसे आशीष

ली, आगे देवीकी परिक्रमा दे वह चंद्रमुखी चंपकवर्णी मृगनयनी पिकवयनी, गजगामिनी, सखियोंको साथ ले हरिके मिलनेकी चिंता किये जो वहाँसे निश्चिंतहो चलनेको हुई तो श्रीकृष्णचंद्र भी अकेले रथपर बैठ वहाँ पहुँचे. जहाँ रुक्मिणीके साथ सब शूर अस्त्र शस्त्रसे जकड़े खड़ेथे, इतना कह श्रीशुकदेवजी बोले.

दो०--पूजि गौरि जबहीं चली, एक कहति अकुलाय ।
सुनु सुंदरि आये हरी, देख ध्वजा फहराय ॥

यह बात सखीसे सुन और प्रभुके रथकी ओर देख देख राजकन्या अति आनंदकर फूली अंग न समातीथी और सखीके हाथपर हाथ दिये मोहनीरूपकिये हरिके मिलनेकी आशलिये कुछ कुछ मुसकराती. ऐसे सबके बीच मंदगति जातीथी कि जिसकी शोभा कुछ वर्णी नहीं जाती. आगे श्रीकृष्णचंद्रजीको देखते ही सब रखवाले भूलेसे खड़े होगये और अंतरपट उनके हाथसे छूट पड़े इसमें मोहनीरूपसे रुक्मिणीजीको जो उन्होंने देखा तो और भी मोहितहो ऐसे शिथिल हुए कि, जिन्हें अपने तन मनकी भी सुध न थी.

सो०--भ्रुकुटी धनुष चढाय, अंजन वरुणी पनचकै ।
लोचन बाण चढाय, मारे पै जीवन रहे ॥

महाराज ! उसकाल सब राक्षस तो चित्रसे खड़े खड़े देखतेही रहे; और श्रीकृष्णचंद्र सबके बीच रुक्मिणीके पास रथ बढ़ाय खड़े हुए. प्राणपतिको देखते ही उसने सकुचकर मिलनेको जो हाथ बढ़ाया तो प्रभुने बाँये हाथसे उठाय उसे रथपर बैठाया.

काँपत गातसकुच मनभारी । छाँडसबनहरिसंगसिधारी ॥
ज्यों वैरागी छोडे गेह । कृष्ण चरण सों करे सनेह ॥

महाराज ! रुक्मिणीजीने तो जप, तप, व्रत, पुण्य, कियेका फल पाया; और पिछला दुःख सब गँवाया. वैरी अस्त्र शस्त्र लिये खड़े मुख देखतेही रहे, प्रभु उनके बीचसे रुक्मिणीको ले ऐसे चले कि—

दो०—ज्यों वहु झुंडनि स्यारके, परै सिंह विच आय ॥
अपनो भक्षण लेइकै, चलै निडर घहराय ॥

आगे श्रीकृष्णचन्द्रके चलते ही बलरामजी भी पीछेसे धौंसा दे सब दल साथ ले जा मिले.

इति श्रीलल्लूलालकृते प्रेमसागरे रुक्मिणीहरणो नाम चतुःपंचाशत्तमोऽध्यायः ॥ ५४ ॥

अध्याय ५५.

श्रीशुकदेवजी बोले कि, महाराज ! कितनी एक दूर जाय श्रीकृष्णचंद्रजीने रुक्मिणीको सोच संकोचयुत देखकर कहा कि, सुंदरी ! अब तुम किसी बातकी चिंता मतकरो. मैं शंखध्वनिकर सब तुम्हारे मनका डर हरूंगा और द्वारकामें पहुँच वेदकी विधिसे बरूंगा. यों कह प्रभुने उसे अपनी माला पहिराय बाईं ओर बैठाय ज्यों शंखध्वनिकरी, त्यों शिशुपाल और जरासंधके साथी सब चौंकपड़े यह बात सारे नगरमें फैलगई कि, हरि रुक्मिणीको हर लेगये. इसमें रुक्मिणीहरण अपने उन लोगोंके मुखसे सुना कि जो चौकसीको राजकन्याके संग गयेथे, राजा शिशुपाल

और जरासंध अति क्रोधकर झिलम टोप पहन पेटी बाँध सब शस्त्र लगाय अपना कटक ले लड़नेको श्रीकृष्णके पीछे चढ़ दौड़े और उनके निकट जाय आयुध सँभाल सँभाल ललकारे, अरे ! भागे क्यों जाते हो, खड़े रहो शस्त्र पकड़ लड़ो जो क्षत्रिय शूरवीरहैं वे क्षेत्रमें पीठ नहीं देते. महाराज ! इतनी बातके सुनतेही यादव फिर सन्मुख हुये और लगे दोनों ओरसे शस्त्र चलने, उसकाल रुक्मिणी बाल अति भयमान घूंघुटकी ओट किये आँसू भर भर लंबी श्वासें लेतीथी और प्रीतमका मुख निरख निरख मनहीं मन विचार कर यों कहतीथी, कि ये मेरे लिये इतना दुःख पाते हैं. अंतर्यामी प्रभु रुक्मिणीके मनका भेद जान बोले कि सुंदरी ! तू क्यों डरती है. तेरे देखतेही देखते सब असुरदलको मार भूमि काभार उतारताहूं तू अपने मनमें किसी बातकी चिंता मत कर. इतनी कथा कह श्रीशुकदेवजी बोले, कि राजा ! उसकाल देवता अपने अपने विमानोंमें बैठ आकाशसे देखते क्याहैं कि-

दो०-यादवअसुरनसोंलरत, होत महासंग्राम ।
ठाढेदेखत कृष्णहैं, करत युद्ध बलराम ॥

मारू बाजा बाजता है कड़खेत कड़खा गाते हैं चारण यश बखानतेहैं अश्वपति अश्वपतिसे, रथी रथीसे, पैदल पैदलसे, भिड़ रहे हैं इधर उधरके शूरवीर पिल पिलके मारते हैं और कायर खेत छोड़ अपना जी ले २ भागते हैं घायल खड़ेझूमते हैं. कबंध हाथमें तलवार लिये चारों ओर घूमते हैं और लोथों पै लोथैं गिरती हैं. तिनसे लोहूकी नदी बहचलीहै. तिसमें जहाँ तहाँ हाथी जो मरे पड़े हैं सो टापूसे जनाते हैं और शुंडें मगरसी, महादेव भूत प्रेत पिशाच संगलिये शिर चुन चुन मुंडमाल बनवाय २ पहनते हैं और गृध्र शृगाल कूकर आपसमें लड़ लड़ लोथें खैंच खैंच लाते और फाड़ फाड़ खाते हैं, कौवे आँखें निकाल निकाल धड़ों से लेजातेहैं. निदान देवताओंके देखतेही देखते बलरामजीने सब असुरदल यों काट डाला, कि ज्यों किसान खेती काटडाले, आगे जरासंध और शिशुपाल सबदल कटाय कई एक घायल संग लिये भागके

एक ठौर जा खड़े रहे तहाँ शिशुपालने बहुत अछताय पछताय शिर डुलाय जरासंधसे कहा कि; अब तो अपयश पाय और कुलको कलंक लगाय संसारमें जीना उचित नहीं इससे आप आज्ञा दो तो मैं रणमें जाय लड़ मरूं ॥

नातर हौं करिहौं वनवास। लेऊं योग छाँडि सब आस॥
गईआजपतिअबक्योंजीजे। राखिप्राणक्योंअपयशलीजे॥

इतनी बात सुन जरासंध बोला कि, महाराज ! आप ज्ञानवान हो और सब बातें जानतेहो मैं तुम्हे क्या समझाऊं, जो ज्ञानी पुरुषहैं सो हुई बातका सोच नहीं करते क्योंकि भले बुरेका कर्त्ता औरही है. मनुष्यका कुछ वश नहीं. यह परवश पराधीन है जैसे काष्ठकी पुतलीको नटुआ ज्यों नचाताहै त्यों नाचतीहै ऐसेही मनुष्य कर्त्ताके वश है. वह जो चाहताहै सो करताहै. इससे सुखदुःखमें हर्ष शोक न कीजे, सब स्वप्नसा जान- लीजे. मैं तेईस २ अक्षौहिणीले मथुरापुरीपर सत्रह बेर चढ़गया और इसी कृष्णने सत्रह बेर मेरा सब दल हना. मैंने कुछ सोच न किया और अठारहवीं बेर जब इसका दल मारा तब कुछ हर्ष भी न किया यह भागकर पहाड़पर जा चढ़ा, मैंने इसे वहीं फूंक दिया, न जानिये यह क्यों कर जिया इसकी गति कुछ जानी नहीं जाती; इतना कह फिर जरासंध बोला महाराज ! अब उचित यहहै कि, इस समयको टालदीजे कहाहै कि, प्राण बचे तो पीछे सब हो रहताहै जैसे हमें हुआ, कि सत्रहवार हारे अठारहवीं बेर जीते. इससे जिसमें अपनी कुशल हो. सो कीजे और हठ छोड़दीजे, महाराज! जब जरासंधने ऐसे समझायके कहा, तब उसे कुछ धीरज हुआ और जितने घायल योद्धा बचेथे तिन्हें साथ ले अछताय पछताय जरासंधके संग होलिया; ये तो यहाँसे यों हारके चले और जहाँ शिशुपालका घरथा तहाँकी बात सुनो कि, पुत्रके आव- नेका विचार शिशुपालकी माँ जो मंगलाचार करने लगी तो सन्मुख छींक हुई और दाहनी आँख उसकी फड़कने लगी, यह अशकुन देख उसका माथा ठनका कि, इसबीच किसीने आय कहा कि, तुम्हारे

पुत्रकी सब सेना कटगई और दुलहन भी न मिली अब वहाँसे भाग अपना जीव लिये आताहै, इतनी बातके सुनतेही शिशुपालकी महतारी अति चिंताकर अवाक् होरही, आगे शिशुपाल और जरासंधको भागना सुन रुक्म अति क्रोधकर अपनी सभामें आन बैठा और सबको सुनाय कहने लगा कि, कृष्ण मेरे हाथसे बच कहाँ जा सकताहै ? अभी जाय उसे मारूं रुक्मिणीको लेआऊं तो मेरा नाम रुक्म नहीं तो फिर कुंडिनपुरमें नहीं आऊं. महाराज ! ऐसे पैजकर रुक्म एक अक्षौहिणी सेना ले श्रीकृष्ण-चंद्रसे लड़नेको चढ़ धाया और उसने यादवोंका दल जा घेरा उसकाल उसने अपने लोगोंसे कहा कि, तुम तो यादवोंको मारो और मैं आगे जाय श्रीकृष्णको जीता पकड़ लाताहूं. इतनी बातके सुनतेही उसके साथी तो यदुवंशियोंसे युद्ध करने लगे और वह रथ बढ़ाय श्रीकृष्णचंद्रके निकट जाय ललकारके बोला. अरे कपटी गँवार ! तू क्या जाने राजव्यवहार. बालकपनमें जैसे तैने दूध दही कि चोरी करी, तैसे तूने यहाँ भी आय सुंदरी हरी.

ब्रजवासी हमनहीं अहीर । ऐसे कहकर लीने तीर ॥
विषकेबुझे लियेउनवीन । खैंच धनुष शर छोडे तीन ॥

उन बाणोंको आतेदेख श्रीकृष्णचंद्रने बीचहीमें काटा, फिर रुक्मने और बाण चलाये. प्रभुने वेभी काट गिराये. और अपना धनुष सँभाल कईएकबाण मारे कि, रथके घोड़ोंसमेत सारथी उड़गया और धनुष उसके हाथसे कट भूमिमें गिरा. पुनि जितने आयुध उसने लिये हरिने सब काट काट गिरादिये. तब तो वह अति झुंझलाय फरी खाँड़ा उठाय रथसे कूद श्रीकृष्णचंद्रकी ओर यों झपटा कि, जैसा बावला गीदड़ गजपर आवे, कै ज्यों पतंग दीपकपर धावे. निदान जातेही उसने हरिके रथपर एक गदा चलाई कि, प्रभुने झट उसे पकड़ बाँधा और चाहा कि, मारौं; इसमें रुक्मिणीजी बोलीं.

मारो मत भैयाहै मेरो । छाँडो नाथ तिहारो चेरो ॥
मूरखअंध कहा यहजाने । लक्ष्मीकंतहि मानुष माने ॥

तुम योगीश्वर आदि अनंत । भक्त हेतु प्रगटे भगवंत ॥
यह जड कहा तुम्हें पहचाने । दीनदयालु कृपालुवखाने ॥

इतना कह फिर कहने लगीं कि, 'साधु' जड़ और बालकका अपराध मनमें नहीं लाते, जैसे कि, सिंह श्वानके भूंकनेपर ध्यान नहीं करता और जो तुम इसे मारोगे तो होगा मेरे पिताको शोक, यह करना तुम्हें नहीं है योग. जिस ठौर तुम्हारे चरण पड़ते हैं तहाँके सब प्राणी आनन्दमें रहते हैं यह बड़े अचरजकी बातहै कि, तुमसा सगा रहते राजा भीष्मक पुत्रका दुःख पावे. महाराज ! ऐसे कह एकबार तो रुक्मिणीजी यों बोलीं कि, महाराज ! तुमने भला हित संबंधीसे किया जो पकड़ बाँधा और खड्ग हाथमें ले मारनेको उपस्थित हुए. पुनि व्याकुल हो थरथराय आँखे डब-डबाय बिसूर बिसूर पाँओं पड़ गोद पसार कहने लगीं.

बंधु भीख प्रभु मोकोदेउ । इतनो यश तुम जगमें लेउ ॥

इतनी बातके सुननेसे और रुक्मिणीजीकी ओर देखनेसे श्रीकृष्ण-चंद्रजीका सब कोप शांत हुआ. अब उन्होंने जीवसे तो न मारा पर सारथीको सैन करी उसने झट उसकी पगड़ी उतार ढुँढिया चढ़ाय डाढ़ी और शिर मूड़ सात चोटी रख रथके पीछे बाँध लिया; इतनी कथा कह श्रीशुकदेवजी बोले कि महाराज ! रुक्म की तो श्रीकृष्णजीने यहाँ यह अवस्था की और बलदेवजी वहाँसे सब असुरदलको मार भगायकर भाईके मिलनेको ऐसे चले कि, जैसे श्वेत गज कमलदलमें कमलोंको तोड़ खाय बिथराय अकुलायके भागता होय; निदान कितनी एक बेरमें प्रभुके समीप आय पहुँचे और रुक्मको बँधा देख श्रीकृष्णसे अति झुंझलायके बोले कि,तुमने यह क्या काम किया जो सालेको पकड़ बाँधा तुम्हारी कुटेव नहीं जाती.

बाँध्यो याहिकरीबुधिथोरी । यहतुमकृष्णसगाई तोरी ॥
औयदुकुलकोलीक लगाई । अबहमसों कोकरी सगाई ॥

जिस समय यह युद्ध करनेको आपके सन्मुख आया; तब तुमने इसे समझाय बुझायके उलटा क्यों न फेर दिया ? महाराज ! ऐसे कह

बलरामजीने रुक्मको तो खोल समझाय बुझाय अति शिष्टाचार कर बिदा किया फिर हाथ जोड़ अति बिनतीकर बलराम सुखधाम रुक्मिणीसे कहने लगे कि, हे सुंदरी ! तुम्हारे भाईकी जो यह दशा हुई इसमें कुछ हमारी चूक नहीं. यह उसके पूर्व जन्मके किये कर्मका फलहै और क्षत्रियोंका धर्म भी है, कि भूमि धन स्त्रियोंके काज, करते हैं युद्ध दल परस्पर साज; इसबातका तुम बिलग मत मानो, मेरा कहा सच्चाही जानो. हार जीत भी उसके साथही लगी है और यह संसार दुःखका समुद्र है, यहाँ आय सुख कहाँ ? पर मनुष्य मायाके वशहो दुःख सुख भला बुरा हार जीत संयोग वियोग मनहीमनसे मान लेतेहैं. पै इसमें हर्ष शोक जीवको नहीं होता. तुम अपने भाईके विरूप होनेकी चिंता मत करो क्योंकि ज्ञानी लोग जीव अमर, देहका नाश कहतेहैं. इस लेखे देहकी पत जानेसे कुछ जीवकी नहीं गई.

इतनी कथा कह श्रीशुकदेवजीने राजा परिक्षितसे कहा कि, धर्मावतार ! जब बलरामजीने ऐसे रुक्मिणीको समझाया तब—

दो०—सुनि सुंदरि मन समझके, किये जेठकी लाज ।
सैनमाहिंपियसों कहति, हाँकहु रथ ब्रजराज ॥

घूंघुट ओट वदनकी करै । मधुर वचन हरिसों उच्चरै ॥
सन्मुख ठाढ़ेहैं बलदाऊ । अहो कंत रथ वेग चलाऊ ॥

इतना वचन रुक्मिणी जीके मुखसे निकलतेही इधर तो श्रीकृष्णचंद्रजीने रथ द्वारकाकी ओर हाँका और उधर रुक्म अपने लोगोंमें जाय अति चिंता कर कहने लगा कि, मैं कुंडिनपुरसे यह पैज करके आयाथा कि, अभी जाय कृष्ण बलरामको सब यदुवंशियों समेत मार रुक्मिणीको लेआऊंगा सो मेरा प्रण पूरा न हुवा और उलटी अपनी पत खोई अब जीता न रहूंगा इस देश और गृहस्थाश्रमको छोड़ वैरागी है कहीं जाय मरूंगा. जब रुक्मने ऐसे कहा तब उसके लोगोंमेंसे कोई बोला महाराज ! तुम महावीर हो और बड़े प्रतापी. तुम्हारे हाथसे जो वे जीते बचगये

सो उनके भले दिन थे अपनी प्रारब्धके बलसे निकल गये नहीं तो आपके सन्मुख हो कोई शत्रु कब जीता बच सकता है. तुम सज्ञान हो ऐसी बात क्यों विचारतेहो कभी हार होतीहै कभी जीत; पर शूरवीरोंका धर्म है जो साहस नहीं छोड़ते। भला रिपु आज बचगया, फिर मारलेंगे, महाराज ! जब यों उसने रुक्मको समझाया, तब वह यह कहने लगा कि सुनो-

हारचों उनसों औ पतिगई। मेरे मन अति लज्जा भई॥
जन्म नहीं कुंडिनपुर जाऊँ। वरन औरही गाँव बसाऊँ॥
यों कह उनइक नगर बसायो। सुत दारा धन तहाँ मँगायो॥
ताको धऱ्यो भोजकट नाम। ऐसे रुक्म बसायो ग्राम॥

महाराज ! उधर रुक्म तो राजा भीष्मकसे बैर कर वहाँ रहा और इधर श्रीकृष्णचंद्र और बलदेवजी चले चले द्वारकाके निकट आय पहुँचे.

उड़ी रेणु आकाश जु छाई। तबहीं पुरवासिन सुध पाई॥

दो०--आवत हरि जाने जबहिं, राख्यो नगर बनाय।
शोभा भइ तिहुँ लोककी, कही कौनपै जाय॥

उसकाल घरघर मंगलाचार होरहेथे. द्वार द्वार केलके खंभ गड़े कलश सजल सपल्लव धरे ध्वजा पताका फहराय रहीं तोरण बंदनवार बँधी हुईं और घरघर हाट बाट चौहटोंमें चौमुखे दिये लिये युवतियोंके यूथके यूथ खड़े और राजा उग्रसेन भी सब यदुवंशियों समेत बाजे गाजेसे अगाऊ जाय रीति भाँति कर बलराम सुखधाम और श्रीकृष्णचन्द्र आनंदकंदको नगरमें ले आये. उस समयके बनावकी छबि कुछ वर्णी नहीं जाती क्या स्त्री क्या पुरुष सबहीके मनमें आनन्द छाय रहाथा. प्रभुके सोहीं आय २ सब भेंट देदे भेंटतेथे और नारियाँ अपने अपने द्वारों बारों चौबारों कोठोंपरसे मंगल गीत गाय गाय आरती उतार फूल बरसावतीथीं, श्रीकृष्णचन्द्र और बलदेवजी यथायोग्य सबकी मनुहार करते जातेथे. निदान तिसी रीतिसे चले चले राजमंदिरमें

जा बिराजे. आगे कई एक दिन पीछे एक दिन श्रीकृष्णचन्द्रजी राजसभामें गये, जहाँ राजा उग्रसेन शूरसेन वसुदेव आदि सब बड़े बड़े यदुवंशी बैठेथे और प्रणामकर इन्होंने उनके आगे कहा कि, महाराज! युद्ध जीत जो कोई सुंदरी लाताहै, वह राक्षस व्याह कहाताहै, इतनी बातके सुनतेही शूरसेनजीने पुरोहित बुलाय उसे समझायके कहा कि, तुम श्रीकृष्णके विवाहका दिन ठहरा दो उसने झट पत्री खोल भला महीना दिन वार नक्षत्र देख शुभ सूर्य चंद्रमा विचार व्याहका दिन ठहराय दिया, तब राजा उग्रसेनने अपने मंत्रियोंको तो यह आज्ञा दी कि, तुम व्याहका सामान इकट्ठा करो और आप बैठ पत्र लिखकर पांडव,कौरव आदि सब देश देशके राजाओंको ब्राह्मणके हाथ भिजवाये. महाराज! चिट्ठी पातेही सब राजा प्रसन्न हो हो उठधाये, तिन्होंके साथ ब्राह्मण, पंडित, भाट भिखारीभी हो लिये, और यह समाचार पाय राजाभीष्मकनें भी बहुत वस्त्र, अस्त्र, जड़ाऊ आभूषण और रथ,हाथी, घोड़े, दास, दासियोंके डोले एक ब्राह्मणको दे कन्यादानका संकल्प मनहींमन ले अति विनती कर द्वारकाको भेज दिया. उधर से तो देश देशके नरेश आये, और इधर राजा भीष्मकका पठाया सब सामा लिये वह ब्राह्मण भी आया. उस समयकी शोभा द्वारकापुरीकी कुछ वर्णीनहीं जाती; व्याहका दिन आया तो सब रीति भाँति कर वरकन्याको मंडपके नीचे लेजा बैठाया और सब बड़े२ झुंड यदुवंशियोंके भी आय बैठे, उसबिरियाँ,

पंडित तहाँ वेद उच्चरें। रुक्मिणि सँग हरि भाँवर फिरें॥
ढोल दुंदुभी भेरि बजावैं। हरषहिं देव पुहुप बरसावैं॥
सिद्ध साध चारण गंधर्व। अंतरिक्ष भये देखैं सर्व॥
चढे विमान घिरे शिरनावें। देववधू सब मंगल गावें॥
हाथ गह्यो प्रभु भाँवरि पारी। वाम अंग रुक्मिणि बैठारी॥
छोरीगाँठ पटा फिर दियो। कुलदेवी को पूजन कियो॥
छोरत कंकण हरी सुंदरी। खेलत दूधा भाती करी॥

अति आनंदरच्यो जगदीश। निरखिहरपिसबदेहिंअशीश॥
हरिरुक्मिणिजोरीचिरजीवो। जिनकोचरितसुधारसपीवो॥
दीनो दान विप्रजे आये। मागध बंदीजन पहिराये॥
जे नृप देश देशके आये। दीनी बिदा सबै पहुँचाये॥

इतनी कथा कह श्रीशुकदेवजी बोले कि, महाराज! जो जन हरि रुक्मिणीका चरित्र पढ़ै सुनैगा और पढ़ सुनके सुमिरन करेगा; सो भक्ति मुक्ति यश पावेगा पुनि जो फल होताहै अश्वमेधादि यज्ञ, गौ आदि दान, गंगादि तीर्थके करनेमें, सोई फल मिलताहै हरि कथा सुननेमें.

इति श्रीलल्लूलालकृते प्रे० रुक्मिणीचरित्रवर्णनोनाम पंचपंचाशत्तमोऽध्यायः ५५

अध्याय ५६.

श्रीशुकदेवजी बोले कि, महाराज! एकदिन श्रीमहादेवजी अपने स्थानके बीच ध्यानमें बैठेथे कि एकाएकी कामदेवने आ सताया तो हरका ध्यान छूटा और लगे अज्ञान हो पार्वतीजीके साथ क्रीडा की इच्छा करने, इसमें कितनी एक बेर पीछे शिवजीको केलि चिंतन करते जब ज्ञान हुआ तब क्रोधकर कामदेवको जलाय भस्मकिया.

दो०—कामबली जब शिवदह्यो, तब रतिधरतनधीर ।
पतिबिनअतितलफतखरी, विह्वल विकलशरीर ॥

कामनारिअतिलोटतफिरै । कंतकंतकहिक्षितिभुजभरै ॥
पियबिनतियमहदुखियाजान । तबयोंगौरीकियोबखान ॥

कि हे रति ! तू चिंता मत करे, तेरा पति तुझे जिस भाँति मिलेगा तिसका भेद सुन मैं कहतीहूं, कि पहिले तो वह श्रीकृष्णचंद्रके घरमें जन्म लेगा और उसका नाम प्रद्युम्न होगा. पीछे उसे शंबर लेजाय समुद्रमें बहावेगा. फिर वह मच्छके पेटमें हो शंबरही की रसोईमें आवेगा तू वहीं जायके रह, जब वह आवे तब उसे ले पालियो पुनि वह शंबरको मार तुझे साथले द्वारकामें सुखसे जाय बसेगा महाराज !

शिवरानीयोंरतिसमझाई । तबतनुधर शंबरघर आई ॥
सुंदरि बीच रसोई रहै । निशिदिन मारगप्रियकोचहै ॥

इतनी कथा कह श्रीशुकदेवजी बोले कि हे राजा ! इधर रति तो प्रियके मिलनेकी आशकर यों रहने लगी और उधर रुक्मिणीजीको गर्भ रहा और दशमहीनेसे पूरे दिनों लड़का भया यह समाचार पाय ज्योतिषियोंने आय लग्न साध वसुदेवजीसे कहा कि, महाराज ! इस बालकके शुभग्रह देख हमारे विचारमें यों आताहै कि. रूप गुण पराक्रममें यह श्रीकृष्णजीहीके समान होगा. पर बालकपनभर जलमें रहेगा, पुनि रिपुको मार स्त्रीसमेत आ मिलेगा. यों कह प्रद्युम्न नामधर ज्योतिषी तो दक्षिणा लेले बिदा हुए और वसुदेवजीके घरमें रीति भाँति और मंगलाचार होने लगे. आगे श्रीनारदमुनिजीने आय उसी समय समझाय शंबरसे कहा कि, तू किस नींदमें सोताहै तुझे चेतहै कि नहीं ? वह बोला क्या ? उन्होंने कहा तेरा वैरी कामका अवतार प्रद्युम्ननाम श्रीकृष्णचंद्रके घरमें जन्म लेचुका, नारदजी तो राजाशंबरको यों चिताय चले गये और शंबरने सोच विचारकर मनहीं मनमें यह उपाय ठहराया कि, पवनरूपहो वहाँ जाय उसे हरलाऊं और समुद्रमें बहाऊं तो मेरे मनकी चिंता

मिटे और निर्भय हो रहे. यह विचार कर शंबर वहाँसे उठ अलखहो चला चला श्रीकृष्ण के मंदिरमें आया कि, जहाँ रुक्मिणीजी अंतरमें हाथसों दबाये छातीसे लगाये बालकको दूध पिलातीथीं और आप चुपचाप दृष्टि लगाये खड़ारहा, ज्यों बालकपरसे रुक्मिणीजीका हाथ अलग हुआ. त्यों असुर अपनी माया फैलाय उसे उठा ऐसे ले आया कि, जितनी स्त्रियाँ वहाँ बैठीथीं तिनमेंसे किसीने न देखा न जाना कि, कौन किस रूपसे आय क्योंकर उठाय लेगया बालकको आगे न देख रुक्मिणीजी अति घबराई और रोने लगीं. उनके रोनेका शब्दसुन सब यदुवंशी क्या स्त्री क्या पुरुष घिर आए और अनेक अनेक प्रकारकी बातें कह कह चिंता करनेलगे. इस बीच नारदमुनिजी आय सबको समझाकर कहा कि, तुम बालकके पानेकी कुछ भावना मतकरो उसे किसी बातका डरनहीं वह कहीं जाय. पर उसे काल न व्यापैगा. और बालपन व्यतीत कर एक सुंदरनारी साथ ले तुम्हें आय मिलेगा. महाराज ! ऐसे सब यदुवंशियोंको भेद बताय समझाय बुझाय नारदमुनि जब बिदा हुए. तब सभी सोच समझ संतोष कररही. अब आगे कथा सुनिये, कि, शंबर जो प्रद्युम्नको लेगयाथा, उसने उन्हें समुद्रमें डालदिया, वहाँ एक मछलीने इन्हें निगलगई, उस मछलीको एक और बड़ी मछली निगलगई, इसमें एक मछुयेने जाय समुद्रमें जो जाल फेंका तो वह मीन जालमें आई, धीवर खेंच उस मत्स्यको देख अति प्रसन्नहो ले अपने घर आया. निदान वह मछली उसने जा राजा शंबरको भेंटदी, राजाने ले अपने रसोई घरमें भेजदी. रसोई करनेवालीने जो उस मछलीको चीरा तो उसमेंसे एक और मछली निकली. उसका पेट फाड़ा तो एक लड़का श्यामवर्ण अतिसुंदर उसमेंसे निकला. उसने देखतेही अति अचरज किया. और वह लड़का लेजाय रतिको दिया. उसने महाप्रसन्नहो लेलिया. यह बात शंबरने सुनी तो रतिको बुलायके कहाकि, इस लड़केको भलीभाँतिसे यत्नकर पाल. इतनी बात राजाकी सुन रति उस लड़केको ले निजमंदिरमें आई. उसकाल नारदजीने रतिसे कहा.

अबतूयाहिपालचितलाय । तो पतिप्रद्युमन प्रकटचोआय ॥
शंबरमार तोहिं लै जैहै । बालापन या ठौर बितैहै ॥

इतनाभेद बताय नारदमुनि चले गये और रति अति हितसे चित लगाय पालने लगी. ज्यों ज्यों वह बालक बढ़ताथा, त्यों त्यों पतिके मिलनका चाव होताथा. कभी वह उसका रूप देख प्रेम करके हिएसे लगातीथी. कभी दृग मुख कपोल चूम आपही विहँस उसके गले लगती, और यों कहतीथी कि,

ऐसोप्रभुसंयोगबनायो । मछरीमाहिंकंतमैंपायो ॥

और महाराज ?

दो०—प्रेमसहितपयल्यायकै, हितसोंप्यावतिताहि ।
हलरावतिगुणगायकै, कहति कंत चितचाहि ॥

आगे जब प्रद्युम्नजी पाँच वर्षके हुये. तब रति अनेक अनेक भाँतिके वस्त्र आभूषण पहनाय पहनाय अपने मनका साध पूरा करने लगी और नयनोंको सुख देने. उसकाल वह बालक जो रतिका अंचल पकड़ पकड़ माँ माँ कहने लगा तो वह हँसकर बोली हे कंत ! तुम यह क्या कहतेहो ? मैं तुम्हारी नारी; तुम देखो अपने हिये विचारी. मुझे पार्वतीजीने यह कहाथा कि, तुम शंबरके घरमें जायके रहो, तेरा पति श्रीकृष्णके घरमें जन्मलेगा. सो मछलीके पेटमें ही तेरे पास आवेगा. और नारदजी भी कहगये थे कि, तू उदास मतहो तेरा स्वामी तुझे आय मिलताहै, तभीसे मैं तुम्हारे मिलनेकी आशकिये यहाँ वास कर रहीहूं. तुम्हारे आनेसे मेरी आश पूरी भई. ऐसे कह रतिने फिर पतिको धनुषविद्या सब पढ़ाई. जब वे धनुषविद्यामें निपुण हुए तब एक दिन रतिने कहा कि स्वामी अब यहाँ रहना उचित नहीं, क्योंकि तुम्हारी माता श्रीरुक्मिणीजी तुम बिन ऐसे दुःखपाय अकुलाती हैं, जैसे बच्छ बिन गाय. इससे अब उचित यहहै, कि असुरशंबरको मार मुझे संग ले द्वारकामें चल माता पिताको दर्शन कीजे और उन्हें सुख दीजे. जो आपके देखनेकी लालसा किये हुए हैं. श्रीशुकदेव जी यह प्रसंग सुनाय राजासे कहने लगे कि, महा-

राज! इसीरीतिसे रतिकी बातें सुनते सुनते प्रद्युम्नजी जब सयाने हुए तब एकदिन खेलते खेलते राजा शंबरके पास गये. वह इन्हें देखतेही अपनेही लड़केके समान लाड़कर बोला कि, इस बालकको मैंने अपना लड़का कर पालाहै. इतनी बातके सुनतेही प्रद्युम्नजीने अतिक्रोधकर कहाकि, मैं बालकहूं वैरी तेरा, अब तू लड़कर देख बल मेरा. यों सुनाय ताल ठोंक सन्मुख हुआ. तब हँसकर शंबर कहने लगा कि, भाई! यह मेरे लिये दूसरा प्रद्युम्न कहाँसे आया? क्या दूध पिलाय मैंने सर्प बढ़ाया, जो ऐसी बातें करताहै. इतना कह फिर बोला अरे बेटा! तू क्यों कहता है ये बैन, क्या तुझे यमदूत आये हैं लैन. महाराज! इतनी बात शंबरके मुखसे सुनतेही वह बोला प्रद्युम्न मेराही है नाम, मुझसे आज तू कर संग्राम. तैंने तो मुझे सागरमें बहाया, पर अब मैं अपना वैर लेने फिर आया. तूने अपने घरमें अपना काल बढ़ाया. अब कौन किसका बेटा. और कौन किसका बाप.

दो०–सुन शंबर आयुध गहे, बढ्यो क्रोध मनभाव ।
मनहुँ सर्पकी पूँछपर, पड्यो अँधेरे पाँव ॥

आगे शंबर अपना दल मँगवाय प्रद्युम्नको बाहर लेआय क्रोध कर गदा उठाय मेघकी भाँति गर्जकर बोला, देखूं अब तुझे कालसे कौन बचाताहै? इतना कह जो उसने झपटके गदा चलाई, तो प्रद्युम्नजीने सहजही काट गिराई; फिर उसने रिसाय कर अग्नि बाण चलाये, इन्होंने जल बाण छोड़ बुझाय गिराये. तब तो शंबरने महाक्रोधकर जितने आयुध उसके पास थे सब प्रहार किये और इन्होंने काट काट गिराये, जद कोई आयुध उसके पास न रहा, तद क्रोधकर धाय प्रद्युम्नजीको जाय लिपटा, और दोनोंसे मल्लयुद्ध होने लगा, कितनी एक बेर पीछे ये उसे आकाशको ले उड़े वहाँ जाय खड्गसे उसका शिरकाट गिराय दिया और फिर आय असुरदलका वध किया; शंबरको मारा सुन रतिने सुख पाया और उसीसमय एक विमान स्वर्गसे आया उसपर रति पति दोनोंचढ़ बैठे और द्वारकाको चले, ऐसे कि जैसे दामिनी समेत सुंदर मेघ जाताहै और चले चले वहाँ

पहुँचे कि, जहाँ कंचनके मंदिर ऊँचे सुमेरुसे जगमगाय रहेथे, विमानसे उतर अचानक दोनों रनवासमें गये, उन्हें देख सब सुंदरी चौंकउठीं और यों समझीं कि, श्रीकृष्ण एक सुंदरी नारी संग ले आये हैं सकुच रहीं पर यह भेद किसीने न जाना कि, प्रद्युम्नहैं. सब कृष्णही कृष्ण कहती थीं इसमें जब प्रद्युम्नजीने कहा कि, हमारे माता पिता कहाँ हैं ? तब रुक्मिणीजी अपनी सखियोंसे कहने लगीं कि, हे सखी ! यह हरिका उनहार कौनहै ? वे बोलीं हमारे समझमें तो ऐसा आता है कि, हो नहो यह श्रीकृष्णजीका पुत्र है. इतनी बातके सुनतेही रुक्मिणीजीकी छातीसे दूधकी धार बह निकली और बाँई बाँह फड़कने लगी व मिलनेको मन घबराया पर विन पतिकी आज्ञा मिल न सकीं, उसकाल वहाँ नारदजीने आय पूर्वकथा कह सबके मनका संदेह मिटाया, तब तो रुक्मिणीजीने दौड़कर पुत्रका शिर चूम उसे छातीसे लगाया और रीति भाँतिसे ब्याहकर बेटे बहूको घरमें लिया. उस समय क्या स्त्री क्या पुरुष सब यदुवंशियोंने आय मंगलाचार कर अति आनंद किया, घर घर बधाई बाजने लगी और सारी द्वारकापुरीमें सुख छायगया.इतनी कथा सुनाय श्रीशुकदेवजी राजापरीक्षितसे कहा कि, महाराज ! ऐसे प्रद्युम्नजी जन्म ले बालकपन अनत बिताय रिपुको मार रतिको ले द्वारकापुरीमें आये. तब घरघर मंगल आनंद हुए बधाये.

इति श्रीलल्लूलालकृते प्रेमसागरे प्रद्युम्नजन्मशंबरवधो नाम
षट्पंचाशत्तमोऽध्यायः ॥ ५६ ॥

अध्याय ५७.

श्रीशुकदेवमुनि बोले कि; महाराज! सत्राजितने पहले तो श्रीकृष्णचंद्रको मणिकी चोरी लगाई, पीछे झूंठ समझ लज्जितहो उसने अपनी कन्या सत्यभामा हरिको व्याहदी. यह सुन राजा परीक्षितने श्रीशुकदेवजीसे पूंछा कि, कृपानिधान ! सत्राजित कौन था मणि उसने कहाँपाई और कैसे हरिको चोरी लगाई फिर क्योंकर झूंठ समझ कन्या व्याहदी. यह तुम मुझे बुझायके कहो. श्रीशुकदेवजी बोले कि, महाराज ! सुनिये मैं सब समझाकर कहताहूं. सत्राजित एक यादव था, जिसने बहुत दिनतक सूर्यकी अति कठिन तपस्या की, तब सूर्य देवताने प्रसन्न हो उसे निकट बुलाय मणिदेकर कहा कि, स्यमंतकमणि इस मणिका नाम, इसमें है सुख संपत्ति का विश्राम. सदा इसे मानियो, और बल तेजमें मेरे समान जानियो. जो तू इसे जप तप संयम व्रत कर ध्यावेगा, तो इससे मुँहमांगा फल पावेगा. जिस देश नगर घरमें यह जावेगा, वहाँ दुःख दरिद्र काल भी न आवेगा. सर्वदा सुकाल रहेगा; और ऋद्धि सिद्धि भी रहेंगी. महाराज! ऐसे कह सूर्यदेवताने सत्राजितको बिदा किया. वह मणि ले अपने घर आया आगे प्रातही उठ वह प्रातःस्नानकर संध्यातर्पणसे निश्चित हो नित्य चंदन,अक्षत,पुष्प,धूप,दीप, नैवेद्य, सहित मणिकी पूजाकिया करे और उस मणिसे जो आठ भार सोना निकले सो ले और प्रसन्न रहे. एक दिन

पूजा करते करते सत्राजितने मणिकी शोभा और कांतिदेख निज मनमें विचारा कि, यह मणि श्रीकृष्णचन्द्रजी को लेजाकर दिखाइये तो भला. यों विचार मणि कंठमें बाँध सत्राजित यदुवंशियोंकी सभामें चला. मणिका प्रकाश दूरसे देख यदुवंशी खड़ेहो श्रीकृष्णचंद्रजीसे कहनेलगे कि, महाराज ! तुम्हारे दर्शनकी अभिलाषा किये सूर्य चला आता है. तुमको ब्रह्मा रुद्र इंद्रादि सब देवता ध्यावते हैं और आठ पहर ध्यान धर तुम्हारा यश गावते हैं. तुम हो आदिपुरुष अविनाशी, तुम्हे नित सेवती है कमला भई दासी.

तुमहो सब देवनके देव । कोइ नहिं जानत तुम्हरा भेव ॥
तुम्हरेगुणअरुचरितअपार । क्योंप्रभुछिप्योआयसंसार ॥

महाराज ! जब सत्राजितको आता देख सब यदुवंशी यों कहने लगे, तब हरि बोले कि यह सूर्य नहीं सत्राजित यादव है. इसने सूर्यकी तपस्याकर एक मणिपाई है उसकाप्रकाश सूर्य के समान है वही मणिबाँधे चला आता है. महाराज ! इतनी बात जबतक श्रीकृष्णजी कहें तबतक वह आयसभामें बैठा, जहाँ यादव पंसासार खेल रहेथे. मणिकी कांति देख सबका मन मोहित हुआ और श्रीकृष्णचंद्र भीदेख रहे, तब सत्राजित कुछ मनहीं मन समझ उस समय विदा हो अपने घर गया आगे वह मणि गलेमें बाँध नित आवे. एकदिन सब यदुवंशियोंने हरिसे कहा कि, महाराज ! सत्राजितसे मणि ले राजाउग्रसेनको दीजे और जगतमें यश लीजे, यह मणि इसे नहीं फबती, यह राजाके योग्य है. इस बातके सुनतेही श्रीकृष्णजीने हँसते हँसते सत्राजितसे कहा कि, यह मणि राजाको दो और संसारमें यश बड़ाई लो. देनेका नाम सुनतेही वह प्रणामकर चुप चाप वहाँसे उठ सोच विचार करता अपने भाईके पास जाबोला कि, आज श्रीकृष्णजीने मुझसे मणि माँगी और मैंने न दी. इतनी बात जो सत्राजितके मुँहसे निकली तो क्रोधकर उसके भाई प्रसेनने वह मणिले अपने गलेमें डाली और शस्त्र लगाय घोड़ेपर चढ़ अहेरको निकला. महावनमें जाय धनुष चढ़ाय लगा साबर, चितल

पाढे और मृग मारने, इसमें एक हरिण जो उसके आगेसे झपटा, तो इसने भी खिझलायके उसके पीछे घोड़ा दपटा, और चला चला अकेला कहाँ पहुँचा कि, जहाँ युगान युगकी एक बड़ी अंधी गुफाथी, मृग और घोड़ेके पाँवका आहट पाय उसमेंसे एक सिंह निकला, वह इन तीनोंको मार मणि ले उस गुफामें बड़गया. मणिके जातेही उस महा अँधेरी गुफामें ऐसा प्रकाश हुआ कि, पातालतक चाँदना होगया. वहाँ जाम्बवंत नाम रीछ जो श्रीरामचंद्रके साथ रामावतारमें था, सो त्रेतायुगसे तहाँ कुटुम्ब समेत रहताथा. उसने गुफामें उजाला देख उठधाया और चला चला सिंहके पास आया फिर वह सिंहको मार मणि ले अपनी स्त्रीके निकट गया, उसने मणिले अपनी पुत्रीके पालनेमें बाँधी वह उसे देख नित हँस हँस खेला करे. और सारे स्थानमें आठप्रहर प्रकाशरहे. इतनी कथा कह श्रीशुकदेवजी बोले कि, महाराज ! मणि यों गई, और प्रसेनकी यह गति भई, तब प्रसेनके साथ जो लोग गयेथे वे आकर सत्राजितसे कहे कि, महाराज !

हमकोत्यागअकेलोधायो । जहाँगयोतहँखोजनपायो ॥
कहत न बने ढूंढि फिरि आये। कहूं प्रसेन न वनमें पाये ॥

इतनी बातके सुनतेही सत्राजितने खाना पीना छोड़ अति उदास हो चिंताकर मनहीमन कहने लगा, यह बात श्रीकृष्णकी है, जो मेरे भाईको मणिके लिये मार मणि ले घरमें आय बैठा है. पहले मुझसे माँगताथा मैंने न दी अब उसने यों ली. ऐसा वह मनहींमन कहै और रात दिन महा चिंतामें रहै एकदिन वह रात्रि समय स्त्रीके पास सेजपर तन क्षीण मनमलीन मष्टमारे बैठा मनहींमन कुछ विचार करताथा, कि उसकी नारीने कहा.

कहा कंत मन शोचत रहौ । मोसों भेद आपनो कहौ ॥

सत्राजित बोला कि स्त्रीसे कठिन बातका भेद कहना उचित नहीं. क्योंकि उसके पेटमें बात नहीं रहती; जो घरमें सुनती है सो बाहर प्रकाश करदेतीहै यह अज्ञान इसे किसी बातका ज्ञान नहीं भला हो कै

बुरा, इतनी बातके सुनतेही सत्राजितकी स्त्री खिझलाकर बोली कि, मैंने कब कोई बात घरमें सुन बाहर कही है. जो तुम कहते हो, सब नारी क्या समान होतीहैं? यों सुनाय फिर उसने कहा कि जबतक तुम अपने मनकी बात मेरे आगे न कहोगे तबतक मैं अन्न पानी भी न खाऊंगी यह वचन नारीसे सुन सत्राजित बोला, कि झूंठ सचकी तो भगवान् जाने, पर मेरे मनमें एक बात आई है सो मैं तेरे आगे कहताहूं, परंतु किसीके सोंहीं मत कहियो, उसकी स्त्री बोली अच्छा मैं न कहूंगी तब सत्राजित. कहने लगा कि, एकदिन श्रीकृष्णजीने मुझसे मणि माँगी और मैंने न दी इससे मेरे जीमें आताहै कि, उसीने मेरे भाईको वनमें जाय मारा और मणि ली यह उसका कामहै, दूसरेकी सामर्थ्य नहीं जो ऐसा काम करे. इतनी कथा कह श्रीशुकदेवजी बोले कि, महाराज ! इस बातके सुनतेही उसको रातभर नींद न आई और सात पाँचकर रैनि गँवाई; भोर होतेही उसने जा सखी सहेली और दासियोंसे कहा कि, श्रीकृष्ण-चन्द्रजीने प्रसेनको मार और मणि ली, यह बात रात मैंने अपने कंतके मुखसे सुनीहै परंतु तुम किसीके आगे मत कहियो, वे वहाँसे तो भला कह चुप चाप चली आईं, पर अचरजकर एकांत बैठ आपसमें चर्चा करने लगीं, निदान एक दासीने यह बात श्रीकृष्णचन्द्रके रनिवासमें जा सुनाई, सुनतेही सबके जीमें आया कि, जो सत्राजितकी स्त्रीने यह बात कहीहै तो झूंठ न होगी, ऐसे समय उदास हो सब रनिवास श्रीकृष्णको बुरा कहने लगा, इसबीच किसीने आय श्रीकृष्णचंद्रजीसे कहा कि, महा-राज ! तुम्हें प्रसेनको मारने; और मणिके लेने का कलंक लगचुका, तुम क्या बैठे करते हो कुछ इसका उपाय करो.

इतनी बातके सुनतेही श्रीकृष्णजी पहले तो घबराये. पीछे कुछ सोच समझ वहाँ आये. जहाँ उग्रसेन वसुदेव और बलराम सभामें बैठेथे; और बोले कि, महाराज ! हमें सबलोग यह कलंक लगातेहैं कि कृष्णने प्रसेनको मार मणि लेली, इससे आपकी आज्ञा ले प्रसेन और मणिके ढूंढनको जातेहैं जिससे यह अपयश छूटे. यों कह श्रीकृष्णजी वहाँ से आय कितनेएक यदुवंशियों और प्रसेनके साथियोंको साथ ले वनको

चले कितनीएक दूर जाय देखें तो घोड़ोंके चरणचिह्न दृष्टि पड़े, उन्हींको देखते २ वहाँ जाय पहुँचे जहाँ सिंहने तुरंग समेत प्रसेनको मार खायाथा. दोनोंकी लोथ और सिंहके पाँवोंके चिह्न देख सबने जाना कि उसे सिंहने मार खाया. यह समझ मणि न पाय श्रीकृष्णचंद्र सबको साथ लिये लिये वहाँ गये. जहाँ वह औंड़ी अँधेरी महाभयावनी गुफाथी. उस्के द्वारपर देखते क्या हैं कि, सिंह मारा पड़ाहै पर मणि वहाँ भी नहीं ऐसा अचरज देख सब श्रीकृष्णचंद्रसे कहने लगे कि, महाराज! इस वनमें ऐसा बली जंतु आया जो सिंहको मार मणिले गुफामें पैठा, अब इसका कुछ उपाव नहीं. जहाँतक ढूंढनेका धर्मथा तहाँतक आपने ढूंढा. तुह्मारा कलंक छूटा, अब नाहरके शिर अपयश पड़ा. श्रीकृष्णजी बोले चलो इस गुफामें पैसके देखें कि, नाहरको मार मणि कौन लेगया. वे सब बोले कि महाराज! जिस गुफाका मुख देखे हमें डर लगता है उसमें पैसेंगे कैसे? वरन् हम तुमसे भी विनतीकर कहते हैं कि, इस महाभयावनी गुफामें आप भी न जाइये अब घरको पधारिये. हम सब मिल नगरमें जाय कहेंगे कि, प्रसेनको मार सिंहने मणि ली और सिंहको मार कोई जंतु एक अति डरावनी औंड़ी गुफामें गया. यह हम सब अपनी आँखोंसे देख आये, श्रीकृष्णचंद्रजी बोले मेरा मन मणिमें लगाहै, मैं अकेला गुफामें जाताहूं दशदिन पीछे आऊँगा. तुम दशदिनतक यहाँ रहियो. इसमें विलंब होय तो घर जाय सँदेशा कहियो, महाराज! इतनी बात कह हरि उस अँधेरी भयावनी गुफामें पैठे; और चले चले वहाँ पहुँचे, जहाँ जाम्बवंत सोताथा, और उसकी स्त्री अपनी लड़कीको खड़ी पालनेमें झुलातीथी वह प्रभुको देख भयखाय पुकारी और जाम्बवंत जागा, तो धाय हरिसे लिपटा; और मल्लयुद्ध करने लगा. जब उसका कोई दाँव और बल हरिपर न चला, तब मनहींमन विचारकर कहने लगा कि, मेरे बलके तो हैं लक्ष्मण राम और इस संसारमें ऐसा बली कौनहै जो मुझसे करे संग्राम? महाराज! जाम्बवंत मनहींमन ज्ञानसे यों विचार फेर प्रभुका ध्यानकर बोला.

ठाढो भयो जोरिकै हाथ। बोल्यो दरशदेहुरघुनाथ॥
अंतर्यामी मैं तुम जाने। लीला देखतही पहिचाने॥
भली करी लीन्हों अवतार। करिहौ दूरि भूमिको भार॥
त्रेतायुगते इहिठाँ रह्यो। नारद भेद तुम्हारो कह्यो॥
मणिके काजै प्रभु इत ऐहैं। तबहीं तोको दरशन देहैं॥

इतनी कथा कह श्रीशुकदेवजीने राजा परीक्षितसे कहा कि हे राजा! जिस समय जाम्बवंतने प्रभुको जान यों बखान किया, तिसीकाल श्रीमुरारी भक्तहितकारीने जाम्बवंतकी लग्न देख मझहो रामका वेष कर धनुषबाण धर दर्शन दिया. तब जाम्बवंतने अष्टांग प्रणामकर खड़ेहो हाथ जोड़ अति दीनतासे कहा कि, हे कृपासिंधु, दीनबंधु! जो आपकी आज्ञा पाऊँ तो अपना मनोरथ कह सुनाऊँ. प्रभु बोले अच्छा कह, तब जाम्बवंतने कहा कि हे पतितपावन! दीनानाथ! मेरे चित्तमें यों है कि, यह कन्या जाम्बवती आपको व्याहदूं और जगत्में यश बड़ाई लूं. भगवान्ने कहा जो तेरी इच्छामें ऐसा आया तो हमें भी प्रमाण है. इतना वचन प्रभुके मुखसे निकलतेही जाम्बवंतने पहले तो श्रीकृष्णकी चंदन अक्षत धूप दीप नैवेद्यसे पूजा की. पीछे वेदकी विधिसे अपनी बेटी व्याहदी और उसके यौतुकमें वह मणि भी धरदी.

इतनी कथा सुनाय श्रीशुकदेवमुनि बोले कि, हे राजा! श्रीकृष्णचंद्र आनंदकंद तो मणि समेत जाम्बवतीको ले यों गुफासे चले; और जो यादव गुफाके मुँहपर प्रसेन और श्रीकृष्णके साथी खड़ेथे अब तिनकी कथा सुनिये, गुफाके बाहर उन्हें जब अट्ठाईस दिन बीते; और हरि न आये तब वे वहाँसे निराशहो अनेक अनेक प्रकारकी चिंता करते और रोते पीटते द्वारकामें आये ये समाचार पाय सब यदुवंशी निपट घबराये, और श्रीकृष्णका नाम लेले महाशोक कर रोने पीटने लगे; और सारे रनिवासमें कुहराम पडगया निदान सब रानियाँ अति व्याकुल हो तन क्षीण मन मलीन राजमंदिरसे निकल रोती

पीटती वहाँ आई जहाँ नगरके बाहर एक कोसपर देवीका मंदिर था, पूजाकर गौरीको मनाय हाथ जोड शिरनाय कहने लगीं हे देवि ! तुझे सुर नर मुनि सब ध्यावते हैं; और तुझसे जो वर माँगे हैं सो पावते हैं, तू भूत भविष्य वर्तमानकी सब बात जानतीहै, कह श्रीकृष्णचंद्र आनंद-कंद कब आवेंगे ? महाराज ! सब रानियाँ तो देवीके द्वार धरना दे यों मनाय रहीथीं; उग्रसेन बलदेव आदि सब यादव महाचिंतामें बैठेथे कि, इसीबीच श्रीकृष्णचंद्र अविनाशी द्वारकावासी हँसते हँसते जाम्बवतीको लिये आय राजसभामें खड़े हुए, प्रभुका चन्द्रमुख देख सबको आनंद हुआ. और यह शुभ समाचार पाय सब रानियाँ भी देवी पूज घर आई; और मंगलाचार करनेलगीं, इतनी कथा कह श्रीशुकदेवजी बोले कि, महाराज ! श्रीकृष्णजीने सभामें बैठ-तेही सत्राजितको बुला भेजा और वह मणि देकर कहा कि, यह मणि हमने न लीथी तुमने झूंठमूठ हमको कलंक दियाथा.

यहमणिजाम्बंतहीलीन्हीं । सुतासमेत मोहिंतिनदीन्हीं ॥
मणिलेतबहिंचल्यो शिरनाय । सत्राजितमनसोचतजाय ॥
हरिअपराधकियो मैं भारी । अनजाने दीन्हीं कुलगारी ॥
यादवपतिहिकलंकलगायो । मणिके काजे वैर बढायो ॥
अबयहदोषकटैसो कीजै । सतिभामामणिकृष्णहिंदीजै ॥

महाराज ! ऐसे मनही मन सोच विचार करता मणि लिये मनमारे सत्राजित अपने घर गया और उसने सब अपने जीका विचार स्त्रीसे कह सुनाया. उसकी स्त्री बोली स्वामी ! यह बात तुमने अच्छी विचारी. सत्यभामा श्रीकृष्णको दीजै और जगतमें यश लीजै. इतनी बातके सुनतेही सत्राजितने एक ब्राह्मणको बुलाय शुभ लग्न मुहूर्त ठहराय रोरी अक्षत रुपया नारियल एक थालीमें धर पुरोहितके हाथ श्रीकृष्णचंद्रके यहाँ टीका भेज दिया, श्रीकृष्णजी बड़ी धूमधामसे मौर बांध व्याहन आये, तब सत्राजितने सब रीति भाँति कर वेदकी विधिसे कन्यादान किया और बहुतसा धनदे यौतुकमें उस मणिको भी धरदिया

मणि को देखतेही श्रीकृष्णजीने उसमेंसे निकाल बाहर किया और कहा कि, यह मणि हमारे किसी कामकी नहीं, क्योंकि तुमने सूर्यकी तपस्या कर पाई; हमारे कुलमें श्रीभगवान् छुड़ाय और देवताकी दी वस्तु नहीं लेते यह तुम अपने घरमें रक्खो, महाराज ! श्रीकृष्णचंद्रजीके मुखसे इतनी बात निकलतेही सत्राजित मणि ले लजायरहा और श्रीकृष्णजी सत्यभामाको ले बाजे गाजेसे निजधाम पधारे और आनंदसे सत्यभामा समेत राजमंदिरमें जाविराजे, इतनी कथा सुन राजापरीक्षितने श्रीशुकदेवजीसे पूंछा कि कृपानिधान ! श्रीकृष्णजीको कलंक क्यों लगा ? सो कृपाकर कहो, शुकदेवजी बोले.

दो०—चाँद चौथिको देखियो. मोहन भादौंमास ।
तातें लग्यो कलंक यह. अति मन भयो उदास ॥

और सुनो—

जो भादौंकी चौथिको. चाँद निहारे कोय ।
यहप्रसंग श्रवणनसुनै. ताहिकलंक न होय ॥

इति श्रीलल्लूलालकृते प्रेमसागरे जाम्बवतीसत्यभामाविवाहवर्णनो नाम सप्तपञ्चाशत्तमोऽध्यायः ॥ ५७ ॥

अध्याय ५८.

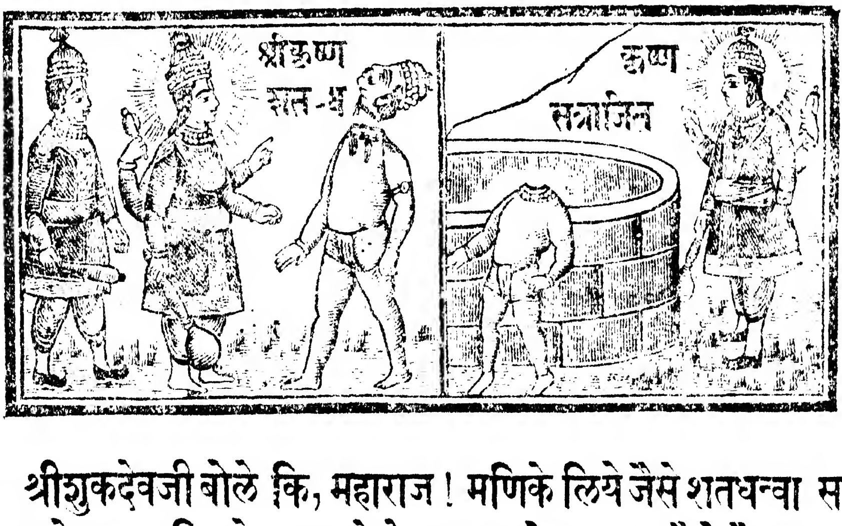

श्रीशुकदेवजी बोले कि, महाराज ! मणिके लिये जैसे शतधन्वा सत्राजितको मार मणि ले अक्रूरको दे द्वारका छोड़ भागा तैसे मैं सब कथा

कहताहूं तुम चित्त दे सुनो, एक दिन हस्तिनापुरसे आय किसीने बलराम सुखधाम और श्रीकृष्णचंद्र आनंदकंदसे यह सँदेशा कहा कि–

दो०–पांडव न्योते अंधसुत, घरके बीच सुवाय।
अर्द्धरात्रि चहुँ ओरते, दीन्ही आग लगाय॥

इतनी बातके सुनतेही दोनों भाई अति दुःखपाय घबराय तत्काल दारुक सारथीसे अपना रथ मँगवाय तिसपर चढ़ हस्तिनापुरको गये, और रथसे उतर कौरवोंकी सभामें जाय खड़े रहे वहाँ देखते क्या हैं कि, सब तन छीन मन मलीन बैठे हैं, दुर्योधन मनहींमन कुछ सोचताहै, भीष्म नयनोंसे जल मोचताहै, धृतराष्ट्र बड़ा दुःख करताहै, द्रोणाचार्यकी भी आँखोंसे पानी चलताहै, विदुरजी भी पछताते, गांधारी उसके पास आय बैठी, और भी जो कौरवोंकी स्त्रियाँ थीं सोभी पाँडवोंकी सुधिकरकर रो रहीं थीं और सारी सभा शोकमय होरही थी. महाराज ! वहाँकी यह दशा देख श्रीकृष्ण बलरामजी भी उनके पास जा बैठे, और इन्होंने पांडवोंका समाचार पूंछा पर किसीने कुछ भेद न कहा सब चुप होरहे.

इतनी कथा कह श्रीशुकदेवजीने राजा परिक्षितसे कहा कि, महाराज ! श्रीकृष्ण बलरामजी तो पाँडवोंके जलनेका समाचार पाय हस्तिनापुरको गये; और द्वारकामें शतधन्वानाम एक यादवथा कि, जिसने पहले ! सत्यभामा माँगीथी. तिसके यहाँ अक्रूर और कृतवर्मा मिलकर गये, और दोनोंने उससे कहा कि, हस्तिनापुरको गये श्रीकृष्ण बलराम, अब आय पड़ा है तेरा दाँव. सत्राजितसे तू अपना वैर ले, क्योंकि उसने तेरी बडी चूक की जो तेरी माँग श्रीकृष्णको दी और तुझे गाली चढ़ाई अब यहाँ उसका कोई नहीं सहाई, इतनी बातके सुनतेही शतधन्वा अतिक्रोधकर उठा, और रात्रिसमय सत्राजितके घर जा ललकारा निदान छलकर उसे मार वह मणि ले आया, तब शतधन्वा अकेला घरमें बैठ कुछ सोच विचारकर मनहींमन पछताय कहने लगा–

मैं यह वैर कृष्णसो कियो। मतो अक्रूर केर मन लियो॥

दो०-कृतवर्मा अक्रूर मिलि, मतो दियो मोहिं आय।
साधु कहै जो कपटकी, तासों कहा बसाय ॥

महाराज इधर शतधन्वा तो इस भाँति अछताय पछताय बार बार कहताथा कि, होनहारसे कुछ न बसाय, कर्मकी गति किसीसे जानी न जाय; और इधर सत्राजितको मरा निहार, उसकी नारी रोरो कंत कंत कह उठी पुकार. उसके रोनेकी ध्वनि सुन सब कुटुम्बके लोग क्या स्त्री क्या पुरुष अनेक अनेक भाँतिकी बातें कह कह रोने पीटने लगे; और सारे घरमें कुहराट पड़गया पिताका मरना सुन उसी समय सत्यभामाजी आय सबको समझाय बुझाय बापकी लोथ तेलमें डलवाय अपना रथ मँगवाय तिसपर चढ़ श्रीकृष्णचंद्र आनंदकंदके पास चलीं; और रात दिनके बीच जा पहुँचीं-

देखतही उठि बोले हरी । घरहै कुशल क्षेम सुंदरी ॥
सतिभामा कहि जोरे हाथ । तुमबिनकुशलकहाँयदुनाथ ॥
हमहिं विपति शतधन्वा दई । मेरो पिता हत्यो मणि लई ॥
धरे तेलमें श्वशुर तिहारे । करो दूरि सब शूल हमारे ॥

इतनी बात कह सत्यभामाजी श्रीकृष्ण बलदेवजीके सोहीं खड़ी हो हायपिता ! हायपिता ! ! कर धाहमार रोने लगीं, उनका रोना सुन श्रीकृष्ण बलरामजीने भी पहले तो अति उदास हो रोकर लोकरीति दिखाई पीछे सत्यभामाको आशा भरोसा दे ढाढ़स बँधाय वहाँसे साथ ले द्वारकामें आये. श्रीशुकदेवजी बोले कि, महाराज ! द्वारकामें आतेही श्रीकृष्णचंद्रजीने सत्यभामाको महादुःखी देख प्रतिज्ञाकर कहा कि, सुंदरी ! तुम अपने मनमें धीरज धरो, और किसी बातकी चिंता मत करो, जो होना था सो तो हुआ, पर अब मैं शतधन्वाको मार तुम्हारे पिताका बैर लूंगा तब मैं और काम करूंगा-

महाराज ! राम कृष्णके आतेही शतधन्वा अति भय खाय घर छोड़ मनहीमन यह कहताथा, कि-पराये कहे मैंने श्रीकृष्णजीसे बैर किया

अब शरण किनको ढूँढ़ कृतवर्माके पास आया और हाथ जोड़ अति विनती कर बोला कि, महाराज! आपके कहेसे मैंने किया यह काम, मुझपर कोपे हैं श्रीकृष्ण और बलराम; इससे मैं भागकर तुम्हारी शरण आयाहूं मुझे कहीं रहनेको ठौर बताइये, शतधन्वासे यह बात सुन कृतवर्मा बोला कि, सुनो हमसे कुछ नहीं होसकता. जिसका वैर श्रीकृष्णचंद्रसे भया, सो नर सबहीसे गया, तू क्या नहीं जानताथा? कि, हैं अतिबली मुरारी, तिनसे बैर किये होगी हारि हमारी. किसीके कहेसे क्या हुआ अपना बल विचार काम क्यों न किया? संसारकी रीति है कि, वैर ब्याह और प्रीति समानहीसे कीजे, तू हमारा भरोसा मत रख. हम श्रीकृष्णचन्द्र आनंदकंदके सेवक हैं, उनसे वैर करना हमें नहीं शोभता, जहाँ तेरे सींग समायँ तहाँ जा. महाराज! इतनी बात सुन शतधन्वा निपट उदास हो वहाँसे चल अक्रूरके पास आया, और हाथ बाँध शिरनाय विनतीकर हाहा खाय कहने लगा कि—

प्रभुतुमहोयादवपति ईश। तुम्हें नवावतहैं सब शीश॥
साधु दयालु धरमतुमधीर। दुखसह आप हरत परपीर॥
वचन कहेकी लाजहै तुम्हें। शरण आपनी राखो हमें॥

मैंने तुम्हाराही कहा मान यह काम किया अब तुम हमें कृष्णके हाथसे बचावो. इतनी बातके सुनतेही अक्रूरजीने शतधन्वासे कहा कि, तू बड़ा मूरखहै जो हमसे ऐसी बात कहताहै, क्या तू नहीं जानता कि श्रीकृष्णचंद्र सबके कर्त्ता दुःखहर्त्ता हैं, उनसे वैर कर संसारमें कब कोई रह सकताहै, कहनेवालेका क्या बिगड़ा? अब तो तेरे शिर पर आनपड़ी कहाहै, "सुर नर मुनिकी याही रीति, स्वारथ लागि करैं सब प्रीति" और जगत्में बहुतभाँतिके लोग हैं, सो अनेक अनेकप्रकारकी बातें अपने स्वार्थकी कहते हैं, इसमें मनुष्यको उचित है कि कहेपर न जाय, जो काम करे तिसमें पहले अपना भला बुरा विचार ले, पीछे उस काममें पाँवदे तूने बे समझ बूझकर किया है काम, अब तुझे कहीं जगत्में रहनेको नहीं है धाम. जिसने कृष्णसे वैर किया, वह फिर न जिया. जहाँ भागके रहा

तहाँ मारा गया. मुझे मरना नहीं जो तेरा पक्ष करूं. संसारमें जीव सबको प्याराहै. महाराज ! अक्रूरजीने जब शतधन्वाको यों रूखे सूखे वचन सुनाये, तब तो निराश हो जीनेकी आश छोड़ मणि अक्रूरजीके पास रख रथपर चढ़ नगरछोड़ भागा और उसके पीछे रथपर चढ़ श्रीकृष्ण बलरामजी भी उठ दौड़े और चलते चलते उन्होंने उसे सौ योजनपर जाय लिया. उनके रथकी आहटपाय शतधन्वा अति घबराय रथसे उतर मिथिलापुरीमें जा बढ़ा. प्रभुने उसे देख क्रोधकर सुदर्शनचक्रको आज्ञादी कि तू अभी शतधन्वाका शिर काट. प्रभुकी आज्ञा पातेही सुदर्शनचक्रने उसका शिरजा काटा. तब श्रीकृष्णचंद्रने उसके पास जाय मणि ढूंढी पर न पाई. फिर उन्होंने बलरामजीसे कहा, कि भाई ! शतधन्वाको मारा पर मणि न पाई. बलरामजी बोले कि, भाई ! वह मणि किसी बड़े पुरुषने पाई. तिसने हमें लाय न देखाई. वह मणि किसीके पास छिपनेकी नहीं तुम देखियो निदान कहीं न कहीं प्रगटेगी. इतनी बात कह बलदेवजीने श्रीकृष्णचंद्रसे कहा कि, भाई ! अब तुम तो द्वारकापुरीको सिधारो, और हम मणिके खोजनेको जातेहैं जहाँ पावेंगे तहाँसे ले आवेंगे.

इतनी कथा कह श्रीशुकदेवजीने राजा परीक्षितसे कहा, कि महाराज! श्रीकृष्णचन्द्र आनंदकंद तो शतधन्वाको मार द्वारकापुरीको पधारे, और बलराम सुखधाम मणिके खोजनेको सिधारे देश देश नगर नगर गाँव गाँवमें ढूंढ़ते ढूंढते बलदेवजी चले चले अयोध्यापुरीमें जा पहुँचे; इनके पहुँचनेके समाचार पाय अयोध्याका राजा दुर्योधन उठ धाया. आगे बढ भेंटकर भेंटदे प्रभुको गाजे बाजेसे पाटंबरके पाँवड़े डालता निज मंदिरमें ले आया सिंहासनपर बिठाय अनेकप्रकार से पूजाकर भोजन करवाय अति विनतीकर शिरनाय हाथ जोड़ सन्मुख खड़ाहो बोला-कृपासिंधु ! आपका आना इधर कैसे हुआ सो कृपाकर कहिये ? महाराज ! बलदेव जीने उसके मनकी लग्न देख मग्न हो अपने जानेका सब भेद कह सुनाया. इतनी बात सुन राजादुर्योधन बोला कि, नाथ ! वह मणि कहीं किसीके पास न रहेगी कभी आपसे आप प्रकाश हो रहेगी. यों सुनाय फिर-

हाथ जोड़ कहनेलगा दीनदयालु ! मेरे बड़े भाग्य जो आपका दर्शन मैंने घरबैठे पाया, और जन्म जन्मका पाप गँवाया. अब कृपाकर हमारे मनकी अभिलाषा पूरी कीजे और कुछ दिवस रह शिष्यकर गदा युद्ध सिखाय जगतमें यश लीजे, महाराज! दुर्योधनके इतनी बात सुन बलराम जीने उसे शिष्य किया कुछ दिन वहाँ रह सब गदा युद्धकी विद्या सिखाई. पर मणि वहाँ भी सारे नगरमें खोजी और न पाई. अरु श्रीकृष्णजीके पहुँचनेके उपरांत कितने एक दिन पीछे बलरामजी भी द्वारकानगरीमें आये. तो श्रीकृष्णजीने सब यादव साथले सत्राजितको तेलसे निकाल अग्निसंस्कार किया और अपने हाथों दाह दिया. जब श्रीकृष्णजी क्रियाकर्मसे निश्चित हुए तब अक्रूर कृतवर्मा कुछ आपसमें सोच विचारकर श्रीकृष्णजीके पास आय उन्हें एकांत ले जाय मणि दिखायकर बोले कि महाराज! यादव सबही मूरख भये और मायामें मोह गये. तुम्हारा सुमिरण ध्यान छोड़ धनान्ध होरहेहैं, जो ये अब कुछ कष्ट पावें, तो प्रभुकी सेवामें आवें इस लिये हम नगर छोड़ मणि ले भागते हैं, जब हम इनसे आपका भजन सुमिरण करावेंगे, तभी द्वारकापुरीमें आवेंगे इतनी बात कह अक्रूर और कृतवर्मा सब कुटुम्ब समेत आधीरातको श्रीकृष्णचंद्रके भेदसे द्वारकापुरीसे भागे, ऐसे कि किसीने न जाना कि किधरगये भोर होतेही सारे नगरमें यह चर्चा फैली कि न जानिये रातकी रातमें अक्रूर और कृतवर्मा कुटुंब समेत किधर गये और क्या हुए? इतनी कथा कह श्रीशुकदेवजी बोले कि, महाराज! इधर द्वारकापुरीमें नित घर घर यह चर्चा होने लगी; और उधर अक्रूरजी प्रथम प्रयागमें जाय मुंडन करवाय त्रिवेणी न्हाय बहुतसा दान पुण्यकर तहाँ हरिपैड़ी बँधवाय गयाको गये, वहाँ भी फल्गूनदीके तीर बैठ शास्त्रकी रीतिसे श्राद्ध किया; और गयालियोंको जिमाय बहुतही दान दिया. पुनि गदाधरके दर्शन करके तहाँसे चले काशीपुरीमें आये. इनके आनेका समाचार पाय इधर उधरके राजा सब आय भेंटकर भेंट धरने लगे; और ये वहाँ यज्ञ दान तप व्रतकर रहने लगे. इसमें कितने एक दिन बीच श्रीमुरारी भक्तहितकारीने अक्रूरजीका बुलाना जीमें ठान बलरामजीसे

आनके कहा कि, भाई! अब प्रजाको कुछ दुःख दीजे और अक्रूरजीको बुलवालीजै; बलदेवजी बोले. महाराज! जो आपकी इच्छामें आवे सो कीजै, और साधुवोंको सुख दीजे; इतनी बात बलरामजीके मुखसे निकलतेही श्रीकृष्णचंद्रजीने ऐसा किया, कि द्वारकापुरीमें घर घर ताप, तिजारी, मिरगी, क्षयी, दाद, खाज, आधाशीशी, कोढ़, महाकोढ़, जलंधर, भगंदर, कठोदर, अतीसार, आँवमरोड़ा, खाँसी, शूल, अर्द्धांग, शीतांग, झोलात, सन्निपात आधिव्याधि फैलगई. और चार महीने वर्षा भी नहीं हुई, तिससे सारे नगरके नदी नाले सरोवर सूख गये. तृण अन्न भी कुछ न उपजा. नभचर, जलचर, थलचर, जीव जंतु, पक्षी, और ढोर लगे व्याकुल हो, सूखरमरने और पुरवासी सारे भुखोंके मारे त्राहि२करने. निदान सब नगरनिवासी महाव्याकुल हो घबराय श्रीकृष्णचंद्र दुःख निकंदनजीके पास आय और अति गिड़गिड़ाय अधिक अधीनता कर हाथ जोड़ शिरनवायकर कहने लगे कि—

हमतो शरण तिहारी रहैं। कष्ट महा अब क्योंकर सहैं॥
मेघ न वरष्यो पीड़ा भई। कहा विधाताने यह ठई॥

इतना कह फिर कहने लगे कि, हे द्वारकानाथ दीनदयालु! हमारे तो कर्त्ता दुःखहर्त्ता तुम्हीं हो. तुम्हैं छोड़ कहाँ जायँ और किससे कहैं? यह उपाधें बैठे बिठाये में कहाँसे आई और क्यों हुई सो. कृपाकर कहिये?

श्रीशुकदेवमुनि बोले कि, महाराज! इतनीबात के सुनतेही श्रीकृष्णजीने उनसे कहा कि, सुनो जिस पुरसे साधुजन निकल जाता है, तहाँ आपसे आप आपत्काल दरिद्र दुःख आताहै, जबसे अक्रूरजी इस नगरसे गये हैं तभीसे यह गति हुई है, जहाँ रहते हैं साधु सत्यवादी और हरिदास. तहाँ होताहै अशुभ अकाल विपत्तिका नाश; इंद्र रखता हरिभक्तोंका स्नेह, इसलिये उस नगरमें भली भाँति वर्षता है मेह, इतनीबात के सुनतेही सब यादव बोल उठे कि महाराज! आपने सत्य कहा, यह बात हमारे भी जीमें आई, क्योंकि अक्रूरके पिताका नाम सुफलकहै, वह भी बड़ा साधु सत्यवादी धर्मात्माहै.

जहाँ वह रहताहै तहाँ कभी दुःख और दरिद्र नहीं होताहै अकाल, सदा समयपर मेघ वर्षताहै उससे होताहै सुकाल, और सुनिये कि, एक-समय काशीपुरीमें बड़ा दुर्भिक्ष पड़ा, तहाँ काशीको राजा सुफलकको बुलाय लेगया. महाराज! सुफलकके जातेही उस देशमें मेह मनमानता वर्षा समो हुआ और सबका दुःख गया, पुनि काशीपुरीके राजाने अपनी लड़की सुफलकको व्याह दी वे आनंदसे वहाँ रहने लगे. उस राजकन्याका नाम गांदिनी था तिसीका पुत्र अक्रूर है, इतना कह सब यादव बोले कि, महाराज! हम तो यह बात आगेसे जानतेथे अब जो आप आज्ञाकीजे सो करें, श्रीकृष्णचंद्र बोले कि, तुम अति आदर मान कर अक्रूरजीको जहाँ पावो तहाँसे ले आवो; यह वचन प्रभुके मुखसे निकलतेही सब यादव मिल अक्रूरजीके ढूँढ़नेको निकले और चले चले वाराणसीपुरीमें पहुँचे, अक्रूरजीसे भेटकर भेटदे हाथ जोड़ शिरनाय सन्मुख खड़ेहो बोले.

चलोनाथबोलतबलश्याम । तुमबिनपुरवासीहैंविराम ॥
जितहीतुमतितहीसुखवास ।तुमबिनकष्टदरिद्रनिवास ॥
यद्यपि पुरमें श्रीगोपाल।तऊ कष्टदे पर्‍यो अकाल॥
साधुनके वश श्रीपतिरहैं । तिनते सब सुख संपतिलहैं ॥

महाराज! इतनी बातके सुनतेही अक्रूरजी वहाँसे अति आतुरहो कुटुंबसमेत कृतवर्माको साथ ले सब यदुवंशियोंको लिये बाजे गाजेसे चल खड़े हुए और कितने एक दिनोंके बीच आ सब समेत द्वारकापुरी में पहुँचे. इनके आनेका समाचार पाय श्रीकृष्णजी और बलराम आगे बढ़आय इन्हें अतिमान सन्मानसे नगरमें लिवायलेगये. हे राजा! अक्रूरजीको पुरीमें प्रवेश करतेही मेह वर्षा और समो हुआ. सारे नगरका दुःख दरिद्र बहगया. अक्रूरकी महिमा हुई. सब द्वारकावासी आनंद मंगलसे रहने लगे.

आगे एकदिन श्रीकृष्णचन्द्र आनंदकंदने अक्रूरजीको निकट बुलाय एकांत ले जायके कहाकि, तुमने सत्राजितकी मणि ले क्याकी? वह बोला

महाराज ! मेरे पास है. फिर प्रभुने कहा जिसकी वस्तु तिसको दीजे, और वह न होय तो उसके पुत्रको सौंपिये, पुत्र न होय तो उसकी स्त्रीको दीजे, स्त्री न होय तो उसके भाईकोदीजे भाई न होय तो उसके कुटुंबको सौंपिये, कुटुंब भी न होय तो उसके गुरुपुत्रको दीजे, गुरुपुत्र न होय तो ब्राह्मणको दीजिये. पर किसीका द्रव्य आप न लीजिये. यह न्याय है, इससे अब तुम्हें उचितहै, कि सत्राजितकी मणि उसके नातिनको दो और जगतमें बड़ाई लो, महाराज ! श्रीकृष्णचंद्रके मुखसे इतनी बातके निकलतेही अक्रूरजीने मणिलाय प्रभुके आगे धर हाथ जोड़ अति विनतीकर कहा कि, दीनदयालु ! यह मणि आप लीजिये. और मेरा अपराध दूर कीजिये इस मणिसे सोना निकला सो मैंने तीर्थयात्रामें उठायाहै. प्रभु बोले अच्छा किया. यों कह मणि ले हरिने सत्यभामाको जाय दी. और उसके चित्तकी सब चिंता दूर की.

इति श्रीलल्लूलालकृते प्रेमसागरे शतधन्ववधो नाम
अष्टपंचाशत्तमोऽध्यायः ॥ ५८ ॥

अध्याय ५९.

श्रीशुकदेवजी बोले कि, महाराज ! एकदिन श्रीकृष्णचन्द्र जगवंधु आनंदकंदजीने यह विचार किया कि, अब चलकर पाँडवोंको देखिये, जो आगसे बच जीते जागते हैं. इतनी बात कह हरि कितने एक यदुवंशियोंको साथ ले द्वारकापुरीसे चल हस्तिनापुरीको आये, इनके आनेका

समाचार पाय युधिष्ठिर, भीम, अर्जुन, नकुल, सहदेव पाँचो भाई अति हर्षितहो उठधाये और नगरके बाहर आय मिल बड़ी भाव भक्तिकर लिवाय घर लेगये, घरमें जातेही कुंती और द्रौपदीने पहले तो सात सुहागिनोंको बुलाय मोतियोंका चौक पुरवाय तिनपर कंचनकी चौकी बिछवाय उसपै श्रीकृष्णको बिठाय मंगलाचार करवाय अपने हाथों आरती उतार पीछे प्रभुके पाँव धुलवाय रसोई में लेजाय षट्रस भोजन करवाये. महाराज! जब श्रीकृष्णजी भोजन कर पान खानेलगे तब–

कुंती ढिग बैठी कहबात। पितावंधु पूँछत कुशलात ॥
नीके शूरसेन वसुदेव। बंधु भतीजे अरु बलदेव ॥
तिनमें प्राण हमारो रहै। तुम बिन कौन कष्ट दुख दहै ॥
जबजब विपति परी अतिभारी। तबतुमरक्षाकरीहमारी ॥
अहो कृष्णतुमपरदुखहरणा। पाँचोंवंधु तुम्हारी शरणा ॥
ज्योंमृगनीवृकझुंडके त्रासा। त्यों ये अंधसुतनके वासा ॥

महाराज! जब कुंती या कहचुकी–

तबहिं युधिष्ठिर जोरे हाथ। तुमहौप्रभुयादवपति नाथ ॥
तुमकोयोगेश्वरनितध्यावत। शिवविरंचिकेध्याननआवत ॥
हमको घरही दर्शन दीन्हों। ऐसो कहा पुण्य हम कीन्हों ॥
चार मास रहिकै सुख देहौ। वर्षाऋतु बीते घर जैहौ ॥

इतनी कथा सुनाय श्रीशुकदेवजी बोले कि, महाराज! इसबातके सुनतेही भक्तहितकारी श्रीबिहारी सबको आशा भरोसा दे वहाँरहे, और दिन दिन आनन्द प्रेम बढ़ाने लगे. एकदिन राजायुधिष्ठिरके साथ श्रीकृष्णचंद्र अर्जुन, भीम, नकुल, सहदेव को लिये धनुष बाण करगहे रथपर चढ़ वनमें अहेरको गये. वहाँ जाय रथसे उतर फेंटा बाँध बाहें चढ़ाय शर साध जंगल झाड़ झाड़ लगे सिंह, बाघ, गैंडे, अरने, साँबर शूकर, हरिण, ऋच्छ, मार मार राजायुधिष्ठिरके सन्मुख लाय लाय

धरने; और राजा युधिष्ठिर हँस हँस रीझ रीझ लेने, और जो जिसका भक्ष्यथा तिसे देने; और हरिण सांबर रसोईमें भेजने.

तिसी समय श्रीकृष्णचंद्र और अर्जुन आखेट करते करते कितनी एक दूर सबसे आगे जाय एक वृक्षके नीचे खड़े हुए, फिर नदीके तीर जाके दोनोंने जल पिया. इतनेमें श्रीकृष्णजी देखते क्याहैं कि नदीके तीर एक अतिसुंदरी नवयौवना, चंद्रमुखी, चंपकवरणी, मृगनयनी, पिकवयनी, गजगामिनी, कटिकेहरी, नखशिखसे शृंगार किये अनंगमद पिये महाछबि लिये इकल्ली फिरतीहै इसे देखतेही हरि चकित थकित हो बोले—

यह को सुंदरि बिरहिनि अंग । कोऊ नहीं तासुके संग ॥

महाराज! इतनी बात प्रभुके मुखसे सुन और उसे देख अर्जुन हड़बड़ाय दौड़कर वहाँ गया. जहाँ वह महासुंदरी नदीके तीर विहरतीथी; और पूंछनेलगा कि कह सुंदरी! तू कौनहै? और कहाँसे आई है और किसलिये यहाँ अकेली फिरती है. यह भेद अपना सब मुझे समझाकर कह? इतनी बातके सुनतेही—

सुंदरि कथा कहैहै अपनी । हौं कन्या मैं सूरज तनी ॥
कालिंदी है मेरो नाम । पिता दयो जलमें बिश्राम ॥
रचे नदीमें मंदिर आय । मोसों पिता कह्यो समझाय ॥
कीजो सुता नदी ढिग फेरो । आय मिलैगो यहँ वर तेरो ॥
यदुकुल माहि कृष्ण औतरे । तो काजे इहिठाँ अनुसरे ॥
आदिपुरुष अविनाशी हरी । ताकाजै तू है औतरी ॥
ऐसे जबहि तात रवि कह्यो । तबते मैं हरिपदको चह्यो ॥

महाराज! इतनी बातके सुनतेही अर्जुन अतिप्रसन्नहो बोला, कि हे सुंदरी! जिनके कारण तू यहाँ फिरतीहै, वेई प्रभु अविनाशी द्वारकावासी श्रीकृष्णचंद्र आनंदकंद आय पहुँचे; महाराज! ज्यों अर्जुनके मुँहसे इतनी बात निकली, त्यों भक्तहितकारी श्रीबिहारी भी रथ बढ़ाय वहाँ जा पहुँचे, प्रभुको देखतेही अर्जुनने जद उसका सब भेद कह सुनाया तद

श्रीकृष्णचन्द्रजीने हँसकर झट उसे रथपर चढ़ाय नगरकी बाट ली. जितनेमें श्रीकृष्णचन्द्र नगरमें वनसे आये. तितनेमें विश्वकर्माने एक मंदिर अति सुंदर सबसे निराला प्रभुकी इच्छा देख बनाया. हरिने आतेही कालिंदीको वहाँ उतारा. और आप भी रहनेलगे. आगे कितने एक दिन पीछे एकदिन श्रीकृष्णचंद्र और अर्जुन रातकी बिरियाँ किसी स्थानपर बैठेथे कि, अग्निने आय हाथ जोड़ शिरनाय हरिसे कहा कि, महाराज! मैं बहुत दिनका भूखा सारे संसारमें फिर आया. पर खानेको कहीं न पाया. अब एक आश आपकी है; जो आज्ञा पाऊं तो वन जंगल जाय खाऊं. प्रभु बोले अच्छा जाय खा. फिर अग्निने कहा कृपानाथ! मैं वनमें अकेला नहीं जा सक्ता जो जाऊँ तो इंद्र आय मुझे बुझाय देगा. यह बात सुन श्रीकृष्णजीने अर्जुनसे कहा, कि बंधु तुम जाय अग्निको चराय आवो, यह बहुत दिनसे भूखों मरताहै.

श्रीकृष्णचंद्रके मुखसे इतनी बात निकलतेही अर्जुन धनुष बाण ले अग्निके साथ हुए. और अग्नि वनमें जाय भड़का, और लगे आम, इमली, बड़, पीपल, पाकड़, ताल, तमाल, महुवा, जामुन, खिरनी कचनार, दाख, चिरौंजी, केला, निंबू, बेर आदि वृक्ष सब जलने, और–

फटकें काँस बाँस अतिचटके। वनकेजीवफिरेंमगभटके ॥

जिधर देखिये तिधर सारे वनमें अग्नि हूहूकर जलताहै और धुवाँ मड़राय आकाशको गया; उस धुयेंको देख इंद्रने मेघपतिको बुलायके कहा कि, तुम जाय अति वर्षाकर अग्निको बुझाय वन और वनके पशु पक्षी जीव जंतुओंको बचावो. इतनी आज्ञा पाय मेघपति दल बादल साथ ले वहाँ आय घहराय जो वर्षनेको हुआ, तो अर्जुनने ऐसे पवनबाण मारे कि बादल राई काई हो यों उड़गये कि,जैसे रुईके पहल पवनके झोंकसे उड़ जायँ. न किसीने आते देखे न जाते ज्यों आये त्यों सहजही विलायगये, और अग्नि वन झाड़खंड जलाता कहाँ आया, कि जहाँ मय नाम असुरका मंदिर था. अग्निको अति रिसभरा आता देख मय महा

मयखाय नंगे पावों गलमें कपड़ा डाल हाथ बांध मंदिरसे निकल सन्मुख आय खड़ा हुआ, और अष्टांग प्रणाम कर अति गिड़गिड़ायके बोला, हे प्रभु! इस आगसे बचाय वेग मेरी रक्षा करो.

चरचो अग्नि पायो संतोष। अवतुममानोजनिकछुदोष॥
मेरी विनती मनमें लावो। वैसंदरते मोहिं बचावो॥

महाराज! इतनी बात मयदैत्यके मुखसे निकलतेही अग्निबाण वैसंदरने धरे, और अग्नि भी सकुच खड़े रहे. निदान वे दोनों मयको साथ ले श्रीकृष्णचंद्र आनंदकंदके निकट जाबोले कि, महाराज!

यहमयअसुर आयहै काम। तुम्हरे लिये बनैहै धाम॥
अवहीं सुधि तुमयाकीलेहु। अग्निबुझाय अभयकरिदेहु॥

इतनी बात कह अर्जुनने गांडीवधनुष शरसमेत हाथसे भूमिमें रक्खा, तब प्रभुने आगकी ओर आँख दबाय सेन की, वह तुरत बुझगया; और सारे वनमें शीतलता हुई. फिर श्रीकृष्णचन्द्र अर्जुन सहित मयको साथ ले आगे बढे. वहाँ जाय मयने कंचनके मणिमय मंदिर अति सुंदर सुहावने मनभावने क्षणभरमें बनाय खड़े किये, ऐसे कि जिनकी शोभा कुछ वर्णी नहीं जाती. जो देखनेको आता. सो चकितहो चित्रसा खड़ा रह-जाता. आगे श्रीकृष्णजी वहाँ चार महीने बिरमे, पीछे वहाँसे चल कहाँ आये कि, जहाँ राजसभामें राजा युधिष्टिर बैठेथे आतेही प्रभुने राजासे द्वारका जानेकी आज्ञा माँगी; यह बात श्रीकृष्णचंद्रके मुखसे निकलतेही सभासमेत राजा युधिष्टिर अति उदास हुए और नगरवासी भी स्त्री क्या पुरुष सब चिंता करने लगे. निदान प्रभु सबको यथायोग्य समझाय बुझाय आशा भरोसा दे अर्जुनको साथले युधिष्टिरसे बिदाहो हस्तिना-पुरसे चल हँसते खेलते कितने एक दिनोंमें द्वारकापुरीमें आपहुँचे. इनका आना सुन सारे नगरमें आनन्द होगया; और सबका विरह दुःख गया पिता माताने पुत्रमुख देख सुखपाया; और मनका खेद सब गँवाया आगे एकदिन श्रीकृष्णजीने राजा उग्रसेनके पास जाय कालिंदीका भेद सब समझाके कहा कि महाराज! भानुसुता कालिंदीको हम ले आयेहैं

तुम वेदकी विधिसे हमारा उसके साथ व्याह करदो. यह बात सुन उग्रसेनने वोहीं मंत्रीको बुलाय आज्ञा दी कि, तुम अबहीं जाय व्याहकी सामग्री लावो. आज्ञा पाय मंत्रीने विवाहकी सामग्री बातकी बातमें सब लाय दी तिसी समय उग्रसेन वसुदेवने एक ज्योतिषीको बुलाय शुभ दिन ठहराय श्रीकृष्णजीका कालिंदीके साथ वेदकी विधिसे व्याह करदिया.

इतनी कथा सुनाय श्रीशुकदेवजी बोले, कि हे राजा ! कालिंदीका विवाह तो यों हुआ. अब आगे जैसे मित्रविंदाको हरिलाये, और व्याहा तैसे कथा कहताहूं तुम चित्तदे सुनो. शूरसेनजीकी बेटी श्रीकृष्णकी फूफी जिसका नाम राजाधिदेवी उसकी कन्या मित्रविंदा, जब वह व्याहने, योग्य हुई, तब उसने स्वयंवर किया तहाँ सब देश देशके नरेश गुणवान् रूपनिधान महाराज बलवान् शूरवीर अतिधीर बन ठनके एकसे एक अधिक जा इकट्ठे हुए. यह समाचार पाय श्रीकृष्णचंद्रभी अर्जुनको साथ ले वहाँ गये और जाके बीचोंबीच स्वयंवरके खड़े हुए.

हरषी सुंदरि देखि मुरारी । हार डार मुख रही निहारी ॥

महाराज ! यह चरित्र देख सब देश देशके राजा तो लज्जितहो मनहीं-मन अनखाने लगे. और दुर्योधनने जाय उसके भाई मित्रसेनसे कहा कि बंधु तुम्हारे मामाका बेटा है हरी, तिसे देख भूलीहै सुंदरी. यह लोकविरुद्ध रीतिहै इसके होनेसे जगत्में हँसीहोगी तुम जाय बहनको कहो, कि, कृष्णको नहीं बरे नहीं तो सब राजाओंकी भीड़में हँसी होगी. इतनी बातके सुनतेही मित्रसेनने जाय बहनको बुझायके कहा, भाईकी बात सुन समझ जो मित्रविंदा प्रभुके पाससे हटकर अलग दूरहो खड़ी हुई, तो अर्जुनने झुककर श्रीकृष्णके कानमे कहा, कि महाराज ! अब आप किसकी कान करतेहो ? बात बिगड़ चुकी, जो कुछ करनाहो सो कीजै, विलंब न करिये. अर्जुनकी बात सुनतेही श्रीकृष्णने स्वयंवरके बीचसे उठ हाथ पकड़ मित्रविंदाको उठाय रथमें बैठाय लिया; और वोहीं सबके देखते रथ हाँक दिया. उसकाल सब भूप ल तो अपने २ शस्त्र लेले घोड़ोंपर चढ़ चढ़ प्रभुका आगा घेर लड़नेको जाखड़े हुए, और नग-

रनिवासी लोग हँस हँस तालियाँ बजाय गालियाँ दे दे यों कहने लगे

फूफीसुताको व्याहन आयो। यहतुमकृष्णभलोयशपायो॥

इतनी कथा सुनाय श्रीशुकदेवजी बोले, महाराज! जब श्रीकृष्णचंद्रजीने देखा कि, चारोंओरसे जो असुरदल घिर आयाहै, सो लड़ेविना न रहेगा. तब उन्होंने कईएक बाण निपंगसे निकाल धनुष तान ऐसे मारे कि, वह सब सेना असुरोंकी छीती छानहो वहाँकी वहीं बिलाय गई. और प्रभु निर्द्वंद्वहो आनंदसे द्वारकापहुँचे.

श्रीशुकदेवजी बोले कि, महाराज! श्रीकृष्णजीने मित्रविंदाको तो यों लेजाय द्वारकामें व्याहा. अब आगे जैसे सत्याको प्रभु लाये सो कथा कहताहूं तुम चित्त लगाय सुनो. कौशलदेशमें नग्नजीत राजाने सात बैल अति ऊंचे भयावने बिन नाथे मँगवाय यह प्रतिज्ञाकर देशमें छुड़वाय दिये कि, जो इन वृषभोंको एकबार नाथ लावेगा, उसे मैं अपनी कन्या व्याह दूंगा. महाराज! वे सातों बैल शिरझुकाये पूंछउठाये भू खूंद खूंद डकारते फिरें; और जिसे पावें तिसे हनें, आगे यह समाचार पाय श्रीकृष्णचंद्र अर्जुनको साथ ले वहाँ गये, और जा राजा नग्नजीतके सन्मुख खड़े हुए. इनको देखतेही राजा सिंहासनसे उतर प्रणामकर इन्हें सिंहासनपर बिठाय चंदन अक्षत पुष्प चढ़ाय धूप दीप कर नैवेद्य आगेधर हाथ जोड़, शिरनाय अति विनती कर बोला कि, आज मेरे भाग्य जागे, जो शिव विरिंचिके कर्त्ता प्रभु मेरे घर आये यों सुनाय फिर बोला कि, महाराज! मैंने एक प्रतिज्ञा की है, सो पूरी होनी कठिन थी पर अब मुझे निश्चय हुआ कि, वह आपकी कृपासे तुरंत पूरी होगी. प्रभु बोले ऐसी क्या तूने प्रतिज्ञा की है कि, जिसका होना कठिन है? तभी राजाने कहा कि, कृपानाथ! मैंने सात बैल अननाथे छुड़वाय यह प्रतिज्ञा की है कि जो इन सातों बैलोंको एकबेर नाथेगा तिसे मैं अपनी कन्या व्याहूंगा श्रीशुकदेवजी बोले कि महाराज!

सुन हरि फेंट बाँधि तहँ गये। सातरूप धरि ठाढ़े भये॥
काहु न लख्यो अलखव्यवहार। सातों नाथे एकहिबार॥

वे वृषभ नाथनेके समय ऐसे खड़े रहे कि, जैसे काठके बैल खड़े होयँ, प्रभु सातोंको नाथ एक रस्सीमें गांथ राजसभामें ले आये, यह चरित्र देख नगरनिवासी तो सब क्या स्त्री क्या पुरुष अचरजकर धन्य धन्य कहने लगे; और राजा नग्नजीतने उसीसमय पुरोहितको बुलाय वेदकी विधिसे कन्यादान किया. तिसके यौतुकमें दशसहस्र गाय, नौ लाख हाथी, दशलाख घोड़े, तिहत्तरलाख रथ दे, दास दासी अनगिनित दिये. श्रीकृष्णचंद्र सब ले वहाँसे जब चले, तब खिझलाय सब राजाओंने प्रभुको मार्गमें आय घेरा. तहाँ मारे बाणोंके अर्जुनने सबको मार भगाया, हरि आनंद मंगलसे सब समेत द्वारकापुरीमें पहुँचे, उसकाल सब द्वारकावासी आगे आय प्रभुको बाजे गाजेसे पाटंबरके पाँवडे डालते राजमंदिरमें ले गये. और यह यौतुक देख सब अचंभे रहे.

नग्नजीतकी करी बडाई । कहत लोग यह बडी सगाई ॥
भलोव्याहकोशलपतिकियो । कृष्णहिं इतो दायजो दियो॥

महाराज! नगरनिवासी तो इस ढबकी बातें कर रहेथे कि, उसी समय श्रीकृष्णचंद्र और बलरामजीने वहाँ आके राजा नग्नजीतका दियाहुआ सब दायज अर्जुनको दिया. और जगतमें यश लिया. आगे अब जैसे श्रीकृष्णजी भद्राको व्याह लाये, सो कथा कहताहूं, तुम चित्त लगाय निश्चित हो सुनो, केकयदेशके राजाकी बेटी भद्राने स्वयंवर किया; और देश देशके नरेशोंको पत्र लिख भेजा, वे आय इकट्ठे हुए. तहाँ श्रीकृष्णचंद्र भी अर्जुनको साथ लेकर गये, और स्वयंवरके बीच सभामें जा खड़े हुए. जब राजकन्या माला हाथमें लिये सब राजाओंको देखती भालती रूपसागर जगतउजागर श्रीकृष्णचंद्रके निकट आई, तो देखतेही भूलरही, और उसने माला उनके गलेमें डाली. यह देख उसके माता पिताने प्रसन्नहो वह कन्या हरिको वेदकी विधिसे व्याहदी. उसके दायजमें बहुत कुछ दिया कि, जिसका पारावार नहीं. इतनी कथा कह श्रीशुकदेवजी बोले. महाराज! श्रीकृष्णचंद्र भद्राको तो यों व्याह लाये. फिर जैसे प्रभुने लक्ष्मणाको व्याहा सो कथा कहताहूं तुम सुनो. भद्र-

देशका नरेश अतिबली और बड़ा प्रतापी तिसकी कन्या लक्ष्मणा जब व्याहने योग्य हुई, तब उसने स्वयंवर कर चारोंदिशाओंके नरेशोंको पत्र लिख लिख बुलवाया वे अति धूमधामसे अपनी अपनी सेना साज साज वहाँ आये, और स्वयंवरके बीच बड़े बनावसे पाँतिकी पाँति जा बैठे. श्रीकृष्णचंद्रजी भी अर्जुनको साथ ले तहाँ गये और जो स्वयंवरके बीच जा खड़े भये तो लक्ष्मणाने सबको देख आ श्रीकृष्णजीके गलेमें माला डाली. उसके पिताने वेदकी विधिसे प्रभुके साथ लक्ष्मणाका व्याह करदिया. सब देशदेशके नरेश जो वहाँ आयेथे सो महालज्जितहो आपसमें कहने लगे कि, देखें हमारे रहते किस भाँति कृष्ण लक्ष्मणाको ले जाताहै. ऐसे कह वे सब अपना अपना दल साज मार्ग रोंक जा खड़े हुए. ज्यों श्रीकृष्णचंद्र और अर्जुन लक्ष्मणा समेत रथ ले आगे बढ़े त्यों उन्होंने इन्हें आय रोंका. और युद्ध करने लगे निदान कितनी एक बेरमें मारे बाणोंके अर्जुन और श्रीकृष्णजीने सबको मार भगाया और आप आनंदमंगलसे नगर-द्वारका पहुँचे. इनके जातेही सारे नगरमें घर घर-

भई बधाई मंगलचार। कीन्हीं वेदरीति व्योहार ॥

इतनी कथा कह श्रीशुकदेवजी बोले कि, महाराज! इस भाँति श्रीकृष्णजी पाँच व्याह करलाये. तब द्वारकामें आठौ पटरानियों समेत सुखसे रहनेलगे और पटरानियाँ आठौं पहर सेवा करनेलगीं "पटरानियोंके नाम" रुक्मिणी, जाम्बवती, सत्यभामा, कालिंदी, मित्रविंदा, सत्या, भद्रा, लक्ष्मणा.

इति श्रीलल्लूलालकृते प्रेमसागरे श्रीकृष्णपंचविवाहवर्णनो नाम एकोनषष्टितमोऽध्यायः ॥ ५९ ॥

अध्याय ६०.

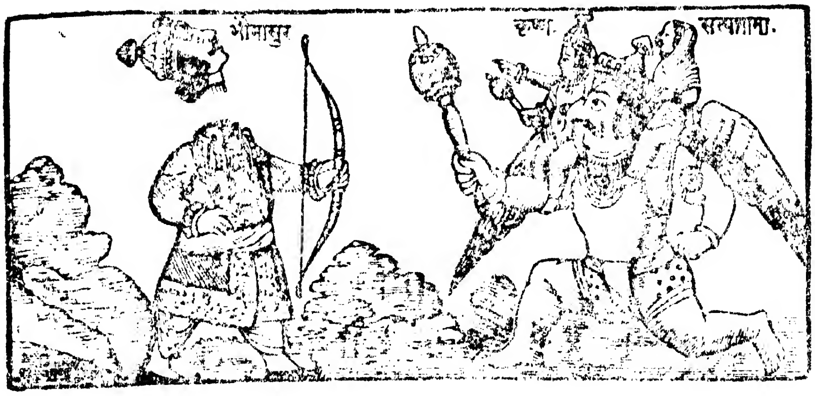

श्रीशुकदेवजी बोले कि, हे राजा! एकसमय पृथ्वी मनुष्यतनु धारण कर अति कठिन तप करने लगी. तहाँ ब्रह्मा, विष्णु, रुद्र इन तीनों देवतावोंने आ उससे पुंछा कि, तू किसलिये इतनी कठिन तपस्या करतीहै? धरती बोली कृपासिंधु! मुझे पुत्रकी वासना है इसकारण महातपस्या करतीहूं, दयाकर मुझे एकपुत्र अति बलवंत, महाप्रतापी, बड़ा तपस्वी दो, ऐसा कि जिसका सामना संसारमें कोई न करे, न वह किसीके हाथसे मरे. यह वचन सुन प्रसन्नहो तीनों देवतावोंने वर दे उससे कहा कि, तेरा सुत नरकासुरनाम अतिबली महाप्रतापी होगा. उससे लड़ कोई न जीतेगा. वह सृष्टिके सब राजावोंको जीत अपने वश करेगा स्वर्गलोकमें जाय देवतावोंको मार भगाय अदितिके कुंडल छीन आप पहनेगा. और इंद्रका छत्र छिनाय लाय अपने शिर धरेगा. संसारके राजावोंकी कन्या सोलहसहस्र–एकसौ लाय अनव्याही घरमें रखखेगा. तब श्रीकृष्णचंद्र अपना सब कटक ले उसपर चढ़ जायँगे और उनसे तू कहेगी, इसे मारो, पुनि वे मार सब राजकन्यावोंको ले द्वारकापुरी पधारेंगे.

इतनी कथा कह श्रीशुकदेवजीने राजापरीक्षितसे कहा कि, महाराज! तीनों देवतावोंने वर दे जब यों कहा, तब भूमि इतना कह चुप होरही. कि, मैं ऐसी बात क्यों कहूंगी. कि, मेरे बेटेको मारो. आगे कितने एक दिन पीछे भूमिपुत्र भौमासुर हुआ, तिसीका नाम "नरकासुर भी कहतेहैं" वह प्राग्ज्योतिषपुरमें रहने लगा. उस पुरके चारों ओर

पहाड़ोंकी ओट, और जल अग्नि पवनका कोट बनाय सारे संसारके राजावोंकी कन्या बलकर छीन छीन धाय समेत लाय लाय उसने वहाँ रक्खीं. नित उठ उन सोलहसहस्र—एकसौ राजकन्यावोंके खाने पीने पहरनेकी चौकसी किया करे, और बड़े यत्नसे उन्हें पलवावे. एकदिन भौमासुर अति कोपकर पुष्पकविमानमें बैठ जो लंकासे लायाथा. सुरपुरमें गया. और लगा देवतावोंको सताने. उसके दुःखसे देवता स्थान छोड़ छोड़ अपना जीव लेले जिधर तिधर भागगये. तब वह अदितिके कुंडल और इंद्रका छत्र छीन लाया. और सब सृष्टिके सुर नर मुनियोंको अतिदुःख देने लगा. उसका सब कारण सुन श्रीकृष्णचंद्र जगबंधुजीने अपने जीमें कहा.

वाहि मारि सुंदरि सब ल्याऊँ। सुरपतिछत्र तहाँ पहुँचाऊँ॥
जाय अदितिके कुंडल देहौं। निर्भयराज्य इंद्रकोकहौं॥

इतना कह पुनि श्रीकृष्णचन्द्रजीने सत्यभामासे कहा कि, हे नारि! तू मेरे साथ चले तो भौमासुर माराजाय, क्योंकि तू भूमिका अंश है इस लेखे उसकी मा हुई, जब देवतावोंने भूमिको वर दियाथा तब यह कह दियाथा कि, जब तू मारनेको कहेगी, तब तेरा पुत्र मरेगा; नहीं तो किसीसे किसी भाँति मारा न मरेगा. इस बातके सुनतेही सत्यभामाजी कुछ मनहींमन शोच समझ इतना कह अनमनी होरहीं कि, महाराज! मेरापुत्र आपका सुत हुआ तुम उसे क्योंकर मारोगे? प्रभुने उस बातको टाल कहा कि, उसके मारनेकी तो मुझे कुछ इतनी चिंता नहीं, पर एकसमय मैंने तुझे वचन दियाथा, तिसे पूरा किया चाहताहूं. सत्यभामा बोली सो क्या? प्रभु कहनेलगे कि एकसमय नारदजीने आय मुझे कल्पवृक्षका फूल दिया. वह ले मैंने रुक्मिणीको भेजा, यह बात सुन तू रिसायरही. तब मैंने यह प्रतिज्ञा करी कि, तू उदास मतहो. मैं तुझे कल्पवृक्षही ला दूंगा सो अपना वचन प्रतिपालनेको; और तुझे स्वर्ग दिखानेको; साथ ले चलता हूं. इतनी बातके सुनतेही सत्यभामाजी प्रसन्नहो हरिके साथ चलनेको उपस्थित हुईं, तब प्रभु उसे गरुड़पर अपने पीछे

बैठाय साथ ले चले. कितनी एक दूरजाय श्रीकृष्णचंद्रजीने सत्यभामाजीसे पूँछा कि सत्य कह सुंदरी, इसबातको सुन तू पहले क्या समझ अप्रसन्न हुईथी उसका भेद मुझे समझायके कह; जो मेरे मनका संदेह जाय. सत्यभामा बोली कि, महाराज ! तुम भौमासुरको मार सोलहसहस्र एकसौ राजकन्या लावोगे, तिनमें मुझे भी गिनोगे; यह समझ अनमनी हुईथी. श्रीकृष्ण बोले कि तू किसी बातकी चिंता मत कर, मैं कल्पवृक्ष लाय तेरे घर रक्खूंगा; और तू उसके साथ मुझे नारदमुनिको दान कीजो. फिर मोल ले मुझे अपने पास रखना, मैं तेरे सदा अधीन रहूंगा. ऐसेही इंद्रानीने इंद्रको वृक्षके साथ दान कियाथा; और अदितिने कश्यपको, इस दानके करनेसे कोई नारी तेरे समान मेरे न होगी. महाराज ! इस भाँतिकी बातें कहते कहते श्रीकृष्णजी प्राग्ज्योतिषपुरके निकट जा पहुँचे. वहाँ पहाड़का कोट, अग्नि जल पवनकी ओट, देखतेही प्रभुने गरुड़ और सुदर्शनचक्रको आज्ञाकी, उन्होंने पलभरमें धाय ढाय बुझाय बहाय अच्छे पंथ बनाय दिये. ज्यों हरि आगे बढ़ नगरमें जानेलगे त्यों गढ़के रखवाले दैत्य लड़नेको चढ़ आये, प्रभुने तिन्हें गदासे सहजही मार गिराये उनके मारनेका समाचार पाय मुरनामक राक्षस पाँच शीशवाला जो इसपुरगढ़का रखवालाथा, सो अति क्रोधकर त्रिशूल हाथमें ले श्रीकृष्णचंद्रजीपर चढ़ आया; और लगा आँखें लाल लाल कर दाँत पीस पीस कहने कि–

मोते बली कौन जग और। वाहि देखिहौं मैं यहि ठौर ॥

महाराज ! इतना कह मुरदैत्य श्रीकृष्णचंद्रपर यों दपटा कि, ज्यों गरुड़पर सर्प दपटे. आगे उसने त्रिशूल चलाया, सो प्रभुने चक्रसे काट गिराया. फिर खिझलाय मुरने जितने शस्त्र हरिपर चाले, तितने प्रभुने सहजही काट डाले. पुनि वह हकबकाय दौड़कर प्रभुसे आय लिपटा; और मल्लयुद्ध करने लगा. कितनीएक बेरमें युद्ध करते करते श्रीकृष्णजीने सत्यभामाको महा भयमान जान सुदर्शनचक्रसे उसके पांचोशिर काट डाले, धड़से शिर गिरतेही धमक्का सुन भौमासुर बोला कि, यह

अति शब्द काहेका हुआ. इसबीच किसीने जाके सुनाया कि, महाराज! श्रीकृष्णने आय मुरदैत्यको मारडाला. इतनी बातके सुनतेही प्रथम तो भौमासुरने अति खेद किया. पीछे अपने सेनापतिको युद्ध करनेको आयसु दिया. वह सब कटक साज लड़नेको गढ़के द्वारपर जा उपस्थित हुआ और उसके पीछे अपने पिताका मरना सुन मुरके सात बेटे जो अतिबलवान् और बड़े योद्धा थे, सोभी अनेक अनेक प्रकारके अस्त्र शस्त्र धारणकर श्रीकृष्णजीके सन्मुख लड़नेको जा खड़े हुए, पीछेसे भौमासुरने अपने सेनापति और मुरके बेटोंसे कहलाभेजा कि, तुम सावधानीसे युद्ध करो मैंभी आवताहूं. लड़नेकी आज्ञा पातेही सब असुरदल साथ ले मुरके बेटों समेत भौमासुरका सेनापति श्रीकृष्णजीसे युद्ध करनेको चढ़ आया; और एकाएकी प्रभुके चारों ओर सब कटक दल बादलसा जाय छाया. सब ओरसे अनेक अनेक प्रकारके अस्त्र शस्त्र भौमासुरके शूर श्रीकृष्णचंद्रपर चलातेथे. और वे सहज स्वभावही काट काट ढेर करते जातेथे. निदान हरिने सत्यभामाजीको महाभयातुर देख असुरदलको मुरके सातों बेटों समेत सुदर्शनचक्रसे बातकी बातमें यों काट गिराया, जैसे किसान ज्वाँरकी खेतीको काट गिरावे.

इतनी कथा कह श्रीशुकदेवजीने राजापरीक्षितसे कहा कि, महाराज! श्रीकृष्णजीने मुरके पुत्रों समेत सब सेना काटडाली. यह सुन पहले तो भौमासुर अति चिंताकर महा घबराया. पीछे कुछ शोच समझ धीरज धर कितने एक महाबली राक्षसोंको अपने साथ ले लाल लाल आँखें क्रोधसे किये कसकर फेटबाँधे शर साधे बकता झकता श्रीकृष्णजीसे लड़नेको आय उपस्थित हुआ. ज्यों भौमासुरने प्रभुको देखा, त्यों उसने एकबार अति रिसाय मूठकी मूठ बाण चलाये. सो हरिने तीन तीन टुकड़ेकर काट गिराये. उसकाल.

काढिखड्ग भौमासुर लियो। कोपिहँकारि कृष्णउरदियो॥
करै शब्द अति मेघ समान। अरे गँवार! न पावै जान॥
करकस वचन तहाँ उच्चरै। महायुद्ध भौमासुर करै॥

महाराज! वह तो अति बलकर इनपर गदा चलाताथा, और श्रीकृष्णजीके शरीरमें उसकी चोट यों लगतीथी, ज्यों हाथीके अंगमें फूल छडी. आगे वह अनेक अनेक अस्त्र शस्त्र ले प्रभुसे लड़ा; और श्रीकृष्णचंद्रजीने सब काट डाला तब वह फिर घर जाय एक त्रिशूल ले आया, और युद्ध करनेको उपस्थित हुआ.

तब सतिभामाटेर सुनाई। अब क्यों नाहिं हतो यदुराई ॥
वचनसुनतप्रभुचक्रभ्रमारयो। काटिशीशभौमासुरमारयो॥
कुंडल मुकुट सहितशिरपरयो। धरतेगिरतशेपथरहरयो॥
तिहुँलोकमें आनँद भयो। शोच दुःख सबहीको गयो॥
तासुज्योतिहरिदेहसमानी। जयजयशब्दकरें सुरज्ञानी॥
खड़े विमान पुष्प बरसावें। वेद बखानि देव यश गावें॥

इतनी कथासुनाय श्रीशुकदेवमुनि बोले कि महाराज! भौमासुरकी स्त्री पुत्रसमेत आय प्रभुके सन्मुख हाथ जोड़ शिर नवाय अति विनती कर कहने लगी. हे ज्योतिरूप ब्रह्मस्वरूप भक्त हितकारी बिहारी! तुम साधु संतके हेतु धरते वेश अनंत तुम्हारी महिमा लीला माया है अपरंपार, तिसे कौन जाने; और किसे इतनी सामर्थ्य है जो विन कृपा तुम्हारी उसे बखाने. तुम सब देवोंके हो देव; कोई नहीं जानता तुम्हारा भेव. महाराज! ऐसे कह छत्र कुंडल पृथ्वी प्रभुके आगे धर फेर बोली, दीनानाथ! दीनबंधु कृपासिंधु! यह भगदत्त भौमासुरका बेटा आपकी शरण आया है, अब करुणाकर अपना कोमल कमलसा कर इसके शिरपर दीजे और अपने भयसे इसे निर्भय कीजे. इतनी बातके सुनतेही करुणानिधान श्रीकान्हने करुणाकर भगदत्तके शीशपर हाथ धरा; और अपने डरसे उसे निडर किया. तब भौमावती भौमासुरकी स्त्री बहुतसी भेंट हरिके आगे धर अति विनती कर हाथजोड़ शिर झुकाय खड़ी हो बोली, हे दीनदयालु कृपालु! जैसे आपने दर्शनदे हम सबको कृतार्थ किया, तैसे अब चलकर मेरा घर पवित्र कीजे. इस

बातके सुनतेही अंतर्यामी भक्त हितकारी श्रीमुरारी भौमासुरके घर पधारे. उसकाल वे दोनों मां बेटा हरिको पाटंबरके पाँवड़े डाल घरमें लेजाय सिंहासनपर बिठाय अर्घ्य दे चरणामृतले अति दीनता कर बोले, हे त्रिलोकी नाथ! आपने भला किया जो इस महा असुरको वध किया. हरिसे विरोध कर किसने संसारमें सुख पाया रावण, कुंभकर्ण, कंसादिकने वैरकर अपना जी गँवाया; और जिन जिनने आपसे द्रोह किया तिस तिसका जगत्‌में नाम लेवा पानी देवा कोई न रहा. इतना कह फिर भौमावती बोली, हे नाथ! अब आप मेरी विनती मान भगदत्तको निज सेवक जान जो सोलहसहस्र एकसौ राजकन्या इसके बापने अनव्याही रोंक रक्खी हैं सो अंगीकार कीजे, महाराज! यों कह उसने सब राजकन्यावोंको निकाल प्रभुके सोहीं पाँतिकी पाँति ला खड़ी की. वे जगतउजागर रूपसागर श्रीकृष्णचंद्र आनंदकंदको देखतेही मोहितहो अति गिड़गिड़ाय हाहाखाय हाथ जोड़ बोलीं, नाथ जैसे आपने आय हम अबलावोंको इस महादुष्टकी बंदीसे निकाला. तैसे अब कृपाकर इन दासियोंको साथ ले चलिये; और निज सेवामें रखिये, तो भला. यह बात सुन श्रीकृष्णजीने उन्होंसे इतना कहा कि, हम तुम्हारेको साथले चलनेको रथपालकियाँ मँगवाते हैं यह कह भगदत्तकी ओर देखा. भगदत्त प्रभुके मनका कारण समझ अपनी राजधानीमें जाय, हाथी घोड़े सजवाय घुड़बहल और रथ झमझमाते जगमगाते जुतवाय सुखपाल, पालकी, नालकी, डोली, चंडोल, झूला बारेके कसवाय लिवाय लाया. हरि देखतेही सब राजकन्यावोंको उनपर चढ़नेकी आज्ञा दे भगदत्तको साथले राजमंदिरमें जाय उसे राजगद्दीपर बिठाय राजतिलक निज हाथसे दे आप जिसकाल सब राजकन्यावोंको साथले वहाँसे द्वारकाको चले, तिससमयकी शोभा कुछ वर्णी नहीं जाती, कि हाथी बैलोंकी गंगा यमुनी झूलोंकी चमक और घोड़ोंकी पाखरोंकी दमक और सुखपाल, पालकी, नालकी, डोली, चंडोल, रथ, घुड़बहलोंके घटाटोपोंकी ओप; और उनकी मोतियोंकी झालरोंकी ज्योति सूर्य्यकी ज्योतिसे मिल एक होय जगमगाय रहीथी. आगे श्रीकृष्णचंद्र सब राजकन्यावोंको लिये

कितने एक दिनोंमें चले चले द्वारकापुरीमें पहुँचे, वहाँ जाय राजकन्या-ओंको राजमंदिरमें रख, राजा उग्रसेनके पास जाय प्रणामकर पहले तो श्रीकृष्णजीने भौमासुरके मारने और राजकन्याओंको छोडाय लानेका भेद कह सुनाया. फिर राजा उग्रसेनसे विदा होय प्रभु सत्यभामाको साथ ले छत्र कुंडल लिये गरुड पर बैठ स्वर्गको गये, तहाँ पहुँचतेही-

कुंडलदिये अदितिको ईश। छत्रधरचो सुरपतिके शीश॥

यह समाचार पाय वहाँ नारद आये, तिनसे हरिने कह सुनाया कि, तुम जाय इंद्रसे कहो कि सत्यभामा तुमसे कल्पवृक्ष माँगती है, देखो वह क्या कहताहै, इस बातका उत्तर मुझे लादो. पीछे समझा जायगा. महाराज! इतनी बात श्रीकृष्णजीके मुखसे सुन नारदजीने सुरपतिसे जाय कहा कि, सत्यभामा तुम्हारी भौजाई तुमसे कल्पतरु माँगतीहै तुम क्या कहतेहो सो कहो? मैं उन्हें जाय सुनाऊं कि, इंद्रने यह कहा. इस बातके सुनतेही इंद्र पहले तो हकबकाय कुछ सोचता रहा, पीछे उसने नारद मुनिका कहा सब इंद्रानीसे जाय कहा.

इंद्रानी सुनि कहै रिसाय। सुरपति तेरी कुमति न जाय॥
तूहै बड़ो मूढ़पति अंधु। कोहैं कृष्ण कौनको बंधु॥

तुझे वह सुधि है कि नहीं. जो उसने ब्रजमेंसे तेरी पूजा मेट ब्रजवासियोंसे गिरि पुजवाय छलकर तेरी पूजाका सब पकवान आप खाय फिर सात दिन तुझे गिरिपर वर्षवाय उसने तेरा गर्व गँवाय सब जगत्में निरादर किया. इस बातकी कुछ तेरे तई लाज है कि नहीं? वह अपनी स्त्रीकी बात मानताहै. तू मेरा कहा क्यों नहीं सुनता. महाराज! जब इंद्रानीने इंद्रसे यों कह सुनाया तब वह अपनासा मुँह ले उलट नारदजीके पास आया और बोला हे ऋषिराय! तुम मेरी ओरसे जाय श्रीकृष्णचंद्रसे कहो कि, कल्पवृक्ष नंदनवन तज अनत न जायगा और जायगा तो वहाँ किसी भाँति न रहेगा. इतना कह फिर समझायके कहियो. कि आगे किसी भाँति अब यहाँ हमसे बिगाड़ न करें जैसे ब्रजमें ब्रजवासि-

योंको बहकाय गिरिका मिस कर सब हमारी पूजाकी सामा खाय गये, नहीं तो महायुद्ध होगा.

यह बात सुन नारदजीने आय श्रीकृष्णचंद्रजीसे इंद्रकी बात कही कह-सुनायके बोले. हे महाराज! कल्पतरु इंद्र तो देता था, पर इंद्रानीने न देने दिया. इस बातके सुनतेही श्रीकृष्णमुरारी गर्वप्रहारी नंदनवनमें जाय रखवालोंको मार भगाय कल्पवृक्षको उखाड़ गरुड़पर धर ले आये, उसकाल वे रखवाले जो प्रभुके हाथकी मारखाय भागेथे, इंद्रके पास जाय पुकारे, कल्पतरुके लेजानेके समाचार पाय, महाराज! राजा-इंद्र अतिकोपकर वज्र हाथमें ले सब देवतावोंको बुलाय ऐरावत हाथीपर चढ़ श्रीकृष्णचंद्रजीसे युद्ध करनेको उपस्थित हुआ; फिर नारदमुनिजीने जाय इंद्रसे कहा, महाराज! तुम महामूर्खहो जो स्त्रीके कहे भगवान्से लड़नेको उपस्थित हुए. ऐसी बात करते तुझे लाज नहीं आती, जो तुझे लड़नाहींथा तो जब भौमासुर तेरा छत्र और अदितिके कुंडल छिनाय लेगया, तब क्यों न लड़ा? अब प्रभुने भौमासुरको मार कुंडल और छत्र लादिया, तो, उनहींसे लड़ने लगा, जो तू ऐसाही बलवान था तो भौमासुरसे क्यों न लड़ा? तू वह दिन भूल गया जो ब्रजमें जाय प्रभुकी अतिदीनताकर अपना अपराध क्षमा कराय आया. फिर उन्हींसे लड़ने चलाहै, महाराज! नारदजीके मुखसे इतनी बात सुनतेही राजा-इंद्र जो युद्ध करनेको उपस्थित हुआथा, सो अछताय पछताय लज्जित हो मनमार रहगया. आगे श्रीकृष्णचंद्र द्वारका पधारे, तब हर्षित भये देख हरिको यादव सारे; प्रभुने सत्यभामाके मंदिरमें कल्पवृक्ष लेजाय के रक्खा, और राजा उग्रसेनने सोलहसहस्र एकसौ जो राजकन्या अन-व्याही लायेथे सो सब वेदकी रीतिसे श्रीकृष्णचंद्रको व्याहदीं.

भयो वेदविधि मंगलचार। ऐसे हरि विहरत संसार॥
सोलहसहसएकसौ गेह। रहत कृष्ण कर परम सनेह॥
पटरानी आठौं जे गनी। प्रीति निरंतर तिनसों घनी॥

इतनी कथा सुनाय श्रीशुकदेवजी बोले कि, हे राजा! हरिने ऐसे

भौमासुरका वध किया, और अदितिके कुंडल और इंद्रका छत्र ला दिया, फिर सोलहसहस्र एकसौआठ विवाहकर श्रीकृष्णचंद्र द्वारकापुरीमें आनंदसे सबको ले लीला करनेलगे.

इति श्रीलल्लूलालकृते प्रेमसागरे भौमासुरवधो नाम षष्टितमोऽध्यायः ॥ ६० ॥

अध्याय ६१.

श्रीशुकदेवजी बोले कि, महाराज! एकसमय मणिमय कंचनके मंदिरमें कुंदनका जडाऊ छपरखट बिछाथा, तिसपर फेनसे बिछौने फूलोंसे सवाँरे कपाल गडुआ और आरसीसे समेत सुगंधसे महक रहेथे. कपूर, गुलाबनीर, चोवा, चंदन, अरगजा सेजके चारों ओर पात्रोंमें भरा धराथा. अनेक अनेक प्रकारके चित्र विचित्र चारों ओर भीतों पर खिचे हुएथे. आलोंमें जहाँ तहाँ फूल पकवान पाक धरेथे; और सब सुखका सामान जो चाहिये सो उपस्थित था. झुलावोरका घाँगरा घुमघुमाला तिसपर सच्चे मोती टकेहुए, चमचमाती अँगिया, झलझलाती सारी, और जगमगाती ओढ़नीं पहने ओढे नखशिखसे शृंगार किये, रोरीकी आड़ दिये बड़े बड़े मोतियोंकी नथ, शीशफूल, कर्णफूल, माँग, टीका, ढेढी, बंदी, चंद्रहार, मोहनमाल, धुकधुकी, पंचलड़ी, सतलड़ी, मुक्तमाल, दुहरेतिहरे नौरतन, और भुजबंध, कंकण, पहुंची, नौगरी, चूड़ी, छल्ले, किंकिणी अनवट, बिछुए, जेहर, तेहर आदि सब आभूषण रत्नजडित पहने चंद्रवदनी, चंपकवरणी, मृगनयनी, पिकवयनी, गजगामिनी, कटिकेहरी,

श्रीरुक्मिणीजी; और मेघवरण चंद्रवदन, कमलनयन, मोरमुकुट दिये, वनमाल हिये, पीतांबर पहिरे, पीतपट ओढ़े, रूपसागर, त्रिभुवन उजागर, श्रीकृष्णचंद्र आनंदकंद तहाँ विराजतेथे; और आपस (परस्पर)में सुख लेते देतेथे. कि, एकाएकी लेटे लेटे श्रीकृष्णजीने रुक्मिणीजीसे कहा कि, सुन सुंदरी! एक बात मैं तुझसे पूंछता हूं तूतो महासुंदरी सब गुणयुक्त और राजाभीष्मककी कन्या और महाबली बड़ाप्रतापी राजाशिशुपाल चँदेरीका राजा ऐसा कि,जिसके घर सात पीढ़ीसे राज्य चला आताहै; और हम उसके त्राससे भागे २ फिरते हैं. मथुरापुरी तज समुद्रमें आय बसेहैं, ऐसे राजाको तुम्हें तुम्हारे माता पिता भाई देतेथे; और बरात ले व्याहनेको भी आ चुकाथा, तिसे न बर तुमने कुलकी मर्यादा छोड़ संसारकी लाज और माता पिता बंधुकी शंका तज हमें ब्राह्मणके हाथ बुलाय भेजा.

तुम्हरे योग न हम परवीन। भूपति नहीं रूप गुणहीन॥
काहू याचक कीरतिकरी। सोतुम सुनिकै मनमें धरी॥
कटकसाजिनृपव्याहनआयो। तबतुमहमको बोलिपठायो॥
आय उपाधि बनी तहँभारी। क्योंहूंकैपतिरहीहमारी॥
तिनकेदेखततुमकोलाये। दलहलधरउनके बिचलाये॥
तुमलिखभेजीहीयहबानी। शिशुपालते छुडावो आनी॥
सो परतिज्ञा रही तिहारी। कछु न इच्छा हुती हमारी॥
अजहूँ कछु न गयो तिहारो। सुन्दरि मानहुँ वचन हमारो॥

कि, जो कोई भूपति कुलीन गुणी बली तुम्हारे योग्य होय, तुम तिसके पास जाय रहियो. महाराज! इतनी बातके सुनतेही श्रीरुक्मिणीजी भय चकित हो भहराय पछाड़ खाय भूमिपर गिरीं; और जलबिन मीनकी भाँति तड़फड़ाय अचेतहो लगीं ऊर्ध्व श्वास लेने तिसकाल-

दो०-इहिछबिमुखअलकावली, रहीं लपटि इकसंग।
मानहुँ शशि भूतलपरयो, पीवत अमी भुअंग॥

यह चरित्र देख इतना कह श्रीकृष्णचंद्र घबरायकर उठे कि, यह तो अभी प्राण तजती है; तब चतुर्भुजहो उसके निकट जाय दो हाथसे पकड़ उठाय गोदमें बैठाय एक हाथसे पंखा करने लगे; और एक हाथसे अलक सवाँरने. महाराज! उसकाल नंदलाल प्रेमवशहो अनेक अनेक चेष्टाकरने लगे कभी पीतांबरसे प्यारीका चंद्रमुख पोंछतेथे कभी कोमल कमलसा अपना हाथ उसके हृदयपर रखतेथे, निदान कितनी एक बेरमें श्रीरुक्मिणीजीके जीमें जी आया. तब-हरि बोले.

तू है सुंदरि प्रेमगँभीर । तैं मन कछु न राखी धीर ॥
तैं मन जान्यो साँचे छाँड़ी । हमने हँसी प्रेमकी माड़ी ॥
अब तू सुंदरि देह सँभार । प्राण ठौरके नयन उघार ॥
जौलोंतू बोलत नहिं प्यारी । तौलों हम दुख पावत भारी ॥
चेती वचनसुनत प्रियनारी । चितई वारिजनयन उघारी ॥
देखे कृष्ण गोदमें लिये । भई लाज अतिसकुची हिये ॥
हरबराय उठि ठाढ़ी भई । हाथ जोरि पांयन परिरई ॥
बोले कृष्ण पीठ कर देत । भली मिलीजू प्रेम अचेत ॥

हमने हाँसी ठानी, सो तुमने साँचही जानी; हँसीकी बातमें क्रोध करना उचित नहीं उठो अब क्रोध दूर करो; और मनका शोक हरो. महाराज! इतनी बातके सुनतेही श्रीरुक्मिणीजी उठ हाथजोड़ शिरनाय कहनेलगीं, कि महाराज! आपने जो कहा कि हम तुम्हारे योग्य नहीं सो सचकहा. क्योंकि तुम लक्ष्मीपति शिव विरंचिके ईश, तुम्हारी समताका त्रिलोकी में कौन है हे जगदीश! तुम्हें छोड़ जो जन औरको ध्यावें, सो ऐसे हैं जैसे कोई हरियश छोड़ गृध्रगुण गावे. महाराज! आपने जो कहा कि, तुम किसी महाबली राजाको देखो, सो तुमसे अतिबली और बड़ा राजा त्रिभुवनमें को है सो कहो? ब्रह्मा रुद्र इंद्रादि सब देवता वरदायी तो तुम्हारी आशा करें हैं. तुम्हारी कृपासे वे जिसे चाहते हैं तिसे महाबली प्रतापी यशी तेजस्वी वर दे बनाते हैं और

जो लोग आपकी सैकड़ोंवर्ष अतिकठिन तपस्या करतेहैं सो राजपद पातेहैं फिर तुम्हारा भजन ध्यान जप तप भूल नीति छोड़ अनीति करतेहैं; तब वे आपसे आपही अपना सर्वस्व खोय भ्रष्ट होते हैं. कृपानाथ। तुम्हारी तो सदाकी यह रीतिहै कि, अपने भक्तोंके हेतु संसारमें आय वारंवार अवतार लेते हो; और दुष्ट राक्षसोंको मार पृथ्वीका भार उतार निज जनोंको सुखदे कृतार्थ करतेहो; और हे नाथ! जिसपर तुम्हारी बड़ी दया होतीहै और वह धन राज यौवन रूप प्रभुता पाय जब अभिमानसे अंधाहो धर्म, कर्म, तप, सत, दया, पूजा, भजन भूलताहै तब तुम उसे दरिद्री बनातेहो. क्योंकि दरिद्री सदाही तुम्हारा ध्यान सुमिरण किया करताहै. इसीसे तुम दरिद्री बनाते हो. जिसपर तुम्हारी बड़ी कृपा होगी सो सदा निर्धन रहेगा. महाराज! इतना कह फिर रुक्मिणीजी बोलीं कि हे प्राणनाथ! जैसा काशीपुरी के राजा इंद्रद्युम्नकी बेटी अंबाने किया तैसा मैं न करूंगी कि, वह पतिको छोड़ राजाभीष्मजीके पासगई और जब उसने इसे न रक्खा तब फिर अपने पतिके पास आई पुनि पतिने उसे निकाल दिया. तब उसने गंगातीरमें बैठ महादेवका बड़ा तप किया तहाँ भोलानाथने आय उसे मुँह माँगा वर दिया. उस वरके बलसे जाय राजाभीष्मसे अपना पलटा लिया सो मुझसे न होगा.

अरु तुम नाथ यहौ समुझाई। काहू याचक करी बड़ाई ॥
वाको वचन मानि तुम लियो। हमपै विप्र पठैके दियो ॥
याचक शिव विरंचि शारदा। नारद गुण गावत सर्वदा ॥
विप्र पठायो जानि दयाल। आय कियो दुष्टनको काल ॥
दीनजानि दासी सँग लई। तुम मोहिं नाथ बड़ाई दई ॥
यहसुनिकृष्णकहतसुनप्यारी। ज्ञानध्यानगतिलहीहमारी ॥
सेवा भजन प्रेम तैं जान्यो। तोहीं सों मेरो मनमान्यो ॥

महाराज! प्रभुके मुखसे इतनी बात सुन संतुष्टहो रुक्मिणीजी फिर हरिकी सेवा करने लगीं.

इति श्रीलल्लूलालकृते प्रेमसागरे श्रीरुक्मिणीपरिहासवर्णनो नाम एकषष्टितमोऽध्यायः ॥ ६१ ॥

अध्याय ६२.

श्रीशुकदेवजी बोले कि, महाराज! सोलहसहस्र, एकसौआठ स्त्रियोंको ले श्रीकृष्णचन्द्र आनंदसे द्वारकापुरीमें विहार करने लगे; और आठों पटरानियां आठों पहर हरिकी सेवामें रहैं नित उठ भोरही कोई मुख धुलावै, कोई उबटन लगाय नहलावै, कोई षट्रस भोजन बनाय जिमावै, कोई अच्छे पान लौंग इलायची जावित्री जायफल समेत पियको बनाय खिलावै, कोई सुंदर वस्त्र और रत्न जड़ित आभूषण चुनवाय और बनाय प्रभुको पहनातीथी, कोई फूल माल पहराय गुलाब नीर छिड़क केशर चंदन चरचतीथी कोई पंखा ढोलतीथी; और कोई पाँव दाबतीथी. महाराज! इसी भाँति सब रानियाँ अनेक अनेक प्रकारसे प्रभुकी सदा सेवा करैं; और हरि हरभाँति उन्हें सुखदें. इतनी कथा सुनाय श्रीशुकदेवजी बोले, कि महाराज! कई वर्षके बीच—

दोहा०—एक एक यदुनाथकी, नारिन जाये पुत्र।
इक इक कन्या लक्ष्मी, दश दश पुत्र सुपुत्र॥
एकलाख इकसठसहस, असीबालइकसार।
भये कृष्णके पुत्र ये, गुण बलरूप अपार॥

सब मेघवर्ण, चंद्रमुख, कमलनयन, नीले पीले झँगुले पहने गंडे कठले ताइत गलेमें डाले घर घर बालचरित्र कर कर माता पिताको सुखदें, और उनकी मायें अनेकभाँति से लाड़ प्यार कर प्रतिपाल करें महाराज!

श्रीकृष्णचंद्रजीके पुत्रोंका होना सुन रुक्मने अपनी स्त्रीसे कहा कि, अब मैं अपनी कन्या चारुमती जो कृतवर्माने मांगी है उसे न दूंगा, स्वयंवर करूँगा तुम किसीको भेज मेरी बहन रुक्मिणीको पुत्र समेत बुलवा भेजो. इतनी बातके सुनतेही रुक्मकी नारीने अति विनतीकर ननँदको पत्र लिख पुत्र समेत एक ब्राह्मणके हाथ बुलवाया और स्वयंवर किया भाई भौजाईकी चिट्ठी पातेही रुक्मिणीजी श्रीकृष्णजीसे आज्ञा ले बिदाहो पुत्रकेसहित चलीचली द्वारकासे भोजकटमें भाईके घर पहुँचीं.

देखिरुक्मने अतिसुखपायो। आदर कर नीचोशिरनायो॥
पाँयनपर बोली भौजाई। हरणभयो तबते अब आई॥

यह कह फिर उसने रुक्मिणीजीसे कहा कि, ननँद जो तुम आई हो तो हमपर दया मया कीजे; और चारुमती कन्याको अपने पुत्रके लिये लीजे. इस बातके सुनतेही रुक्मिणीजी बोलीं, कि भौजाई! तुम पतिकी गति जानतीहो मत किसीसे कलह करवावो, भैयाकी बात कुछ कही नहीं जाती, क्या जानिये किस समय क्या करें, इससे कोई बात कहते करते भय लगताहै. रुक्म बोला कि बहन! अब तुम किसी भाँति न डरो, कुछ उपाधि न होगी. वेद की आज्ञा है कि, दक्षिण देशमें कन्या-दान भानजेको दीजे. इस कारण मैं अपनी पुत्री चारुमती तुम्हारे पुत्र प्रद्युम्नको दूंगा; अरु श्रीकृष्णजीसे वैरभाव छोड़ नया सम्बंध करूंगा महाराज! इतना कह जब रुक्म वहाँसे उठ सभामें गया तब प्रद्युम्नजी भी मातासे आज्ञा ले बनठन कर स्वयंवरके बीचमें गये तो क्या देखते हैं कि, देशदेशके नरेश भाँति भाँतिकें वस्त्र आभूषण पहने शस्त्र बाँधे बनाव किये विवाहकी अभिलाषा हियेमें लिये सब खड़े हैं और वह कन्या जयमाल कर लिये चारोंओर दृष्टि किये बीचमें फिरती है; पर किसीपे दृष्टि उसकी नहीं ठहरती इसमें ज्यों प्रद्युम्नजी स्वयंवरके बीचमें गये, त्यों देखतेही उस कन्याने मोहित हो आ इनके गलेमें जयमाल डाली. सब राजा अछताय पछताय अपनासा मुँह देखते खडे रहगये. और अपने मनहींमन कहनेलगे, कि भला! देखें हमारेआगे से इस कन्याको कैसे

लेजायगा, हम बाटहीमें छीन लेंगे. महाराज ! सब राजा तो यों कह रहेथे, और रुक्मने वर कन्याको माँढेके नीचे लेजाय वेदकी विधिसे संकल्पकर कन्यादान किया और उसके यौतुक में बहुतही धन द्रव्य दिया कि जिसका कुछ पारावार नहीं. आगे श्रीरुक्मिणीजी पुत्रको व्याह भाई भौजाईसे बिदाहो बेटे बहूको ले रथपर चढ़ जो द्वारकापुरीको चलीं तो सब राजाओंनें आय मार्ग रोका इसलिये कि, प्रद्युम्नजीसे लड़ कन्याको छीनलें उनकी यह कुमति देख प्रद्युम्नजी भी अपने अस्त्र शस्त्र ले युद्ध-करनेको उपस्थित हुए, कितनी एकबेरतक इनसे उनसे युद्ध होतारहा, निदान प्रद्युम्नजी उन सबको मार भगाय आनंदमंगलसे द्वारकापुरीमें पहुँचे इनके पहुँचनेका समाचार पाय सब कुटुंबके लोग क्या स्त्री क्या पुरुष पुरीके बाहरआये रीति भाँतिकर पाटंबरके पाँवडे डालते बाजे गाजेसे इन्हें लेगये. सारे नगरमें मंगल हुआ ये राजमंदिरमें सुखसे रहने लगे.

इतनी कथा सुनाय श्रीशुकदेवजीने राजापरीक्षितसे कहा कि, महा-राज ! कईवर्ष पीछे श्रीकृष्णचंद्र आनंदकंदके पुत्र प्रद्युम्नजीके पुत्र हुआ. उसकाल श्रीकृष्णचंद्रजीने ज्योतिषियोंको बुलाय सब कुटुम्बके लोगोंको बैठाय मंगलाचार करवाय शास्त्रकी रीतिसे नामकरण किया. ज्योतिषियोंने पत्रा देख वर्ष, मास, पक्ष, दिन, तिथि, घड़ी, लग्न, नक्षत्र ठहराय उस लड़केका नाम अनिरुद्ध रक्खा उसकाल-

सो०-फूले अँग न समायँ, दान दक्षिणा द्विजनको।
देत न कृष्ण अघायँ, पुत्रभयो प्रद्युम्नके ॥

महाराज ! नातीके होनेका समाचार पाय पहले तो रुक्मने बहन बहनोईको अति हितकर यह पत्रीमें लिख भेजा कि, तुम्हारे पोतेसे हमारी पोतीका व्याह होय तो बड़ा आनंदहै, और पीछे एक ब्राह्मणको बुलाय रोरी, अक्षत, रुपया, नारियलदे उसे समझायके कहा कि, तुम द्वारकापुरीमें जाय हमारी ओरसे अति बिनतीकर श्रीकृ-ष्णजीका पौत्र अनिरुद्ध जो हमारा दोहताहै तिसे टीका दे आवो बातके

सुनतेही ब्राह्मण टीका और लग्न साथले चला चला श्रीकृष्णचंद्रके पास द्वारकापुरीमें गया. उसे देख प्रभुने अति मान सन्मानकर पूछा कि, कहो देवता! आपका आना कहाँसे हुआ? ब्राह्मण बोला महाराज! मैं राजा भीष्मकके पुत्र रुक्मका पठायाहूं, उनकी पौत्री और आपके पौत्रसे संबंध करनेको टीका और लग्न ले आयाहूं. इस बातके सुनतेही श्रीकृष्णजीने दश भाइयोंको बुलाय टीका और लग्न ले उस ब्राह्मणको बहुत कुछ दे बिदा किया और आप बलरामजीके निकट जाय चलनेका बिचार करने लगे. निदान वे दोनों भाई वहाँसे उठ राजा उग्रसेनके पास जाय सब समाचार सुनाय उनसे बिदाहो बाहर आय बरातकी सब सामा मँगवाय इकट्ठी करवाने लगे. कई एक दिनोंमें जब सब सामान उपस्थित होचुका, तब बडी धूमधामसे प्रभु बरात ले द्वारकासे भोजकट नगरको चले. उसकाल एक झमझमाते रथपर तो रुक्मिणीजी पुत्र पौत्रको ले बैठी जातीथीं और एक रथपर श्रीकृष्णचंद्र और बलराम बैठे जातेथे. निदान कितनेक दिनोंमें सब समेत प्रभु वहाँ पहुँचे. महाराज! बरातके पहुँचतेही रुक्म कलिंगादि सब देश देशके राजाओंको साथ ले नगरके बाहर जाय आगौनी कर सबको बागे पहराय अति आदर मान कर जनवासेमें लिवाय लाया. आगे सबको खिलाय पिलाय माँढेके नीचे लिवाय लेगया, और उसने वेदकी बिधिसे कन्यादान किया. उसके यौतुकमें जो दान दिया उसको मैं कहाँतक कहूं वह अकथहै. इतनी कथा सुनाय श्रीशुकदेवजी बोले महाराज! व्याहके होचुकतेही राजाभीष्मकने जनवासेमें जाय हाथ जोड़ अति बिनतीकर श्रीकृष्णचंद्रजीसे चुपचुपाते कहा. महाराज! विवाह होचुका और रसम रहा, अब आप शीघ्र चलनेको विचार कीजो, क्योंकि-

भूप संगजे रुक्म बुलाये। ते सब दुष्ट उपाधी आये॥
मत काहूसों उपजै रारि। याहीतेहौं कहत मुरारि॥

इतनी बात कह जो राजा भीष्मक गये, त्योंहीं श्रीरुक्मिणीजीके निकट रुक्म आया.

दो०-कहति रुक्मिणी टेरकर, किमि घर पहुँचे जाय।
बैरी भूपति पाहुने, जुरे तिहारे आय॥

जोतुम भय्या चाहो भलो। हमहिं वेगि पहुँचावन चलो॥

नहीं तो रसमें अनरस होता दीखताहै, यह बचन सुन रुक्म बोला कि, बहन! तुम किसी बातकी चिंता मत करो. मैं पहले जो राजा देश देशके पाहुने आयेहैं तिन्हें बिदा कर आऊं पीछे जो तुम कहोगी सो मैं करूंगा. इतना कह रुक्म यहाँसे उठ जो राजा पाहुने आयेथे उनके पास गया. वे सब मिलके कहनेलगे कि. रुक्म! तुमने कृष्ण बलदेवको इतना धन द्रव्य दिया और उन्होंने मारे अभिमानके कुछ भला न माना. एक तो हमें इस बातका पछतावाहै, और दूसरे उस बातकी कसक हमारे मनसे नहीं जाती कि, जो बलरामने तुम्हें अभरन कियाथा. महाराज! इसबातके सुनतेही रुक्मको क्रोध हुआ. तब राजा कलिंग बोला कि, एक बात मेरे जीमें आई है कहोतो कहूं? रुक्मने कहा कहो; फिर उसने कहा कि हमें श्रीकृष्णसे कुछ काम नहीं पर बलरामको बुलादे तो हम उससे चौपड़ खेल सब धन जीतलें, और जैसा उसे अभिमानहै तैसा यहाँसे रीते हाथ बिदाकरें ज्यों कलिंगने यह बात कही त्योंहीं रुक्म वहाँसे उठ कुछ शोच बिचार कर बलरामजीके निकटजा बोला कि, महाराज! आपको सब राजाओंने प्रणामकर चौपड़ खेलनेको बुलायाहै.

सुनिबलभद्रतबहिंतहँआये। भूपति उठिके शीश नवाये॥

आगे सब राजा बलरामजीका शिष्टाचार कर बोले कि, आपको चौपड़ खेलनेका बड़ा अभ्यास है, इसलिये हम आपके साथ खेला चाहते हैं. इतना कह उन्होंने चौपड़ मँगवाय बिछाई और रुक्मसे और बलरामजीसे होने लगी. पहले रुक्म दशबेर जीता तो बलदेवजीसे कहने लगा कि, धन तो सब जीता अब काहेसे खेलोगे? इसमें राजाकलिंग बड़ीबात कह हँसा, यह चरित्र देख बलदेवजी नीचा शिरकर सोचविचार करने लगे. तब रुक्मने दशकरोड़ रुपये एकबार लगाये, सो बलरामजीने

जो जीतके उठाये तो सब धाँधल कर बोले कि, यह रुक्मका पाँसा पड़ा तुम क्यों रुपये समेटते हो ?

सुनि बलराम फेर सब दीन्हें । अर्ब लगायो पीछे लीन्हें ॥

फिर हलधर जीते और रुक्म हारा. उसमय भी रोंगटीकर सब राजाओंने रुक्मको जिताया और यों कह सुनाया-

जुआँ खेल पाँसेकी सार । यह तुम जानौ कहा गँवार ॥
जुआँ युद्धगति भूपति जानैं । ग्वालगोप गैयन पहिचानैं ॥

इसबातके सुनतेही बलदेवजीका क्रोध यों बढ़ा कि जैसे पूनोको समुद्रकी तरंग बढ़े. निदान ज्यों त्यों कर बलरामजीने क्रोध को रोक मनको समझाय फिर सात अर्ब रुपये लगाये और चौपड़ खेलने लगे फिर भी बलदेवजी जीते और सबोंने कपटकर रुक्महीको जीता कहा, इस अनीतिके होतेही आकाशसे यह वाणी हुई कि, हलधर जीते और रुक्म हारा; अरे राजावो ? तुमने क्यों झूंठ वचन उचारा ? महाराज ! जब रुक्मसमेत सब राजाओंने आकाशवाणी सुनी अनसुनी की, तब तो बलदेवजी महा क्रोधमें आय बोले-

करी सगाई वैर न छाँड़्यो । हमसों फेर कलह तुममाँड्यो ॥
मारौं तोहि अरे अन्याई । भलो बुरो मानहु भौजाई ॥
अबकाहूकीकानिनकरिहौं । आज प्राणकपटीके हरिहौं ॥

इतनी कथा कह श्रीशुकदेवजीने राजापरीक्षितसे कहा कि, महाराज ! निदान बलरामजीने सबके देखते २ रुक्मको मारडाला और कलिंगको पछाड़ मारे घूसोंसे उसके दाँत उखाड़ लिये और कहा कि, तूभी मुँह पसारके हँसाथा. आगे सब राजाओंको मार भगाय बलरामजीने जनवासेमें श्रीकृष्ण चंद्रके पासआय सब ब्योरा कह सुनाया, बातके सुनतेही हरिने सब समेत वहाँसे प्रस्थानकिया और चले चले आनंदमंगलसे द्वारकामें आय पहुँचे इनके आतेही सारे नगरमें सुख छायगया घर घर मंगलाचार होने लगे श्रीकृष्णचंद्रजी और बलदेवजीने राजा उग्रसेन के

सन्मुख जाय हाथ जोड़ कहा, महाराज! आपके पुण्य प्रताप से अनिरुद्धको व्याह लाये और महादुष्ट रुक्मको मार आये.

इति श्रीलल्लूलालकृते प्रेमसागरे अनिरुद्धविवाहरुक्मवधोनाम द्विषष्टितमोऽध्यायः ॥ ६२ ॥

अध्याय ६३.

श्रीशुकदेवजी बोले कि, महाराज! अब जो द्वारकानाथका बल पाऊं तो ऊषाहरणकी कथा सब गाऊँ; जैसे उसने रात्रिसमय स्वप्नमें अनिरुद्धजीको देखा और आसक्तहो खेद किया पुनि चित्ररेखाने अनिरुद्धको लाय ऊषासे मिलाया तैसे मैं सब प्रसंग कहताहूं, तुम मनदे सुनो ब्रह्माके वंशमें पहले कश्यप हुआ. तिसका पुत्र हिरण्यकशिपु अतिबली और महाप्रतापी और अमर भया. उसका सुत हरिजन प्रभुभक्त प्रह्लाद नाम हुआ. उसका बेटा राजा विरोचन० तिसका पुत्र राजा बलि. जिसका यश धर्म धरणीमें अबतक छायरहा है कि प्रभुने वामन अवतार ले राजा बलिको छल पाताल पठाया, उस बलिका ज्येष्ठ पुत्र महापराक्रमी बड़ा-तेजस्वी बाणासुर हुआ वह शोणितपुरमें बसे, नित कैलासमें जाय शिवकी पूजा करे, ब्रह्मचर्य पाले, सत्य बोले, जितेंद्रिय रहे. महाराज! एक दिन बाणासुरकैलासमें जाय हरकी पूजाकर प्रेममें आय लगा मग्नहो मृदंग बजाय २ नाचने गाने. उसका गाना बजाना सुन श्रीमहादेव भोलानाथ मग्नहो लगे पार्वतीजीको साथले नाचने और डमरू बजाने.

निदान नाचते नाचते शंकरने अति सुखपाय प्रसन्नहो बाणासुरको निकट बुलाय कहा पुत्र मैं तुझपर संतुष्टहुआ, वर माँग! जो तू माँगेगा सो मैं दूंगा

तैंने बाजे भले बजाये। सुनतश्रवण मेरे मन भाये॥

इतनी बातके सुनतेही, महाराज! बाणासुरहाथ जोड़ शिरनाय अति दीनताकर बोला कि, कृपानाथ! जो आपने मेरे ऊपर कृपाकी तो पहले अमरकर मुझे सब पृथ्वीका राज्य दीजै. पीछे मुझे ऐसा बली कीजै कि, कोई मुझसे न जीतै. महादेवजी बोले कि मैंने तुझे यही वर दिया और सब भयसे निर्भय किया. त्रिभुवनमें तेरे बलको कोई न पावेगा और विधाताकी भी कुछ तुझपर वश न चलेगी.

दो०-बाजेभले बजायके, दियो परमसुख मोहिं।
मैंअतिहिय आनंदकर, दियेसहसभुजतोहिं॥

अब तू घर जाय निश्चिंताईसे बैठ अविचल राज्यकर, महाराज! इतना वचन भोलानाथके मुखसे सुन सहस्रभुजापाय बाणासुर अति प्रसन्नहो परिक्रमा दे शिरनाय बिदाहो आज्ञा ले शोणितपुरमें आया. आगे त्रिलोकीको जीत सब देवताओंको वशकर नगरमें चारों ओर जलकी चुआन चौड़ी करवाई और अग्नि पवनका कोट बनाय निर्भयहो सुखसे राज्य करने लगा, कितने एक दिन पीछे-

दो०-लरबेबिनभईभुजसबल, फरकाहिंअतिसहरायँ।
कहत बाण कासों लरैं, कापर अब चढिजायँ॥

भईखाजलड़बेबिनभारी। को पुजवै हिय हौंस हमारी॥

इतना कह बाणासुर घरसे बाहर जाय लगा पहाड़ उठाय २ तोड़ तोड़ चूर करने और देश देश फिरने. जब सब पर्वत फोड़ चुका और उसके हाथोंकी सुरसुराहट खुजलाहट न गई तब-

कहत बाण अबकासोंलरौं। इतनी भुजा कहालैकरौं॥
सबल भार मैं कैसे सहौं। बहुरिजायके हरसोंकहौं॥

महाराज! ऐसे मनहीमन सोच विचारकर बाणासुर महादेवजीके सन्मुख जा हाथ जोड़ शिरनाय बोला, कि हे त्रिशूलपाणि नाथ! तुमने जो कृपाकर सहस्रभुजा दीं सो मेरे शरीरपर भार भई. उनका बल अब मुझसे सँभाला नहीं जाता. उसका कुछ उपाय कीजे, कोई महाबली युद्ध करनेको मुझे बताय दीजे, मैं त्रिभुवन में ऐसा पराक्रमी किसीको नहीं देखता, जो मेरे सन्मुख हो युद्ध करे. अब दयाकर जैसे आपने मुझे महाबली किया, तैसेही कृपाकर मुझसे लड़ मेरे मनकी अभिलाष पूरी कीजे तो कीजे नहीं तो और किसी अति बलीको बतादीजे. तिससे मैं जाकर युद्ध करूं और अपने मनका शोक हरूं. इतनी कथा कह श्रीशुकदेवजी बोले कि महाराज बाणासुरसे इस भाँतिकी बातें सुन श्रीमहादेवजी बिलखाय मनहीमन इतना कहा कि मैंने तो इसे साधु जानके वर दिया; अब यह मुझसेही लड़नेको उपस्थित हुआ इस मूर्खको बलका गर्व भया यह जीता न बचेगा, जिसने अहंकार किया, सो जगत्में आय बहुत दिन न जिया. ऐसे मनहीमन महादेवजी कह बोले कि बाणासुर तू मत घबराय, तुझसे युद्ध करनेवाला थोड़े दिनके बीच यदुकुलमें श्रीकृष्णावतार होगा, उसबिन त्रिभुवनमें तेरा सामना करनेवाला कोई नहीं यह वचन सुन बाणासुर अति प्रसन्न हो बोला कि, नाथ! वह पुरुष कब अवतार लेगा? और मैं कैसे जानूंगा कि अब वह उपजा, हे राजा! शिवजीने एक ध्वजा बाणासुरको देके कहा, कि इसको लेजा अपने मंदिरके ऊपर गाड़दे; जब यह ध्वजा आपसे आप टूटकर गिरे, तब तू जानिये कि मेरा रिपु जन्मा है.

महाराज! जब शंकरने उससे ऐसा समझाके कहा, तब बाणासुर ध्वजा ले निज घरको शिरनाय चला. आगे घरजाय ध्वजा मंदिरपर चढ़ाय दिन दिन यही मनाताथा कि, कब वह पुरुष प्रकटै और मैं उससे युद्ध करूं; इसमें कितने एक वर्ष बीते उसकी बड़ी रानी बाणावती तिसके गर्भ रहा और पूरे दिनोंमें एक लड़की हुई; उसकाल बाणासुरने ज्योतिषियोंको बुलाय बैठायके कहा कि, इस लड़कीका नाम और गुण गण-

कर कहो, इतनी बातके कहतेही ज्योतिषियोंने झट वर्ष, मास, पक्ष, तिथि, वार, घटी, मुहूर्त्त, नक्षत्र ठहराय लग्नविचार उस लड़कीका नाम ऊषा धरके कहा, कि महाराज! यह कन्या रूप गुण शीलकी खान महासुजान होगी इसके ग्रह लक्षण ऐसेही आनपड़े हैं.

इतना सुन बाणासुरने अति प्रसन्नहो बहुत कुछ ज्योतिषियोंको दे बिदाकिया. पीछे मंगलामुखियोंको बुलाय मंगलाचार करवाये. पुनि ज्यों ज्यों वह कन्या बढ़ने लगी त्यों त्यों बाणासुर उसे अतिप्यार करने लगा, जब ऊषा सातवर्षकी भई तब उसके पिताने शोणितपुरके निकट ही कैलास था तहाँ कई एक सखी सहेलियोंके साथ शिव–पार्वतीजीके पास पढ़नेको भेजदिया. ऊषा गणेश सरस्वतीको मनाय शिव पार्वतीजीके सन्मुख जाय हाथ जोड़ शिरनाय विनतीकर बोली, कि हे कृपासिंधु शिवगौरी! दयाकर मुझ दासीको विद्या दान कीजै और जगतमें यश लीजै. महाराज! ऊषाके अति दीनवचन सुन शिव पार्वतीने उसे प्रसन्नहो विद्याका आरंभ करवाया, वह नितप्रति जाय पढ़ पढ़ आवे, इसमें कितने एक दिनोंके बीच सब शास्त्र पढ़ विद्यागुणवती हुई और सब यंत्र बजाने लगी. एक दिन ऊषा पार्वतीजीके साथ मिलकर वीणा बजाय संगीतकी रीतिसे गाय रहीथी कि, शिवजीने आय पार्वतीसे कहा, हे प्रिये! मैंने जो कामदेवजीको जलायाथा तिसे अब कृष्णचंद्रजीने उपजाया इतना कह श्रीमहादेवजी गिरिजाको साथ ले गंगातीरमें जाय नीरमें न्हाय न्हिलाय सुखकी इच्छाकर अति लाड़प्यारसे लगे पार्वतीजीको वस्त्र आभूषण पहराने और हितकरने. निदान अति आनंदमें मग्नहो डमरू बजाय बजाय तांडव नाच नाच संगीत शास्त्रकी रीतिसे गाय गाय लगे पार्वतीको रिझाने; और बड़े प्यारसे कंठ लगाने. उस समय ऊषा शिव गौरीको सुख प्यार देख देख पतिके मिलनेकी अभिलाषा कर मनहीं मन कहने लगी कि, मेरा भी कंत होय तो मैंभी शिव पार्वती की भाँति उसके साथ विहार करूं; पति विन कामिनीकी ऐसी शोभा हीन है जैसे चंद्रविन यामिनी. महाराज! ज्यों ऊषाने मनहीं मन इतनी बात कही, त्यों अंतर्यामिनी श्रीपार्वतीजीने ऊषाकी अंतर्गति जान उसे

अतिहितसे निकट बुलाय प्यारकर समझाके कहा कि, बेटी! तू किसी बातकी चिंता मनमें मतकर तेरा पति तुझे स्वप्नमें आय मिलेगा. तू उसे ढुँढ़वाय लीजो और उसके साथ सुखभोग कीजो. ऐसे वर दे शिवरानीने ऊषाको विदा किया. वह सब विद्या पढ़ वर पाय दंडवतकर अपने पिताके पास आई, पिताने एक मंदिर अति सुंदर निराला उसे रहनेको दिया. और यह कितनीएक सखी सहेलियोंको ले वहाँ रहने लगी. और दिन दिन बढ़ने. महाराज! जिसकाल वह बाला बारह वर्षकी हुई, तो उसके मुखचंद्रकी ज्योतिको देख पूर्णमासीका चंद्रमा छवि छीन हुआ, बालोंकी श्यामताके आगे अमावसकी अँधेरी फीकी लगने लगी, उसकी चोटीकी सटकाई लख नागिनी अपनी केंचुली छोड़ सटकगई, भौंहकी बँकाई निरख धनुष धकधकाने लगा. आँखोंकी बड़ाई चंचलाई पेख मृग मीन खंजन खिसियाय रहे, नाककी सुंदरताई देख तिलफुल मुरझाय गया, उसके अधरकी लाली पेख बिंबाफल बिलबिलाने लगा, दाँतकी पाँति निरख दाड़िमका हिया दरक गया. कपोलोंकी कोमलताई पेख गुलाब फूलनेसे रहा, गलेकी गुलाई देख कपोत कलमलाने लगे, कुचोंकी कोर निरख कमलकली सरोवरमें जाय गिरी, जिसकी कटिकी कृशता देख केसरीने वनवास लिया. जंघोंकी चिकनाई पेख केलेने कपूर खाया, देहकी गोराई निरख सोनेको सकुच भई और चंपा चप गया, कर पदके आगे पद्मकी पदवी कुछ न रही. ऐसी वह गजगामिनी, पिकबयनी, नवबाला यौवनकी सरसाईसे शोभायमान भई कि, जिसने इन सबकी शोभा छीनली; आगे एकदिन वह नवयौवना सुगंध उबटन लगाय निर्मल नीरसे मल मल न्हाय कंघी चोटीकर पाटी सँवार मांग मोतियोंसे भर अंजन मंजनकर मिहँदी महावर रचाय पान खाय अच्छे जड़ाऊ सोनेके गहने मँगवाय शीशफूल, बेना, बेंदी, बंकी, ढेंड़ी, कर्णफूल, चौदानियां, छड़े, गजमोतियोंकी नथ, झलके लटकन समेत जुगनू मोतियोंके दुलड़ेमें गुही, चंद्रहार, मोहनमाल, पंचलडी, धुकधुकी, भुजबंद, नौरतन, चूड़ी, नौगरी, कंकण, कड़े, मुँदरी, छाप, छल्ले, किंकिणी, तेहर, जेहर, गूजरी, अनवट बिछुये पहन सुथरा झमझमाता सच्चे मोतियोंकी कोरका बड़े घेरका घाँवरा और चमचमाती

अंचल पल्लूकी सारी पहर जगमगाती कंचुकी कस ऊपरसे झलझलाती ओढ़नी ओढ़ और ओढ़नीपर सुगंध लगाय इस सजधजसे हँसती हँसती सखियोंके साथ माता पिताको प्रणाम करने गई कि, जैसे लक्ष्मी, ज्यों सन्मुख जाय दंडवत्कर ऊषा खड़ी भई त्यों बाणासुरने उसके यौवनकी छटा देख निज मनमें इतना कह उसे बिदा किया कि, अब यह ब्याहन योग्य हुई और पीछेसे कई एक राक्षस उसके मंदिरकी रखवालीको भेजे और कितनी एक राक्षसिनी उसकी चौकसीको पठाईं, वे वहाँ जाय आठ प्रहर सावधानीसे रहने लगे. और राक्षसियां सेवा करने लगीं. महाराज वह राजकन्या पतिके लिये नितप्रति जप दान व्रतकर श्रीपार्वतीजीकी पूजा किया करे. एक दिन नित्य कर्मसे निश्चित हो रातसमय सेजपर अकेली बैठी मनहींमन यों सोच रही थी कि, देखिये पिता मेरा विवाह कब करे और किस भांति मेरा वर मुझे मिले. इतना कह पतिहीके ध्यानमें सोगई तो स्वप्नमें देखती क्याहै कि एक पुरुष किशोर वैस, श्याम वर्ण, चंद्रमुख, कमलनयन, अतिसुंदर, कामरूप, मोहनस्वरूप, पीतांबर पहरे, मोरमुकुट शिरधरे, त्रिभंगीछबिकरे, रत्नजड़ित आभूषण, मकराकृत कुंडल, वनमाल गुंजहार पहने और पीतवसन ओढे महाचंचल सन्मुख आय खड़ा हुआ. यह उसे देखतेही मोहितहो लजाय शिर झुकाय रही. तब उसने कुछ प्रेमसनी बातें कर स्नेह बढ़ाय निकट आय हाथ पकड़ कंठ लगाय इसके मनका भ्रम और सोच संकोच सब बिसराय दिया. फिर तो परस्पर सोच संकोच तज सेजपर बैठ हाव भाव कटाक्ष और आलिंगन चुम्बनकर सुख लेनेदेने लगे और आनंदमें मग्नहो प्रीतिकी बातें करने कि, इसमें कितनीएक बेर पीछे ऊषाने ज्यों प्यारकर चाहा कि, पतिको एकबार अंकभर कंठ लगाऊं त्यों नयनोंसे नींदगई और जिस भाँति हाथ बढ़ाय मिलनेको भईथी, तिसी भाँति मुरझाय पछताय रहगई.

दो०-जागि परी सोचत खरी, भयो परमदुख ताहि।
कहाँ गयो वह प्राणपति, देखति चहुँदिशि चाहि॥

सोचति ऊषा मिलिहौंकाहि । फिर कैसे मैं देखों ताहि ॥
सोवत जो रहती हौं आज । प्रीतम कबहूँ न जातो भाज॥
क्यों सुखमें गहिबेको भई । जो यह नींद नयनते गई ॥
जागतही यामिनि यम भई । जैहै क्यों अब यह दुखदई ॥
बिन प्रीतम चित निपट अचैन। देखे बिन तरसतहैं नैन ॥
श्रवण सुन्यो चाहतहैं बैन । कहाँ गये प्रीतम सुखदैन ॥
जो अपने पिय पुनि लखि लेहूँ। प्राणनाथ करिउनके देहूँ ॥

महाराज ! इतना कह ऊषा अतिउदास हो पियका ध्यानकर सेजपर जाय मुख लपेट पड़रही. जब रात जाय भोर हुआ और डेढ़पहर दिन चढ़ा; तब सखी सहेली मिल आपसमें कहनेलगीं कि; आज क्याहै जो ऊषा इतना दिन चढ़ा और अबतक सोती नहीं उठी. यह बात सुन चित्ररेखा बाणासुरके प्रधान कूष्मांडकी बेटी चित्रशालामें जाय क्या देखतीहै कि, ऊषा छपर खटके बीच मनमारे जी हारे निढाल पड़ी रो रो लंबी श्वासें ले रहीहै. उसकी यह दशा देख-

चित्ररेखा बोली अकुलाय । कहसखि तू मोसोंसमझाय ॥
आज कहा सोचतिहै खरी । परम वियोगसिंधुमें परी ॥
रोरो अधिक उसाँसें लेत । तनमन व्याकुलहैकिहिहेत ॥
तेरे मनको दुख परिहरौं । मनचीतो कारज सब करौं ॥
मोसीसखी और ना घनी । है परतीति मोहिं आपनी ॥
सकललोकमेंहौंफिरिआऊं । जहँजाऊँ कारजकरल्याऊं ॥
मोको वर ब्रह्माने दीन्हो। वश मेरे सबहीको कीन्हों ॥
मेरे संग शारदा रहै । वाके बल करिहौं जो कहै ॥
ऐसी महा मोहनी जानौं । ब्रह्मा रुद्र इंद्र छलि आनौं ॥
मेरो कोऊ भेद न जानै । अपने गुणको आप बखानै ॥
ऐसे और न काहेहै कोऊ । भलो बुरो कोऊ किन होऊ ॥

अब तू कह सब अपनीबात । कैसे कटी आजकी रात ॥
मोसोंकपटकरो जनिप्यारी । पुजवोंगीसब आशतिहारी ॥

महाराज ! इतनी बातके सुनतेही ऊषा अति सकुचाय शिर नाय चित्ररेखाके निकट आय मधुरवचनसे बोली कि, सखी मैं तुझे अपनी हितूजान रातकी बात सब कह सुनातीहूं, तू निजमनमें रख और कुछ उपाय करसके तो कर. आज रातको स्वप्नमें एक पुरुष मेघवर्ण, चंद्रवदन, कमलनयन,पीतांबर पहरे, पीतपटओढ़े मेरे पास आय बैठा और उसने अति हितकर मेरामन हाथमें लेलिया. मैंभी सोच संकोच तज उससे बातें करने लगी. निदान बतराते बतराते जो मुझे प्यार आया तो मैंने उसे पकड़नेको हाथ बढ़ाया. इसबीच मेरी नींद गई और उसकी मोहनी मूर्त्ति मेरे ध्यानमें रही.

देख्यो सुन्यो और नहिं ऐसो । मैं कहु कहा बताऊं जैसो ॥
वाकी छबि वरणी नहि जाय । मेरो चित लैगयो चुराय ॥

जब मैं कैलासमें श्रीमहादेवजीके पास विद्या पढ़तीथी, तब श्रीपार्वतीजीने मुझसे कहाथा कि, तेरा पति तुझे स्वप्नमें आय मिलेगा. तू उसे ढुंढ़वाय लीजो.सो वर आज रात मुझे स्वप्नमें आय मिला,मैं उसे कहाँ पाऊं और अपने विरहकी पीर किसे सुनाऊ कहाँ जाऊँ उसे किस भाँति ढूंढ़वाऊँ ? न उसका नाम जानूँ न गाम. महाराज ! इतना कह जद ऊषा लंबी श्वास ले मुरझाय रहगई, तद चित्ररेखा बोली कि, सखी ! अब तू किसी बातकी चित्तमें चिंता मतकर मैं तेरे कंतको तुझे जहाँ होगा तहाँसे ढूँढ़ ला मिलाऊँगी, मुझे तीनों लोकमें जानेकी सामर्थ्य है. जहाँ होगा तहाँ जाय जैसे बनेगा तैसेही ले आऊँगी, तू मुझे उसका नाम बता; और जानेकी आज्ञा दे ऊषा बोली वीर ! तेरे वही कहावत है कि, मरी और साँस न आई; जो मैं उसका नांव गांवही जानती होती तो दुःख काहेका था कुछ न कुछ उपाय करती. यह बात सुन चित्ररेखा बोली सखी ! तू इस बातका भी सोच न कर मैं तुझे त्रिलोकीके पुरुष लिख २ दिखाती हूं तुम उनमेंसे अपने चित्तचोरको देख बतादीजो फिर ला

मिलाना मेरा काम है. तब तो हँसकर ऊषा बोली बहुत अच्छा, महाराज! यह वचन ऊषाके मुखसे निकलतेही चित्ररेखा लिखनेका सब समान मँगवाय आसन मार बैठी और गणेश शारदाको मनाय गुरुका ध्यान कर लिखने लगी पहले तो उसने तीन लोक चौदह भुवन सात द्वीप नौ खंड पृथ्वी आकाश सातों समुद्र आठों लोक वैकुंठ सहित लिख दिखाये. पीछे सब देव, दानव, गन्धर्व, किन्नर, यक्ष, ऋषि, मुनि, लोकपाल और सब देशोंके भूपाल लिख लिख एक एक कर चित्ररेखाने दिखाया. पर ऊषाने अपना चाहिता उनमें न पाया, फिर चित्ररेखाने यदुवंशियोंकी मूर्ति एक एक लिख दिखाने लगी इसमें अनिरुद्धका चित्र देखतेही ऊषा बोली.

अब मनचोर सखीमैं पायो। रात यही मेरे ढिगआयो॥
कर अब सखितू कछुउपाय। याको ढूँढ़ कहूँते ल्याय॥
सुनिके चितरेखा यों कहै। अब यह मोते किमि बचरहै॥

यों सुनाय चित्ररेखा पुनि बोली कि, सखी! इसे तू नहीं जानती मैं पहिचानतीहूं यह यदुवंशी श्रीकृष्णजीका पोता प्रद्युम्नजीका बेटा और अनिरुद्ध इसका नाम है, समुद्रके तीर नीरमें द्वारका नाम एक पुरी है. तहाँ यह रहताहै; हरि आज्ञासे उस पुरीकी चौकी आठ पहर सुदर्शनचक्र देता है. इसलिये कि, कोई दुष्ट दैत्य दानव आय यदुवंशियोंको न सतावे. और कोई पुरीमें आवे सो बिन राजा उग्रसेन शूरसेनकी आज्ञा न आने पावे. महाराज! इसबातके सुनतेही ऊषा अति उदास हो बोली कि, सखी! जो वह ऐसी विकट ठौर है तो तू किसभाँति तहाँ जाय मेरे कंतको लावेगी? चित्ररेखाने कहा आली तू इस बातसे निश्चित रह. मैं हरिप्रतापसे तेरे प्राणपतिको ला मिलातीहूं. इतना कह चित्ररेखा रामनामी कपड़े पहन गोपीचंदनका ऊर्द्धपुंड्र तिलक काढ़ छापे उर मूल भुज और कंठमें लगाय बहुतसी तुलसीकी माला गलेमें डाल हाथमें बड़े बड़े तुलसीके हीरोंकी सुमिरनी ले ऊपरसे हिरावल ओढ़ काँखमें आसन लपेट भगवद्गीताकी पोथी दबाय परमभक्त वैष्णवका वेष बनाय ऊषाको यों सुनाय बिदाहो द्वारकाको चली.

दो०-पैंड़े अब आकाशके, अंतरिक्षहो जाउँ।
ल्याऊं तेरे कंतको, चित्ररेख तो नाउँ॥

इतनी कथा सुनाय श्रीशुकदेवजी बोले कि, महाराज ! चित्ररेखा अपनी मायाकर पवनके तुरंगपर चढ़ अँधेरीरातमें श्यामघटाके साथ बातकी बातमें द्वारकापुरीमें जा बिजुलीसी चमकी और श्रीकृष्णचंद्रजीके मंदिरमें बढ़गई, ऐसे कि, इसका आना किसीने न जाना, आगे यह ढूँढ़ती ढूँढ़ती वहाँ गई जहाँ पलँगपर सोये अनिरुद्धजी अकेले स्वप्नमें ऊषाके साथ विहार कर रहेथे, इसने देखतेही उस सोतेको पलँगसमेत उठाय झट अपनी बाट ली.

सोवतही परयंक समेत। लिये जात ऊषाके हेत॥
अनिरुधको लै आई वहाँ। ऊषाचिंतति बैठी जहाँ॥

महाराज! पलँग समेत अनिरुद्धको देखतेही ऊषा पहले तो हकबकाय चित्ररेखाके पाँवोंपर जाय गिरी. पीछे यों कहने लगी धन्य है! सखी तेरे साहस और पराक्रमको, जो कठिन ठौर जाय बातकी बातमें पलँगसमेत उठालाई और अपनी प्रतिज्ञा पूरी की मेरे लिये तैंने इतना कष्ट किया इसका पलटा मैं तुझे नहीं देसक्ती तेरे गुणकी ऋणियाँ रही. चित्ररेखा बोली सखी! संसारमें बड़ा सुख यहीहै जो परको सुख दीजै; और कारज भी भला यही है कि, पर उपकार कीजे यह शरीर किसी कामका नहीं इससे किसीका काम होसके तो यही बड़ा काम है इसमें स्वार्थ परमार्थ दोनों होते हैं. महाराज ! इतना वचन सुनाय चित्ररेखा पुनि यों कह विदाहो अपने घर गई कि, सखी ! भगवान्के प्रतापसे तेरा कंत मैंने तुझे ला मिलाया. अब तू इसे जगाय अपना मनोरथ पूराकर. चित्ररेखाके जातेही ऊषा अति प्रसन्नहो लाज किये प्रथम मिलनेका भय लिये मनहींमन यों कहने लगी.

कहाबातकहिपियहिजगाऊँ । कैसेभुजभरिकंठलगाऊँ ॥

निदान वीणा मिलाय मधुर २ स्वरोंसे बजाने लगी, वीणाकी ध्वनि सुनतेही अनिरुद्धजी जागपड़े और चारों ओर देखदेख मनहींमन यों

कहने लगे, कि यह कौन ठौर किसका मंदिर में यहाँ कैसे आया और कौन मुझ सोतेको पलँग समेत उठा लाया? महाराज! उसकाल अनिरुद्धजी तो अनेक अनेक प्रकारकी बातें कह कह अचरज करतेथे; और ऊषा सोच संकोच लिये प्रथम मिलनेका भय किये एक कोनेमें खड़ी पियको चंद्रमुख देख निरख अपने लोचन चकोरोंको सुख देतीथी. इसबीच-

अनिरुधदेखिकहैअकुलाय। कह मुंदरितूअपनेभाय॥
हैतू को मोपै क्यों आई। कै तू मोहिं आप ले आई॥
साँच झूंठ एकौ नहिं जानो। सपनोसो देखत हौं मानो॥

महाराज! अनिरुद्धजीने इतनी बात कही और ऊषाने कुछ उत्तर न दिया; वरन् और भी लाजकर कोनेमें सट रही. तव तो उन्होंने झट उसे हाथ पकड़ पलँगपर ला बिठाया और प्रीति सनी प्यारकी बातें कह उसके मनका सोच संकोच और सब भय मिटाया. आगे वे दोनों परस्पर सेजपर बैठ हाव भाव कटाक्ष कर सुख लेने देने लगे और प्रेमकथा कहने. इस बीच बातोंहीं बातों अनिरुद्धजीने ऊषासे पूंछा कि, हे सुंदरी! तूने प्रथम मुझे कैसे देखा और पीछे किस भाँति यहाँ मँगाया? इसका भेद समझाकर कह जो मेरे मनका भ्रम जाय. इतनी बातके सुनतेही ऊषा पतिका मुख निरख हर्ष के बोली.

मोहिं मिले तुम सपनेआय। मेरोचित लेगयो चुराय॥
जागी मन भारी दुख लह्यो। तव मैं चित्ररेखासों कह्यो॥
सोई प्रभु तुमको ह्यां लाई। ताकी गति जानी नाहिं जाई

इतना कह पुनि ऊषाने कहा महाराज! मैंने तो जिसभाँति तुम्हें देखा और पाया तैसे सब कह सुनाया. अब आप कहिये अपनी बात समझाय, जैसे तुमने मुझे देखा यादवराय; यह वचन सुन अनिरुद्ध अति आनंदकर मुसकरायके बोले कि, सुंदरी! मैं भी आज रातको स्वप्नमें तुझे देख रहाथा कि, नींदहीमें कोई मुझे उठाय यहाँ ले आया! इसका भेद अबतक मैंने नहीं पाया कि, मुझे कौन

लाया, जागा तो मैंने तुझेही देखा. इतनी कथा कह शुकदेवजी बोले कि महाराज ! ऐसे वे दोनों पिय प्यारी आपसमें बतराय पुनि प्रीति बढ़ाय अनेक अनेक प्रकारसे कामकलोल करने लगे और विरहकी पीर हरने. आगे पानकी मिठाई, मोती मालकी शीतलताई और दीपज्योतिकी मंदताई निरख ज्यों ज्यों ऊषा बाहर जाय देखे तो उषःकाल हुआ, चंद्रकी ज्योतिघटी, तारे द्युति हीन भये आकाशमें अरुणाई छाई, चारों ओर चिड़ियाँ चुहचुहाई, सरोवरमें कुमुदिनी कुम्हिलाई और कमल फूले, चकवा चकईका संयोग हुआ. महाराज ! ऐसा समय देख एकबार तो सब द्वार मूंद ऊषा बहुत घबराय, घरमें आय, अतिप्यारकर पियको कंठ लगाय लेटी. पीछे पियको दुराय; सखी सहेलियोंसे छिपाय, छिप छिप कंतकी सेवा करने लगी. निदान अनिरुद्धका आना, सखीसहेलियोंने जाना. फिर तो वह दिनरात पतिके संग सुख भोग कियाकरै एकदिन ऊषाकी माता बेटीकी सुधलेने आई तो उसने छिपकर देखा कि, वह एक महासुंदरतरुणपुरुषके साथ कोठेमें बैठी आनंदसे चौपड़ खेल रहीहै. यह देखतेही बिन बोलेचाले दबेपावों फिर मनहींमन प्रसन्नहो आशीश देती सुदमारे वह अपने घर चली गई. आगे कितने एक दिन पीछे एक दिन ऊषा पतिको सोते देख जीमें यह बिचारकर सकुचती २ घरसे बाहर निकली कि, कहीं ऐसा न हो जो कोई मुझे न देख अपने मनमें जाने कि, ऊषा पतिके लिये घरसे नहीं निकलती महाराज ! ऊषा कंतको अकेला छोड़ जाते तो गई, पर उससे रहा न गहा, फिर घरमें आय किवाँड़ लगाय विहारकरने लगी. यह चारित्र देख पौरियोंने आपसमें कहा कि, भाई ! आज क्याहै जो राजकन्या अनेकदिन पीछे घरसे निकल और फिर उलटे पाँवों चली गई. इतनी बातके सुनतेही उसमेंसे एक बोला कि, भाई ! मैं कई एक दिनसे देखताहूं ऊषाके मंदिरका द्वार दिनरात लगारहताहै और घरके भीतर कोई पुरुष हँस हँस बातें करताहै और कभी चौपड़ खेलताहै. दूसरेने कहा जो यह बात सच है, तो चलो बाणासुरसे जाय कहैं. समझ बूझ यहाँ क्यों बैठे रहैं.

एक कहै यह कही न जाय । तुम सब बैठ रहो अरगाय ॥
भली बुरी होवो सो होय । होनहार मेटै नहिं कोय ॥
कछु न बात कुँवरिकी कहिये । चुपहै देख बैठही रहिये ॥

महाराज ! द्वारपाल आपसमें ये बातें करतेहीथे कि, कई एक योद्धा साथलिये फिरता फिरता बाणासुर वहाँसे आनिकला और मंदिरके ऊपर दृष्टिकर शिवजीकी दीहुई ध्वजा न देख बोला कि, यहांसे ध्वजा क्या हुई ? द्वारपालोंने उत्तर दिया कि, महाराज ! वह तो बहुत दिन हुए टूटकर गिरपड़ी. इस बातके सुनतेही शिवजीका बचन स्मरण कर भावितहो बाणासुर बोला-

कबकी ध्वजा पताका गिरी । बैरी कहूँ औतरयो हरी ॥

इतना बचन बाणासुरके मुखसे निकलतेही एक द्वारपाल सन्मुख जा खड़ा हो हाथ जोड़ शिरनाय बोला कि, महाराज ! एक बातहै पर मैं कह नहीं सकता. जो आपकी आज्ञा पाऊं तो ज्योंकी त्यों कह सुनाऊं. बाणासुरने आज्ञा की अच्छा कह, तब पौरिया बोला कि, महाराज ! अपराध क्षमा हो. कई दिनसे हम देखते हैं कि, राजकन्याके मंदिरमें कोई पुरुष आयाहै वह दिन रात बातें किया करताहै. इसका भेद हम नहीं जानते कि, वह कौन पुरुषहै और वह कहाँसे आया है और क्या करता है. इतनी बातके सुनतेही बाणासुर अति क्रोधकर शस्त्र उठाय दबे पाँवों अकेला ऊषाके मंदिरमें जाय छिपकर क्या देखताहै कि, एक पुरुष श्यामवर्ण अति सुंदर पीतपट ओढे निद्रामें अचेत ऊषाके साथ सोया पड़ाहै.

सोचत बाणासुर यों हिये । होय पाप सोवत वध किये ॥

महाराज ! यों मनहीं मन बिचार बाणासुरने कईएक रखवाले वहाँ रख उससे कहा कि, तुम इसके जागतेही हमें आय कहियो फिर अपने घर जाय सभाकर सब राक्षसोंको बुलाय कहने लगा कि, मेरा बैरी आन पहुँचाहै. तुम सब दल ले ऊषाका मंदिर जाय घेरो, पीछेसे मैंभी आताहूं. आगे इधर तो बाणासुरकी आज्ञा पाय सब राक्षसोंने आय ऊषाका घर घेरा और उधर अनिरुद्धजी और राजकन्या निद्रासे चौंक

सारिपासा खेलने लगे. इसमें चौपड़ खेलते खेलते ऊषा क्या देखतीहै कि, चहूं ओरसे घन घोर घटा घिर आई, बिजुली चमकने लगी. दादुर मोर पपीहे बोलने लगे. महाराज ! पपीहाकी बोली सुनतेही राजकन्या इतना कह पियके कंठलगी.

तुम पपिहा पियपिय मतकरो । यह वियोगभाषा परिहरो ॥

इतनेमें किसीने जाय बाणासुरसे कहा कि, महाराज ! तुम्हारा बैरी जागा. बैरीका नाम सुनतेही बाणासुर अति कोप करके उठा. और अस्त्र शस्त्र ले ऊषाकी पवँरिमें आय खड़ा हुआ और लगा छिपकर देखने निदान देखते देखते—

बाणासुर यों कहै हँकार । कोहै रे तू गेह मँझार ॥
घनतनवरणमदनमनहारी । कमलनयन पीतांवरधारी ॥
अरे चोर बाहर किन आवै । जान कहाँ अब मोसों पावै ॥

महाराज ! जब बाणासुरने टेरके यों कहे बैन, तब ऊषा और अनिरुद्ध सुन और देख भये निपट अचैन; पुनि राजकन्याने अति चिंताकर भयमान हो लंबी श्वासें लेले कंतसे कहा कि, महाराज ! मेरा पिता असुर दल ले चढ़ि आया. अब तुम इसके हाथसे कैसे बचोगे ?

दो०–तबहिं कोपि अनिरुध कह्यो, मत डरपै तू नारि ।
स्यार झुंड राक्षस असुर, पलमें डारौं मारि ॥

ऐसा कह अनिरुद्धजीने वेदमंत्र पढ़ एकसौआठ हाथकी शिला बुलाय हाथमें ले बाहर निकल दलमें जाय बाणासुरको ललकारा. इनके निकलतेही बाणासुर धनुष चढ़ाय सब कटक ले अनिरुद्धजी पर यों टूटा कि, जैसे मधुमाखियोंका झुंड किसीपै टूटै. जद असुर अनेक अनेक प्रकारके अस्त्र शस्त्र चलानेलगे तद क्रोधकर अनिरुद्धजीने शिलाके हाथ कईएक ऐसे मारे कि, सब असुर दलका ईसा फट गया कुछ मरे कुछ घायल हुए बचे सो भागगये, पुनि बाणासुर जाय सबको फेर लाया और युद्ध करने लगा. महाराज ! जितने अस्त्र शस्त्र असुर

चलतेथे तितने इधर उधरही जातेथे और अनिरुद्धजीके अंगमें एक भी शस्त्र न लगताथा.

जे अनिरुध पर परें हथ्यार । अधकर कटें शिलाकीधार ॥
शिलाप्रहार सहो नहिं परे । वज्र चोट ज्यों सुरपति करे ॥
लागत शीश बीचते फटें । टूटहिं जाँघ भुजा धर कटें ॥

निदान लड़ते लड़ते जब बाणासुर अकेला रहगया और सब कटक कटगया तब उसने मनहींमन अचरजकर इस अजीतको मैं कैसे जीतूंगा. इतना कह नागफाँससे अनिरुद्धजीको पकड़ बाँधा, इतनी कथा सुनाय श्रीशुकदेवजीने राजापरीक्षितसे कहा कि, महाराज ! जिस समय अनिरुद्धजीको बाणासुर नागफाँससे बाँध अपनी सभामें लेगया इसकाल अनिरुद्धजी तो मनहींमन यों विचारतेथे कि, मुझे कष्ट होय तो होय पर ब्रह्माका वचन झूठा करना उचित नहीं क्योंकि जो मैं नागफाँससे बलकर निकलूंगा तो उसकी अमर्यादा होगी इससे बँधरहनाही भला है और बाणासुर यह कह रहाथा कि, अरे लड़के! मैं तुझे अब मारताहूं जो कोई तेरा सहायक हो तो तू बुला, इसबीच ऊषाने पियकी यह दशा सुन चित्ररेखासे कहा कि सखी धिक्कार है मेरे जीवनको जो पति मेरा दुःखमें रहे और मैं सुखसे खाऊं पीऊं और सोऊँ. चित्ररेखा बोली सखी ! कुछ चिंता मतिकरे तेरे पतिको कोई कुछ न कर सकेगा निश्चिन्तरह अभी श्रीकृष्णचन्द्र और बलरामजी सब यदुवंशियोंको साथले चढ़ि आवेंगे और असुर दलको संहार तुझ समेत अनिरुद्धजीको छुड़ाय लेजावेंगे. उनकी यही रीति है कि, जिस राजाकी सुंदरी कन्या सुनतेहैं तहाँसे बलछलकर जैसे बने तैसे लेजाते हैं. उन्हींका यह पोता है जो कुंडिनपुरसे राजा भीष्मककी बेटी रुक्मिणीजीको महाबली बड़े प्रतापी राजा शिशुपाल और जरासंधसे संग्रामकर लेगयेथे तैसेही अब तुझे लेजायँगे तू किसी बातकी भावना मत करे; ऊषा बोली सखी ! यह दुःख मुझसे सहा नहीं जाता.

नागफाँस बाँधेपिय हरी । दहै गात ज्वाला विषभरी ॥

हौं कैसे पौढौं सुख चैना । पिय दुख क्योंकर देखौं नैना ॥
प्रीतम विपति परे क्यों जीवों। भोजनकरों न पानी पीवों ॥
वरु वध अब बाणासुरकीजो। मोको शरण कंतकी दीजो ॥
होनहार होनी है होय। तासों कहा कहैगो कोय ॥
लोकवेदकी लाज न मानौं। पियसँग दुःखसुःखहीजानौं ॥

महाराज ! चित्ररेखासे ऐसे कह जब ऊषा कंतके निकट जाय निडर निःशंक हो बैठी तब किसीने बाणासुरको जा सुनाया कि, महाराज ! राजकन्या घरसे निकल उस पुरुषके पास गई. इतनी बातके सुनतेही बाणासुरने अपने पुत्र स्कंदको बुलायके कहा कि बेटा ! तू अपनी बह-नको सभासे उठाय घर लेजाय पकड़ रख और निकले न दे. पिताकी आज्ञा पातेही स्कंद बहनके पास जाय अतिक्रोधकर बोला कि. तैंनें यह क्या किया, पापिनी ! जो छोड़ी लोकलाज और कान आपनी. हे नीच ! मैं तुझे क्या वध करूँ होगा पाप और अपयशसेभीहूं डरूं, ऊषा बोली कि भाई ! जो तुम्हें भावै सो कहो और करो,मुझे पार्वतीजीने जो वर दियाथा सो बर मैंने पाया. अब इसे छोड़ औरको धाऊं, तो अपनेको गाली चढाऊं; तजती है पतिको अकुलिनी नारी यहीरीति परंपरासे चली आतीहै. बीच संसार जिससे विधनाने सम्बन्ध किया उसीके संग जगत्में अपयश लिया तो लिया. महाराज! इतनी बातके सुनतेही स्कंद क्रोधकर हाथपकड़ ऊषाको वहाँसे मंदिरमें उठालाया और फिर न जाने दिया. पुनि अनिरुद्धजीकोभी वहाँसे उठाय कहीं अनत लेजाय बंद किया. उसकाल इधर तो अनिरुद्धजी तियके वियोगमें महाशोक करतेथे और इधर राजकन्या कंतके विरहमें अन्न पानी तज कठिन योग करने लगी. इसबीच कितने एकदिन पीछे एक दिन नारदमुनिने पहले तो अनिरुद्धजीको जाय समझाया, कि तुम किसी बातकी चिंता मतकरो अभी श्रीकृष्णचंद्र आनंदकंद और बलरामसुखधाम राक्षसोंके संग संग्राम कर तुम्हें छुडाय ले जायँगे. पुनि बाणासुरको जाय सुनाया कि, राजा ! जिसे तुमने नागफाँससे पकड़ बाँधाहै वह श्रीकृष्णका पोता और प्रद्यु-

म्नका बेटाहै और अनिरुद्ध उसका नाम है. तुम यदुवंशियोंको भली भाँतिसे जानते हो. जो चाहो सो करो मैं इस बातसे तुम्हें सावधान करने आयाथा सो कहचला. यह बात सुन इतना कह बाणासुरने नारदजीको बिदा किया कि, नारदजी मैं सब जानताहूं.

इति श्रीलल्लूलालकृते प्रेमसागरे ऊषास्वप्न अनिरुद्धग्रहणो नाम त्रिषष्टितमोऽध्यायः ॥ ६३ ॥

अध्याय ६४.

श्रीशुकदेवजी बोले कि, महाराज! जब अनिरुद्धको बँधे बँधे चार महीने होगये तब नारदजी द्वारकापुरीमें गये. तो वहाँ या देखतेहैं कि, सब यादव महा उदास मनमलीन तनक्षीण होरहेहैं और श्रीकृष्णजी व बलरामजी उनके बीचमें बैठे अतिचिंताकर कह रहेहैं कि, बालकको उठाय यहाँसे कौन लेगया. इस भाँतिकी बातें होरहीथीं और रनिवासमें रोना पीटना होरहाथा ऐसा कि, कोई किसीकी बात न सुनताथा. नारदजीके जातेही सब लोग क्या स्त्री क्या पुरुष उठधाये और अतिव्याकुल तनक्षीन मनमलीन रोते बिल बिलाते सन्मुख खड़े हुए. आगे अति बिनतीकर हाथ जोड़ शिरनाय हाहाखाय नारदजीसे सब पूछने लगे.

साँची बात कहौ ऋषिराय। जामों जिय राखै बहिराय॥
कैसे सुधि अनिरुधकी लहैं। कहौ साधु ताकेबलरहैं॥

इतनी बातके सुनतेही नारदजी बोले कि, तुम किसी बातकी चिंता मतकरो और अपने मनका शोक हरो. अनिरुद्धजी जीते जागते शोणि-

तपुरमें हैं. वहाँ उन्होंने जाय राजा बाणासुरकी कन्यासे भोग किया, इसलिये उसने उन्हे नागपाशसे पकड़ बाँधाहै बिन युद्ध किये वह किसी भाँति अनिरुद्धजीको न छोड़ेगा यह भेद मैंने तुम्हें कह सुनाया, योंकह नारदमुनिजी तो चले गये, पीछे सब यदुवंशियोंने आय राजाउग्रसेनसे कहा कि, महाराज! हमने ठीक समाचार पाया कि अनिरुद्धजी शोणितपुरमें बाणासुरके यहाँ हैं उन्होंने उसकी कन्या रमी इससे उसने इन्हें नागपाशसे बाँध रक्खाहै अब हमें क्या आज्ञा होतीहै इतनीबात के सुनतेही राजा उग्रसेनने कहा कि, तुम हमारी सब सेना ले जावो और जैसे बने तैसे अनिरुद्धको छुड़ालावो. ऐसा वचन उग्रसेनके मुखसे निकलतेही महाराज! सब यादव तो राजा उग्रसेनका कटक ले बलरामजीके साथ हुए. और श्रीकृष्णचंद्र व प्रद्युम्नजी गरुड़के काँधेपर चढ़ सबसे आगे शोणितपुरको गये.

इतनी कथा कह श्रीशुकदेवजी बोले कि, महाराज! जिसकाल बलरामजी राजाउग्रसेनका सब दल ले द्वारकापुरीसे धौंसा दे शोणितपुरको चले उससमयकी कुछ शोभा वर्णी नहीं जाती कि. सबके आगे तो बड़े बड़े दंतीले मतवाले हाथियोंकी पाँति तिनपर धौंसा बाजता जाताथा और ध्वजा पताका फहराती थीं तिनके पीछे एक ओर गजोंकी अवली अंबारियों समेत जिनपर बड़े बड़े रावत योद्धा शूरवीर यादव झिलम टोप पहने सब अस्त्र शस्त्र लगाये बैठे जातेथे, उनके पीछे रथोंके तांतोंके तांते दृष्टि आतेथे उनकी पीठपर घुड़चढ़ोंके यूथके यूथ वर्ण वर्णके घोड़े गोटे पट्ठेवाले गजगाह पाखर डाल जमाते ठहराते नचाते कुदाते फँदाते चले जातेथे और उनके बीचबीच चारण यश गातेथे और कड़खैत कड़खा. तिस पीछे फरी, खाँड़े, छुरी, कटारी, जमधर, बरछी, बरछे भाले, बल्लम, बाने, पटे, धनुषबाण, गदा, चक्र, फरशे, गँड़ासी, लुहगी. गुपी, बाँक, बिछुए समेत अनेक अनेक प्रकारके अस्त्र शस्त्र लिये पैदलोंका दल टीड़ी दलसा चला जाताथा उनके मध्य मध्य—धौंसे ढोल, डफ, बाँसुरी, भेर, रणसिंहोंका जो शब्द होताथा सो अतिही सुहावना लगताथा.

उठीरेणुआकाशलोंछाई । छिप्योभानु तमफैल्यो भाई ॥
चकई चकवा भयो वियोग। सुन्दरि करे कंतसों भोग ॥
फूलेकमलकुमुदकुम्हिलाने।निशिचरफिरहिंनिशाजियजाने॥

इतनी कथा कह श्रीशुकदेवजी बोले कि, महाराज ! जिस समय बलरामजी बारह अक्षौहिणी सेना ले अति धूमधामसे उसके गढ़ गढी कोट तोड़ते और देश उजाड़ते ज्यों शोणितपुरमें पहुँचे और श्रीकृष्णचंद्र व प्रद्युम्नजी भी आन मिले तिसी समय किसीने अति भयखाय, घबराय जाय; हाथ जोड़, शिरनाय, बाणासुरसे कहा–महाराज ! कृष्ण बलराम अपनी सब सेना ले चढ़ आये और उन्होंने हमारे देशके गढ़ गढी कोट ढहाय गिराये और नगरको चारों ओरसे आय घेरा. अब क्या आज्ञा होती है इतनी बातके सुनतेही बाणासुर महाक्रोधकर अपने बड़े बड़े राक्षसोंको बुलाय बोला तुम सब दल अपना लेजाय नगरके बाहर जाय कृष्ण बलरामके सन्मुख खड़ेहो पीछेसे मैंभी आताहूं. महाराज ! आज्ञा पातेही वे असुर बातकी बातमें बारह अक्षौहिणी सेना ले श्रीकृष्ण बलरामजीके सोहीं लड़नेको अस्त्र शस्त्र लिये आ खड़े रहे, उनके पीछेही श्रीमहादेवजीका भजन सुमिरण ध्यानकर बाणासुर भी आ उपस्थित हुआ. शुकदेवमुनिजी बोले कि, महाराज ! ध्यान करतेही शिवजीका आसन डोला और ध्यान धर जाना कि, मेरे भक्तपर भीड़ पड़ी है. इस समय चलकर उसकी चिंता मेटा चाहिये. यह मनहींमन विचार पार्वतीजीको अर्द्धांगधर जटाजूट बाँध भस्म चढ़ाय बहुतसी भाँग आक धतूरा खाय श्वेत नागोंका जनेऊ पहन गजचर्म ओढ़ मुंडमाल सर्प पहन त्रिशूल, डमरू, पिनाक खप्पर ले नंदीपर बैठ भूत, प्रेत, पिशाचिनी, डाकिनी, शाकिनी आदि सेना ले भोलानाथ चले. इस समयकी कुछ शोभा वर्णी नहीं जाती कि, कानमें गजमणियोंकी मुद्रा, ललाटमें चन्द्रमा; शिरपर गंगाधरे, लाल लाल लोचन करे; अति भयंकर देष महाकालकी मूर्त्ति बनाये इस रीतिसे बजाते गाते सेनाको नचाते जातेथे कि, वह रूप देखतेही बनि आवे कहनेमें न आवे. निदान कितनीएकबेरमें

शिवजी अपनी सेना लिये वहाँ पहुँचे कि, जहाँ सब असुरदल लिये बाणासुर खड़ा था हरको देखतेही बाणासुर हर्षके बोला कि, कृपासिंधु! आप बिन कौन इससमय मेरी सुध ले.

तेज तुम्हारो इनको दहै। यादवकुल अब कैसे रहै॥

यों सुनाय फिर कहने लगा कि, महाराज! इस समय धर्मयुद्ध करो और एक एकके सन्मुख हो एक एक लड़ो. महाराज! इतनी बात जो बाणासुरके मुखसे निकली तो इधर असुरदल लड़नेको तुलकर खड़ाहुआ और उधर यदुवंशी आ उपस्थित हुए. दोनों ओर जुझाऊ बाजा बाजने लगे, शूरबीर रावत योद्धा अस्त्र शस्त्र साजने और अधीर नपुंसक कायर खेत छोड़ छोड़ जी लेल भागने लगे उसकाल महाकालस्वरूप शिवजी श्रीकृष्णचंद्रजीके सन्मुख बाणासुर बलरामजीके सोहीं हुआ, स्कंद प्रद्युम्नजीसे आय भिड़ा और इसी भाँति एक एकसे जुट गये. व दोनों ओरसे शस्त्र चलने लगे; उधर धनुष पिनाक महादेवजीके हाथ, इधर शार्ङ्ग धनुष लिये यदुनाथ. शिवजीने ब्रह्मबाण चलाया, श्रीकृष्णचंद्रजीने ब्रह्मशस्त्रसे काट गिराया. फिर रुद्रने चलाई महाबयार, सो हरिने तेजसे दीन्हीं टार. पुनि महादेवजीने अग्नि उपजाई, वह मुरारीने मेह वर्षाय बुझाई और एक महाज्वाला उपजाई, सो सदाशिवके दलमें धाई; उसने दाढी मूंछ और जलायके केश, कीने सब असुर भयानक वेष. जब असुरदल जलने लगा और बड़ा हाहाकार हुआ, तब भोलानाथने जले अधजले राक्षसों और भूत प्रेतोंको तो जल वर्षाय ठंढा किया और आप अति क्रोधकर नारायणबाण चलानेको लिया. पुनि मनहींमन कुछ सोच समझ न चलाया रखदिया. फिर तो श्रीकृष्णजी आलस्य बाण चलाय सबको अचेतकर लगे असुरदल काटने ऐसे कि, जैसे किसान खेती काटे. यह चरित्र देख जो महादेवजीने अपने मनमें सोचकर कहा कि, अब प्रलययुद्ध बिन किये नहीं बनता, त्योंहीं स्कंद मोरपर चढ़ आया और अंतरिक्ष हो उसने श्रीकृष्णजीकी सेनापर बाण चलाया.

तब हरिसों प्रद्युम्नउचरै। मोर चढ़्यो ऊपरते लरै॥
आज्ञा देहु युद्ध अतिकरै। मारौं अबहिं भूमि गिरिपरै॥

इतनी बातके कहतेही प्रभुने आज्ञा दी कि, प्रद्युम्नजीने एक बाण मारा सो जा मोरको लगा. तब स्कंद नीचे गिरा, स्कंदके गिरतेही बाणासुर अति कोपकर पाँचसौ धनुष चढाय एक एक धनुषपर दोदो बाणधर लगा मेहसा बरसाने और श्रीकृष्णचंद्र भी बीचही लगे काटने. उसकाल महाराज! इधर उधरके मारू ढोल डफसे बाजतेथे, कडखैत धमारसी गातेथे. घावोंसे लोहूकी धार पिचकारियोंसी चलरहींथीं, जिधर तिधर लाललाल लोहू गुलालसा दृष्टि आताथा, बीच बीच भूत प्रेत पिशाच जो भाँति भाँतिके वेष भयावने बनाये फिरतेथे सो भगतसी खेल रहेथे और रक्तकी नदी रंगकीसी वह निकलीथी, लड़ाई क्या दोनों ओर होलीसी हो रहीथी. इसमें लड़ते लड़ते कितनी एक बेर पीछे श्रीकृष्णचंद्रजीने एक बाण ऐसा मारा कि उसके रथका सारथी उड़गया और घोडे भड़के. निदान रथवानके मरतेही बाणासुर भी रण छोड़ भागा. श्रीकृष्णजीने उसका पीछा किया. इतनी कथा सुनाय श्रीशुकदेवजी बोले महाराज! बाणासुरके भागनेका समाचार पाय उसकी माँ जिसका नाम कोटरा सो उसी समय भयानक वेष छुटे केश नंगी मुनंगी आ श्रीकृष्णजीके सन्मुख खड़ी हुई और लगी पुकार करने.

देखतेही प्रभु मूंदे नैन। पीठि दई ताके सुनि बैन॥
तौलौं बाणासुर भजगयो। फिर अपनो दल जोरतभयो॥

महाराज! जबतक बाणासुर एक अक्षौहिणी दल साज वहाँ आया, तबतक कोटरा श्रीकृष्णजीके आगेसे न हटी पुत्रकी सेना देख अपने घर गई. आगे बाणासुरने आय बड़ा युद्ध किया पर प्रभुके सन्मुख न ठहरा, फिर भाग महादेवजीके पासगया. बाणासुरको भयातुर देख शिवजीने अतिक्रोधकर महाविषमज्वरको बुलाय श्रीकृष्णजीकी सेनापर चलाया. वह महाबली बड़ा तेजस्वी जिसका तेज सूर्यके समान तीन मुंड नौ पग छःकर वाला, त्रिलोचन भयानक वेष श्रीकृष्णचंद्रके दलको आ घाला. उस तेजसे यदुवंशी लगे जलने और थरथर काँपने; निदान अति दुःख पाय घबराय यदुवंशियोंने आय श्रीकृष्णजीसे कहा कि महाराज! शिव-

जीके ज्वरने जाय सारे कटकको जलाय मारा, अब इसके हाथसे बचाइये नहीं तो एक भी यदुवंशी जीता न बचेगा. महाराज! इतनी बात सुन और सबको कातर देख हरिने शीतज्वर चलाया. वह महादेवके ज्वरपर धाया.इसे देखतेही वह डरकर पलाया और चला सदाशिवजीकेपासआया

तबज्वर महादेवसों कहै। राखहु शरण कृष्णज्वर दहै॥

यह वचन सुन महादेवजी बोले कि, श्रीकृष्णचंद्रजीके ज्वरको बिन श्रीकृष्णचंद्र ऐसा त्रिभुवनमें कोई नहीं जो हरे, इससे उत्तम यहीहै कि, तू भक्तहितकारी श्रीमुरारीके पासजा. शिववाक्य सुन सोच विचार विषमज्वर श्रीकृष्णचंद्र आनंदकंदजीके सन्मुख जा हाथ जोड अति विनती कर गिड़गिड़ाय हाहाखाय बोला हे कृपासिंधु! पतितपावन!! दीनदयालु!!! मेरा अपराध क्षमा कीजो और अपने ज्वरसे बचाय लीजो.

प्रभुतुमहौब्रह्मादिक ईश। तुम्हरीशक्तिअगमजगदीश॥
तुमहीरचकरसृष्टिसँवारी। सबमायाजगकृष्णतुम्हारी॥
कृपातुम्हारी यहमैं बूझौं। ज्ञानभये जगकरतासूझौं॥

इतनी स्तुति सुनतेही हरि दयालुहो बोले कि, तू मेरी शरण आया इससे बचा,नहीं तो जीता न बचता. मैंने तेरा अबका अपराध क्षमा किया पर फिर मेरे भक्त और दासोंको मत व्यापियो तुझे मेरीही आनहै ज्वर बोला, कृपासिंधु! जो इस कथाको सुनैगा उसे शीतज्वर, एकांतरा और तिजारी कभी न व्यापेगी, पुनि श्रीकृष्णचंद्र बोले कि, तू अब महादेवके निकट जा यहाँ मत रह, नहीं तो मेरा ज्वर तुझे दुःख देगा. आज्ञा पातेही बिदाहो दंडवत्कर विषमज्वर सदाशिवजीके पास गया और ज्वरकी बाधा सब मिटगई इतनीकथा कह श्रीशुकदेवजी बोले कि, महाराज!

यह संवाद सुनै जो कोय। ज्वरको डर ताको नहिं होय॥

आगे बाणासुर अति कोपकर सब हाथोंमें धनुषबाण ले प्रभुके सन्मुख आ ललकारके बोला.

तुमते युद्ध कियो मैं भारी । तोहूं साध न पुजी हमारी ॥

जब यह कह लगा सब हाथोंसे बाण चलाने; तब भक्तहितकारी श्रीकृष्णचंद्रजीने सुदर्शनचक्रको छोड़ उसके चार हाथ रख सब हाथ काट डाले ऐसे कि जैसे कोई बातके कहते वृक्षके गुद्दे २ छांट डाले. हाथोंके कटतेही बाणासुर शिथिलहो गिरा, घावोंसे लोहूकी नदी बह निकली. जिसमें भुजायें मगर मच्छसी जनातीथीं. कटेहुए हाथियोंके मस्तक घड़ियालसे डूबते उछलते जातेथे. बीच बीच रथ बड़े नवाड़ेसे बहेजातेथे और जिधरतिधर रणभूमिमें श्वान, स्यार, गीध आदि पशु पक्षी लोथें खैंच खैंच आपसमें लड़ लड़ झगड़ झगड़ फाड़ फाड़ खातेथे. कौवे शीशोंसे आँखें निकाल निकाल लेले उड़ उड़ जातेथे. श्रीशुकदेवजी बोले महाराज ! रणभूमिकी यह गति देख बाणासुर अति उदास हो पछितानेलगा, निदान निर्बलहो सदाशिवजीके निकटगया तब

कहत रुद्र मनमाहिं विचारी । अब हरिकी कीजे मनुहारी॥

इतना कह श्रीमहादेवजी बाणासुरको साथ ले वेदपाठ करते वहाँ आये कि जहाँ रणभूमिमें श्रीकृष्णचंद्र खड़ेथे, तहाँ बाणासुरको पाँवोंपर डाल शिवजी हाथ जोड़ बोले, कि हे शरणागतवत्सल ! अब यह बाणासुर आपकी शरण आया. इसपर कृपादृष्टि कीजे और इसका अपराध मनमें न लीजे. तुम तो वारंवार अवतार लेतेहो भूमिका भार उतारनेको और दुष्टहनन और संसारके तारनेको, तुमहो प्रभु अलख अभेद अनंत, भक्तोंके हेतु संसारमें आय प्रकट होते हो भगवंत; नहीं तो सदा रहतेहो विराटस्वरूप, तिसकाहै यह रूप, स्वर्ग शिर, नाभि आकाश, पृथ्वी पाँव, समुद्र पेट; पर्वत नख,बादल केश, रोम वृक्ष, लोचन शशि और भानु, मन रुद्र अहंकार, पवन श्वास, पलक लगना रात दिन,गर्जन शब्द.

ऐसे रूपसदा अनुसरो । काहूपै नहिं जाने परो ॥

और यह संसार दुःखका समुद्रहै इसमें चिंता और मोहरूपी जल भराहै प्रभु विन नामकी नावके सहारे कोई इस महाकठिन समुद्रके पार नहीं जासकता और यों तो बहुतेरे डूबते उछलतेहैं जो नरदेह

पाकर तुम्हारा भजन सुमिरण और जप न करेगा सो नर भूलेगा धर्म और बढ़ावेगा पाप, जिसने संसारमें आय तुम्हारा नाम न लिया, तिसने अमृत छोड़ विष पिया.

जिसकेहृदयबसौतुम आय । भक्तिमुक्तितिहिमिलिगुणगाय॥

इतना कह पुनि महादेवजी बोले कि, हे कृपासिंधु ! दीनबंधु !! तुम्हारी महिमा अपरंपारहै. किसे इतनी सामर्थ्य है जो उसे बखाने और तुम्हारे चरित्रोंको जाने. अब मुझपर कृपाकर इस बाणासुरका अपराध क्षमा कीजै और इसे अपनी भक्तिदीजै. यह भी तुम्हारी भक्तिका अधिकारीहै. क्योंकि भक्त प्रह्लादका वंश अंश है. श्रीकृष्णचंद्र बोले कि, शिवजी ! हम तुममें कुछ भेदनहीं और जो भेद समझेगा सो महानरकमें पड़ेगा और मुझे कभी न पावेगा, जिसने तुम्हें ध्याया उसने अंतसमय मुझे पाया. इसने निष्कपट तुम्हारा नाम लिया, तिसीसे मैंने इसे चतुर्भुज किया. जिसे तुमने वर दिया और दोगे, तिसका निर्वाह मैंने किया और करूंगा. महाराज ! इतना वचन प्रभुके मुखसे निकलतेही शिवजी दंडवत्कर बिदाहो अपनी सेना ले कैलासको गये और श्रीकृष्णचंद्र वहाँहीं खड़े रहे. तब बाणासुर हाथ जोड़ शिरनाय विनतीकर बोला कि, दीनानाथ ! जैसे आपने कृपाकर मुझे तारा तैसे अब चलकर दासका घर पवित्र कीजे और अनिरुद्धजी और ऊपाको अपने साथ लीजै. इस बातके सुनतेही श्रीविहारी भक्तहितकारी प्रद्युम्नजीको साथले बाणासुरके धाम पधारे. महाराज ! उसकाल बाणासुर अति प्रसन्नहो प्रभु को बड़ी भावभक्तिसे पाटंबरके पाँवड़े डालता लिवाय लेगया. आगे-

चरणधोय चरणोदकलियो । अचमनकरमाथेपरदियो ॥

पुनि कहने लगा कि, जो चरणोदक सबको दुर्लभ है सो मैंने हरकी कृपासे पाया और जन्म जन्मका पाप गवाँया; यही चरणोदक त्रिभुवनको पवित्र करताहै. इसीका नाम गंगाहै इसे ब्रह्माने कमंडलुमें भरा शिवजीने शीशपर धरा, पुनि सुर मुनि ऋषिने माना और भगीरथने तीनों देवतावोंकी तपस्या कर संसारमें आना. तबसे इसकानाम भागी-

रथी हुआ, यह पाप मलहरणी, पवित्रकरणी, साधु संतकी सुखदेनी, वैकुंठकी निसेनीहै और जो इसमें न्हाया;उसने जन्म जन्मका पाप गँवाया. जिसने गंगाजल पिया, तिसने निःसंदेह परमपद लिया. जिनने भागीरथीका दर्शन किया, तिनने सारे संसारको जीत लिया. महाराज ! इतना कह बाणासुर अनिरुद्धजी और ऊपाको ले आया और प्रभुके सन्मुख हाथ जोड़ बोला.

क्षमिये दोष भावईभई । यह मैं ऊषा दासी दई ॥

यों कह वेदकी विधिसे बाणासुरने कन्यादान किया और तिसके यौतुकमें बहुत कुछ दिया कि जिसका पारावार नहीं. इतनी कथा कह श्रीशुकदेवजी बोले कि, महाराज ! ब्याहके होतेही श्रीकृष्णचंद्र बाणासुरको आशा भरोसा दे राजगद्दीपर बैठाय पोते बहूको साथ ले बिदाहो धौंसा बजाय सब यदुवंशियों समेत वहाँसे द्वारकापुरीको पधारे. इनके आनेका समाचार पाय सब द्वारकावासी नगरके बाहर आय प्रभुको बाजे गाजेसे लिवाय लाये. उसकाल पुरवासी हाट बाट चौबारों कोठोंसे मंगली गीत गाय गाय मंगलाचार करतेथे और राजमंदिरमें श्रीरुक्मिणी आदि सब सुंदरी बधाये गाय गाय रीति भाँति करतीथीं और देवता अपने अपने विमानोंपर बैठ अधरसे फूल बरसाय बरसाय जयजयकार करतेथे और घर बाहर सारे नगरमें आनंद होरहाथा कि, उसी समय बलराम सुखधाम और श्रीकृष्णचंद्र आनंदकंद सब यदुवंशियोंको बिदा दे अनिरुद्ध ऊषाको साथ ले राजमंदिरमें जा विराजे.

आनी ऊषा गेह मँझारी । हरषहिंदेखि कृष्णकी नारी॥
देहिं अशीश सासु उर लावैं। निरखिहरषि भूषणपहिरावैं ॥

इति श्रीलल्लूलालकृते प्रेमसागरे ऊषाचारित्रवर्णनो
नाम चतुःषष्टितमोऽध्यायः ॥ ६४ ॥

अध्याय ६५.

श्रीशुकदेवमुनि बोले कि, महाराज ! इक्ष्वाकुवंशी राजानृग बड़ा ज्ञानी दानी धर्मात्मा और साहसीथा. उसने अनगिनित गोदान किये गंगाके बालूकी कणका, भादोंके मेहकी बूँदें, और आकाशके तारे गिने जायँ पर राजानृगके दानकी गायें गिनी न जायँ जो ऐसा ज्ञानी महादानी राजा सो थोड़े अधर्मसे गिरगिटहो अंधे कुएँमें रहा तिसे श्रीकृष्णचंद्रजीने मोक्ष दी इतनी कथा सुन श्रीशुकदेवजीसे राजा परीक्षितने पूंछा महाराज ! ऐसा धर्मात्मा दानी राजा किस पापसे गिरगिटहो अंधेकुएँमें रहा और श्रीकृष्णचंद्रजीने कैसे उसे तारा, यह कथा तुम मुझे समझाकर कहो जो मेरे मनका संदेह जाय, श्रीशुकदेवजी बोले महाराज ! आप चित्त दे मनलगाय सुनिये मैं ज्योंकी त्यों सब कथा कह सुनाताहूं कि—राजानृग तो नितप्रति गोदान किया करतेहीथे, पर एक दिन प्रातही न्हाय संध्या पूजा करके सहस्र धोली, धूमरी, काली, पीली, भूरी, कबरी, गौ मँगाय रूपेके खुर सोनेके सींग तांबेकी पीठ समेत पाटंबर उढाय संकल्पी और उनके ऊपर बहुतसा अन्न धन ब्राह्मणोंको दिया. वे ले अपने घर गये, दूसरे दिन फिर राजा उसी भाँति गोदान करने लगा. तो एक गाय पहले दिनकी संकल्पी अनजाने आन मिली सोभी राजाने उन गायोंके साथ दान करदी ब्राह्मण ले अपने घरको चला, आगे दूसरे ब्राह्मणने अपनी गौ पहिचान बाटमें रोकी और कहा कि, यह गाय मेरी है मुझे कल राजाके यहांसे मिलीहै भाई ! तू

इसे क्यों लिये जाताहै ? यह ब्राह्मण बोला कि, इसे तो मैं अभी राजाके यहाँसे लिये चला आताहूं तेरी कहांसे हुई ! महाराज ! वे दोनों ब्राह्मण इसी भाँति मेरी मेरीकर झगड़ने लगे. निदान झगड़ते २ वे दोनों राजाके पास गये, राजाने दोनोंकी बात सुन हाथ जोड़ अतिविनतीकर कहा.

कोऊ लाख रुपैया लेऊ । गैया यह काहूको देऊ ॥

इतनी बातके सुनतेही दोनों झगड़ालू ब्राह्मण अति क्रोधकर बोले कि, महाराज ! जो गाय हमने स्वस्ति बोलके ली सो करोड़ रुपये पानेसे भी हम न देंगे. वह तो हमारे प्राणके साथ है महाराज ! पुनि राजाने उन ब्राह्मणोंके पांवों पड़ पड़ अनेकभाँति फुसलाय समझाया, पर उन तामसी ब्राह्मणोंने राजाका कहना न माना, निदान महाक्रोधकर इतना कह दोनों ब्राह्मण गायछोड़ चले गये कि, महाराज ! जो गाय आपने संकल्पकर हमें दी और हमने स्वस्ति बोल हाथ पसार ली वह गाय रुपये लेकर नहीं दीजाती, अच्छा जो तुम्हारे यहाँ रही तो कुछ चिंता नहीं ! महाराज ! ब्राह्मणोंके जातेही राजानृग पहले तो अति उदासहो मनहींमन कहने लगा कि, यह अधर्म अनजाने मुझसे हुआ सो कैसे छूटेगा पीछे अति दान पुण्य करनेलगा. कितने एकदिन बीते राजानृग कालवश हो मरगया. उसे यमके गण धर्मराजके पास लेगये, धर्मराज राजाको देखतेही सिंहासनसे उठ खड़ा हुआ. पुनि भाव भक्ति कर आसनपर बैठाय अतिहितकर बोला महाराज ! तुम्हारा पुण्य है बहुत और पाप है थोड़ा कहो पहले क्या भुगतोगे ?

सुनि नृप कहत जोरिकै हाथ । मेरो धर्म टरो जनि नाथ ॥
पहलेहों भुगतौंगो पाप । तनधरिकै सहिहौं संताप ॥

इतनी बातके सुनतेही धर्मराजने राजानृगसे कहा कि, महाराज ! तुमने अनजाने जो दान कीहुई गाय फिर दान की, उसी पापसे आपको गिरगिट हो वनबीच गोमती तीर अंधे कुएँमें रहना होगा जब द्वापरके अंतमें श्रीकृष्णचंद्र अवतार लेंगे तब तुम्हें वे मोक्ष देंगे. महाराज ! इतना कह धर्मराज चुपरहा और राजानृग उसीसमय गिरगिटहो अंधेकुएँमें जा गिरा और जीव भक्षण करकर वहाँ रहने लगा. आगे कई युग बीते द्वापरके

अंतमें श्रीकृष्णजीने अवतार लिया और ब्रजलीला कर जब द्वारकाको गये और उनके बेटे पोते भये, तब एकदिन कितनेएक श्रीकृष्णजीके बेटे पोते मिल अहेरको गये और वनमें अहेर करते २ प्यासेभये तब वे वनमें जल ढूंढ़ते २ उसी अंधेकुएँपर गये, जहाँ राजानृग गिरगिटका जन्म ले रहाथा. कुएँमें झाँकतेही एकने पुकारके सबसे कहा, अरे भाई! देखो इस कुएँमें कितना बडा एक गिरगिट है. इतनी बातके सुनतेही सब दौड़ आये और कुएँके पनघटेपर खड़े हो लगे फेटे पगड़ी मिलाय मिलाय लटकाय लटकाय उसे काढ़ने और आपसमें यों कहनेलगे कि, भाई! इसे बिन कुएँसे निकाले हम यहाँसे न जायँगे. महाराज! जब वह पगड़ी फेंटोंकी रस्सीसे न निकला, तब उन्होंने गाँवसे सन सूत मूँज चामकी मोटी मोटी भारी भारी बरसैं मँगवाईं और कुएँमें फाँस गिरगिटको बाँध बल-कर खैंचने लगे. पर वह वहाँसे टसका भी नहीं. तब किसीने द्वारकामें जाय श्रीकृष्णजीसे कहा महाराज! वनमें अंधेकुएँके भीतर एक बड़ा मोटा भारी गिरगिट है, उसे कुँवर काढ हारे पर वह नहीं निकलता.

इतनी बातके सुनतेही हरि उठि धाये और चले चले वहाँ आये जहाँ सब लड़के गिरगिट निकाल रहेथे. प्रभुको देखतेही सब लड़के बोले कि, पिता! देखो यह कितना बड़ा गिरगिट है. हम बड़ी बेरसे निकाल रहे हैं यह निकलता नहीं. महाराज! इस वचनको सुन जो श्रीकृष्णजीने कुएँमें उतर उसके शरीरमें चरण लगाया तो वह देह छोड़ अति सुंदर पुरुष हुआ.

भूपतिरूप रह्यो गहि पाँय। हाथ जोड़ विनवै शिरनाँय॥

कृपासिंधु! आपने बड़ी कृपाकी जो इस महाविपत्तिमें आय मेरी सुध ली. श्रीशुकदेवजी बोले राजा जब वह मनुष्यरूप हो हरिसे इस भाँतिकी बातें करनेलगा, तब यादवोंके बालक और हरिके बेटे पोते अचरजकर श्रीकृष्णचंद्रसे पूंछने लगे कि, महाराज! यह कौनहै और किस पापसे गिरगिटहो यहाँ रहाथा सो कृपाकर कहो? तो हमारे मनका संदेह जाय. उसकाल प्रभुने आप कुछ न कहा, राजासे बोले—

अपनो भेद कहौ समुझाय। जैसे सबै सुनैं मनलाय ॥
कोहौ आप कहाँते आये। कौन पाप यह काया पाये ॥
सुनिके नृप कह जोरे हाथ। तुम सब जानतहौ यदुनाथ ॥

तिसपर आप पूँछते हो तोमैं कहताहूं मेरानाम है राजानृग मैंने अनगिनत गौ ब्राह्मणोंको तुम्हारे निमित्त दीं; एक दिनकी बात है कि, मैंने कितनीएक गायें संकल्पकर ब्राह्मणोंको दीं; दूसरे दिन उन गायोंमेंसे एक गाय फिर आई सो मैंने और गायोंके साथ अनजाने दूसरे दिन द्विजको दान कर दी. जो वह लेकर निकला, तो पहले ब्राह्मणने अपनी गौ पहिचान उससे कहा यह गाय है मेरी मुझे कल राजाके यहांसे मिली है, तू इसे क्यों लिये जाताहै. वह बोला मैं अभी राजाके यहाँसे लिये चला आताहूं तेरी कैसे हुई? महाराज! वे दोनों विप्र इसीबातपर झगड़ते झगड़ते मेरे पास आये. मैंने उन्हें समझाय और कहा कि, एक गायके पलटे मुझसे लाख गौ लो और तुममेंसे कोई यह छोड़दो. महाराज! मेरा कहा हठकर उन दोनोंने न माना. निदान गौ छोड़ क्रोधकर वे दोनों चलेगये. मैं अछताय पछताय मनमार बैठरहा. अंतसमय यमके दूत मुझे धर्मराजके पास लेगये. धर्मराजने मुझसे पूंछा कि, राजा तेरा धर्म है बहुत और पाप है थोड़ा कहो पहले क्या भुगतोगे. मैंने कहा पाप; इस बातके सुनतेही महाराज! धर्मराज बोले कि, राजा तैंने ब्राह्मणको दी हुई गाय फिर दान की इस अधर्मसे तू गिरगिट है पृथ्वीपर जाय गोमती तीर बनके बीच अंधे कूपमें रह जब द्वापरके अंतमें श्रीकृष्णचंद्र अवतार ले तेरे पास आवेंगे तब तेरा उद्धार होगा. महाराज! तभीसे मैं सरटरूप इस अंधकूपमें पड़ा आपके चरणकमलोंका ध्यान करताथा. अब आय आपने मुझे महाकष्टसे उद्धारा और भवसागरसे पार उतारा. इतनी कथा सुनाय श्रीशुकदेवजीने राजा परीक्षितसे कहा कि, महाराज! इतना कह राजानृग तो बिदा हो विमानमें बैठ वैकुंठको गया और श्रीकृष्णचंद्रजी सब बालगोपालको समझायके कहनेलगे कि-

विप्रदोष जनि कोउ करौ । मत कोउ अंश विप्रको हरौ ॥
मनसंकल्पकियोजिनराखो । सत्यवचन विप्रनसोंभाखो ॥
विप्रहि दियो फेर जो लेही । ताको दंड इतो यम देही ॥
विप्रनके सेवकह्वै रहियो । सब अपराधविप्रकोसहियो ॥
विप्रहिमानैं सो मोहिमानैं । विप्रनअरुम्वहिंभिन्ननजानैं ॥

जो मुझमें और ब्राह्मणमें भेद जानेगा सो नरकमें पड़ेगा और विप्रको मानेगा वह मुझे पावेगा और निःसंदेह परमधाममें जावेगा महाराज ! यह बात कह श्रीकृष्णजी सबको वहाँसे ले द्वारकापुरी पधारे.

इति श्रीलल्लूलालकृते प्रेमसागरे राजानृगमोक्षोनाम पंचषष्टितमोऽध्यायः ॥ ६५ ॥

अध्याय ६६.

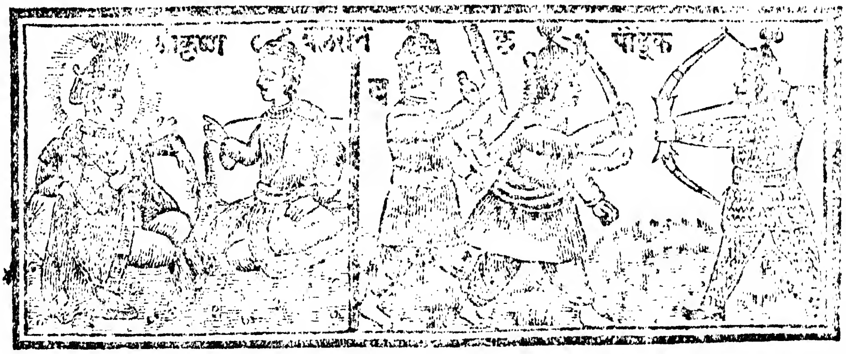

श्रीशुकदेवजी बोले कि, महाराज ! एक समय श्रीकृष्णचंद्रजी आनंदकंद और बलराम सुखधाम मणिमय मंदिरमें बैठेथेकि, बलदेवजीने प्रभुसे कहा भाई ! जब हमें वृंदावनमें कंसने बुला भेजाथा और हम मथुराको चलेथे तब गोपियों और नंद यशोदासे हमने तुमने यह वचन किया था कि, हम शीघ्रही आय मिलैंगे सो वहाँ न जाय द्वारकामें आय बसे, वे हमारी सुरत करते होंगे. जो आप आज्ञा करें तो हम जन्मभूमि देखि आवें और उनका समाधान करि आवें प्रभु बोले कि अच्छा इतनी बातके सुनतेही बलरामजी सबसे बिदाहो हल मुसल ले रथपर चढ़ सिधारे.

महाराज! बलरामजी जिस पुर नगर गाँवमें जातेथे तहाँके राजा आगू बढ़ अति शिष्टाचारकर इन्हे ले जातेथे और ये एक एकका समाधान करते जातेथे; कितने एकदिनमें चलते चलते बलरामजी अवंतिकापुरी पहुँचे.

विद्यागुरुको कियो प्रणाम। दिनदश तहाँ रहे बलराम ॥

आगे गुरुसे बिदाहो बलदेवजी चले चले गोकुलमें पधारे तो देखते क्या हैं कि, बनमें चारों ओर गायें मुँह बाये बिन तृणखाये श्रीकृष्णचंद्रजीकी सुरत किये बाँसुरीकी तानमें मन दिये राँभती ढूँढती फिरती हैं; तिनके पीछे पीछे ग्वाल बाल भी यश गाते प्रेमरँगराते चले जाते हैं जिधर तिधर नगरके निवासी लोग प्रभुको चरित्र और लीला बखान रहेहैं. महाराज! जन्मभूमिमें जाय ब्रजवासियों और गायोंकी यह अवस्था देख बलरामजी करुणाकर नयनोंमें नीर भर लाये आगे रथकी ध्वजा पताका देख श्रीकृष्णचंद्र और बलरामजीका आना जान सब ग्वाल बाल दौड़ आये, प्रभु आतेही रथसे उतर लगे एक एकके गले लग लग अतिहितसे क्षेम कुशल पूंछने. इसबीच किसीने जा नंदयशोदासे कहा कि, बलदेवजी आये; यह समाचार पातेही नंद यशोदा और बड़े बड़े गोप ग्वाल उठ धाये, उन्हें दूरसे आते देख बलरामजी दौड़कर नंदरायके पाँवोंपर जाय गिरे; तब नंदजीने अति आनंदकर नयनोंमें जल भर बड़े प्यारसे बलरामजीको उठाय कंठसे लगाया और वियोगका दुःख गवाँया पुनि प्रभुने—

गहेचरण यशुमतिके जाय। उनहितकर उरलिये लगाय ॥
भुजभरि भेंट कंठगहिरही। लोचनते जलसरिता बही ॥

इतनी कथा कह श्रीशुकदेवजीने राजासे कहा कि, महाराज ऐसे मिल झुल नंदरायजी बलरामजीको घरमें ले जाय कुशल क्षेम पूंछनेलगे कि, कहो? उग्रसेन वसुदेव आदि सब यादव और श्रीकृष्णचंद्र आनंदसे हैं हमारी भी सुरत करतेहैं? बलरामजी बोले आपकी कृपासे सब आनंद मंगलसेहैं और सदा सर्वदा आपका गुण गाते रहतेहैं, इतना वचन

सुन नंदराय चुपरहे, पुनि यशोदारानी श्रीकृष्णजीकी सुरतकर लोचनों-में नीर भर अति व्याकुल हो बोली कि, बलदेवजी हमारे प्यारे नय-नोंके तारे श्रीकृष्णजी अच्छेहैं? बलरामजीने कहा बहुत अच्छेहैं, पुनि नंदरानी कहने लगीं कि. बलदेव! जबसे हरि यहाँसे सिधारे तबसे हमारी आँखोंके आगे अँधेरा होरहाहै. हम आठ पहर उन्हींका ध्यान किये रहतीहैं और वे हमारी सुरत भुलाय द्वारकामें जाय छाय रहे और देखो बहन देवकी रोहिणी हमारी प्रीति छोड़के वहाँही बैठीहैं.

मथुरातेगोकुलढिगजान्यो। बसी दूर तबहीं मनमान्यो॥
भेंटन मिलन आवते हरी। फिर न मिले ऐसी उन करी॥

महाराज! इतना कह जब यशोदाजी अति व्याकुल हो रोने लगीं तब बलरामजीने समझाय बहुत आशा भरोसा दे उनको ढाँढ़स बँधाया पुनि आप भोजन कर पानखाय घरसे बाहर निकले तो क्या देखते हैं कि, सब ब्रजयुवतियां तनक्षीन मनमलीन, छूटेकेश, मैले वेष, जीहारे, घरबारकी सुरत बिसारे, प्रेमरँगराती, यौवनकी माती, हरि-गुण गाती, विरहमें व्याकुल जिधर तिधर मत्तवत् चली जाती हैं महाराज!बलरामजीको देखतेही अतिप्रसन्नहो सबदौड़ आईं और दंडवत् करकर हाथ जोड़ चारों ओर खड़ीहो लगीं पूछने और कहने कि, कहो बलराम सुखधाम! अब कहाँ विराजते हैं हमारे प्राण सुंदर श्याम. कभी हमारी सुरत करते हैं विहारी, कै राजपाट पाय पिछली प्रीति सब बिसारी. जबसे यहाँसे गये हैं तबसे एकबार उद्धवके हाथ योगका सँदेशा कह पठाया फिर किसीकी सुध न ली, अब जाय समुद्र माहिं बसे तो काहेको किसीकी सुध लेंगे, इतनी बातके सुनतेही एक गोपी बोल उठी कि, सखी! हरिकी प्रीतिका कौन करे परेखा, उनका तो देखा सबसे यही लेखा.

ये काहूको नाहिं न ईठ। मातु पिताको जिन दइ पीठ॥
राधा बिन रहते नहिं घरी। सोऊ है बरसाने परी॥

पुनि हम तुमने घर बार छोड़. कुलकान लोकलाज तज; सुत पति

त्याग हरिसे नेह लगाय क्या फलपाया ? निदान स्नेहकी नावपर चढ़ा विरह समुद्र माँझ छोड़गये. अब सुनती हैं कि, द्वारकामें जाय प्रभुने बहुत व्याह किये और सोलहसहस्र एकसौ राजकन्या ! भौमासुरने घेर रक्खीथीं तिन्हें भी श्रीकृष्णने लाय व्याहा अब उनसेभी बेटे पोते नाती भये उन्हें छोड़ यहाँ क्यों आवेंगे यह बातें सुन एक और गोपी बोली कि, सखी! तुम हरिकी बातोंका कुछ पछतावाही मत करो क्योंकि उनके तो सर्व गुण उद्धवजीने आपही सुनायेथे इतना कह पुनि बोली कि, आली ! मेरी बात मानो तो अब-

हलधरजीके परसो पाँय । रहिहैं इनहींके गुणगाय ॥
येहैं गौर श्याम नहि गात । करिहैं नाहि कपटकी बात ॥
पुनि संकर्षण उत्तर दियो । तुम्हरे हेतु गमन हम कियो ॥
आवन हम तुमसों कहिगये। ताते कृष्ण पठै ब्रजदये ॥
रहि द्वैमास करेंगे रास । पुजवैंगे सब तुम्हरी आस ॥

महाराज ! बलरामजीने इतना कह सब ब्रजयुवतियोंको आज्ञादी कि, आज मधुमासकी रातहै. तुम शृंगार कर वनमें आवो हम तुम्हारे साथ रास करेंगे. यह कह बलरामजी साँझसमय बनको सिधारे, तिनके पीछे सब ब्रजयुवतियाँ भी सुथरे वस्त्र आभूषण पहन नख शिखसे शृंगार कर बलदेवजीके पास पहुँचीं.

ठाढी भईं सबै शिरनाय । हलधर छबि वरणी नहिंजाय ॥
कनकवरण नीलांबर धरे । शशिमुखकमलनयनमनहरे ॥
कुंडलएकश्रवणछबिछाजै । मनोभानुशशिसंगविराजै ॥
एक श्रवण हरियशरसपान। दूजो कुंडल धरत न कान ॥
अंग अंग प्रतिभूषण घने । तिनकी शोभा कहत न बने ॥
योंकह पायँन परीं सुंदरी । लीला रास करहु रसभरी ॥

महाराज! इतनी बातके सुनतेही बलरामजीने हूं किया, हुंकार करतेही रासकी सब वस्तु आय उपस्थित हुई. तब तो सब गोपियाँ सोच

संकोच तज अनुरागकर वीणा, मृदंग, करताल, उपंग, मुरली आदि सब यंत्र लेले लगीं बजाने गाने और थेई थेई कर नाच नाच भाव बताय बताय प्रभुको रिझाने; उनका बजाना गाना नाचना सुन देख मग्नहो वारुणी पान कर बलदेवजी सबके साथ मिल गाने नाचने और अनेक अनेक भाँतिके कुतूहलकर सुख देने लेने लगे. उसकाल देवता, गंधर्व, किन्नर, यक्ष अपनी २ स्त्रियों समेत आय आय विमानपर बैठे प्रभुगुण गाय गाय अच-रसे फूल बरसातेथे. चंद्रमा तारामंडलसमेत रासमंडलीका सुख देख देख किरणोंसे अमृत बरसाताथा और पवन पानीभी थँभ रहाथा. इतनी कथा सुनाय श्रीशुकदेवजी बोले कि, महाराज! इसी भाँति बलरामजीने ब्रजमें रह चैत्र वैशाख दो महीने रात्रिको तो ब्रज युवतियोंके साथ रास विलास किया और दिनको हरिकथा सुनाय नंद यशोदाको सुख दिया. उसीमें एकदिन रात्रिसमय रास करते करते बलरामजीने जा-

नदी तीर करिके विश्राम । बोले तहाँ कोपिके राम ॥
यमुना तू इतही बहि आव । सहसधार कर मोहिं अन्हवाव ॥
जोन मानिहो कह्यो हमारो । खंड खंड जल करौं तिहारो ॥

महाराज! जब बलरामजीकी बातें अभिमानकर यमुनाने सुनी अन-सुनी कीं तब तो इन्होंने क्रोधकर उसे हलसे खैंचली और स्नान किया. उसी दिनसे वहाँ यमुना अबतक टेढी हैं. आगे न्हाय श्रम मिटाय बलरामजी सब गोपियोंको सुख दे साथ ले बनसे चल नगरमें आये; तहाँ-

गोपीकहैं सुनो ब्रजनाथ । हमहूंको लै चलियो साथ ॥

यह बात सुन बलरामजी गोपियोंको आशा भरोसा दे ढाँढस बँधाय बिदाकर बिदाहो नंद यशोदाके निकट गये; पुनि उन्हैं भी समझाय बुझाय धीरज बँधाय कई दिन रह बिदाहो द्वारकाको चले और कितने एक दिनोंमें जाय पहुँचे.

इति श्रीलल्लूलालकृते प्रेमसागरे बलभद्रचरित्रो नाम षट्षष्टितमोऽध्यायः ॥ ६६ ॥

अध्याय ६७.

श्रीशुकदेवजी बोले कि, महाराज ! काशीपुरीमें एक पौंड्रक नाम राजा सो महाबली और बड़ा प्रतापी था. तिसने विष्णुका वेष किया और छलबल कर सबका मन हरलिया. सदा पीतवसन, वैजयंतीमाल मुक्तमाल, मणिमाल, पहनेरहै और शंख, चक्र, गदा, पद्म लिये दोहाथ काष्ठके किये एक घोड़ेपर काष्ठहीका गरुड़ धरे उसपर चढ़ाफिरे वह वासुदेव पौंड्रक कहावे और सबसे आपको पुजावे. जो राजा उसकी आज्ञा न माने उसपर चढ़ जाय फिर मार उजाड़कर उसे अपने वशमें रक्खे, इतनी कथा कह श्रीशुकदेवजी बोले कि, राजा ! उसका यह आचरण देख सुन देश देश नगर नगर गाँव गाँव घर घरमें लोग चर्चा करने लगे कि, वासुदेव तो व्रजभूमिके बीच यदुकुलमें प्रकट हुएथे. सो द्वारकापुरीमें विराजतेहैं. दूसरा अब काशीमें हुआ है, दोनोंमें हम किसे सच्चा जानें और मानें. महाराज ! देश देशमें यह चर्चा हो रहीथी कि; कुछ संघानपाय वासुदेव पौंड्रक एक दिन अपनी सभामें आय बोला—

को है कृष्ण द्वारका रहै। वाको वासुदेव जग कहै॥
भक्तहेतु भू हौं औतरचो। मेरो वेष तहाँ तिन धरचो॥

इतनी बात कह दूतको बुलाय उसने ऊंच नीचकी बातें सब समझाय बुझाय इतना कह द्वारकामें श्रीकृष्णचंद्रजीके पास भेज दिया कि, यातो जो मेरा वेष बनाये फिरतेहो सो छोड़दो, नहीं तो लड़नेका विचार करो. आज्ञा पातेही दूत बिदाहो काशीसे चला चला द्वारकापुरीमें पहुँचा और श्रीकृष्णचंद्रजीकी सभा में जा उपस्थित हुआ. प्रभुने उससे पूंछा कि, तू कौनहै ? और कहांसे आयाहै. वह बोला मैं वासुदेव पौंड्रकका दूतहूं काशीपुरीसे स्वामीका पठाया कुछ संदेशा कहने आपके पास आयाहूं कहो तो कहूं श्रीकृष्णचंद्र बोले अच्छा कह, प्रभुके मुखसे यह वचन निकलतेही दूत खड़ाहो हाथ जोड़ कहने लगा कि, महाराज ! वासुदेव पौंड्रकने कहाहै कि, त्रिभुवनपति जगतका कर्त्ता तो मैंहूं तू कौन है ? जो मेरा वेष बनाय जरासंधके डरसे भाग द्वारकामें आय रहा

है, कैतो मेरा बाना छोड़ शीघ्र आय मेरी शरणागत हो नहीं तो तेरे, सब यदुवंशियों समेत तुझे आय मारूंगा और भूमिका भार उतार अपने भक्तोंको पालूंगा. मैंहीं हूं अलख अगोचर निराकार, मेरा जप, तप, यज्ञ, दान करतेहैं सुर नर मुनि ऋषि बार बार; मैंहीं ब्रह्मा हो बनाताहूं, विष्णुहो पालताहूं, शिवहो संहारताहूं. मैंनेही मच्छरूपहो वेद डूबते निकाले कच्छपरूपहो गिरि धारण किया, वाराह बन भूमिको रखलिया. नृसिंहअवतार ले हिरण्यकशिपुको वध किया, वामन अवतार ले बलिको छला, राम अवतार ले महादुष्ट रावणको मारा. मेरा यही कामहै कि जब जब असुर मेरे भक्तोंको आय सताते तब तब मैं अवतारले भूमिका भार उतारताहूं,

इतनी कथा कह श्रीशुकदेवजीने राजा परीक्षितसे कहा कि, महाराज! वासुदेव पौंड्रकका दूत तो इस ढबकी बातें करता और श्रीकृष्णचंद्र आनंदकंद रत्नसिंहासनपर बैठे यादवोंकी सभामें हँस हँसकर सुनतेथे कि इसबीच कोई यदुवंशी बोल उठा–

तोहिं कहा यम आयो लैन। भाषत तू जो ऐसे बैन॥
मारें कहा तोहिं हम नीच। आयोहै कपटीके बीच॥

जो तू बसीठ न होता तो बिन मारे न छोड़ते दूतको मारना उचित नहीं. महाराज! जद यदुवंशीने यह बात कही, तद श्रीकृष्णजीने उस दूतको निकट बुलाय समझाय बुझायके कहा कि, तू जाय अपने वासुदेवसे कह कि–कृष्णने कहाहै कि, मैं तेरा बाना छोंड़ शरण आताहूं; सावधान हो. इतनी बातके सुनतेही दूत दंडवत् कर बिदा हुआ और श्रीकृष्णचंद्रजीभी अपनी सेना ले काशीपुरीको सिधारे. दूतने जाय वासुदेव पौंड्रकसे कहा कि; महाराज! मैंने द्वारकामें जाय आपका कहा संदेश सब श्रीकृष्णको सुनाया उन्होंने सुनकर कहा कि, तू अपने स्वामीसे जाय कह कि–सावधान रहे मैं उसका बानाछोड़ शरण लेने आताहूं. महाराज! बसीठ यह बात कहताही था कि, किसीने आय कहा महाराज! आप निश्चित क्या बैठेहो श्रीकृष्णजी अपनी सेना

ले चढ़आये इतनी बातके सुनतेही वासुदेव पौंड्रक उसी वेषसे अपना सब कटक ले चढ़आया और चला चला श्रीकृष्णचंद्रजीके सन्मुख आया. तिसके साथ एक और भी काशीका राजा चढ़ दौड़ा दोनों ओर दल तुलकर खड़ेहुए. जुझाऊ बाजे बाजने लगे शूरवीर रावत लड़ने और कायर खेत छोड़ छोड़ अपना जीव लेले भागने, उसकाल युद्ध करता करता कालवशहो वासुदेव पौंड्रक इसभाँति श्रीकृष्णचंद्रजीके सन्मुख जाकर ललकारा. उसे विष्णु वेषसे देख सब यदुवंशियोंने श्रीकृष्णचंद्रसे पूछा कि, महाराज! इसे इस वेषसे कैसे मारोगे. प्रभुने कहा कपटीके मारनेका कुछ दोष नहीं. इतना कह हरिने सुदर्शनचक्रको आज्ञा दी; उसने जातेही जो दोनों भुजा काष्ठकी थीं सो उखाड़ लीं. उसके साथ गरूड़ भी टूटा और तुरंग भागा. जब वासुदेव पौंड्रक नीचे गिरा; तब सुदर्शनचक्र ने उसका शिर काट फेंका.

कटतशीशनृपपौण्ड्रकतरयो। शीशजायकाशीमेंपरयो ॥
जहाँ हुतो ताको रनिवासु। देखत शीश सुंदरी तासु ॥
रोवें यों कहि खेंचें बार। यह गति कहा भई करतार ॥
तुमतौ अजर अमरहे भये। कैसे प्राण पलकमें गये ॥

महाराज! रानियोंका रोना सुन सुदक्षिणनाम उसका एक बेटा था, सो वहाँ आय बापका शिर कटादेख अति क्रोधकर कहनेलगा कि, जिसने मेरे पिताको मारा है, उससे मैं बिन पलटालिये न रहूंगा. इतनी कथा कह श्रीशुकदेवजी बोले कि, महाराज! वासुदेव पौंड्रकको मार श्रीकृष्णचंद्रजी तो अपना सब कटक ले द्वारकापुरीको सिधारे और उसका बेटा अपने बापका बैर लेनेको महादेवजीकी अतिकठिन तपस्या करने लगा. इसमें कितने एकदिन पीछे एकदिन प्रसन्नहो महादेवजी भोलानाथने आय कहा कि वर माँग; यह बोला महाराज! मुझे यही वर दीजे कि श्रीकृष्णसे मैं अपने पिताका बैर लूं शिवजी बोले अच्छा जो तू बैर लिया चाहता है तो एक कामकर वह बोला क्या? कहा, उलटे वेदमंत्रोंसे यज्ञकर, इससे एक राक्षसी अग्निसे निकलेगी,

उससे जो तू कहेगा सो वह करेगी. इतना वचन शिवजीके मुखसे सुन महाराज! वह जाय ब्राह्मणोंको बुलवाय वेदीरच तिल, यव, घी, चीनी आदि सब होमकी सामा ले शाकल बनाय लगा उलटे वेदमंत्र पढ़ पढ़ होमकरने; निदान यज्ञ करते करते अग्निकुंडसे कृत्यानाम एक राक्षसी निकली सो श्रीकृष्णजीके पीछेही पीछे नगर देश गाँव जलाती जलाती द्वारकापुरीमें पहुँची और लगी पुरीको जलाने, नगरको जलता देख सब यदुवंशी भयखाय श्रीकृष्णचंद्रजीके पास जा पुकारे कि, महाराज! इस आगसे कैसे बचेंगे? यह तो सारे नगरको जलाती चली आतीहै. प्रभु बोले तुम किसी बातकी चिंता मत करो. यह कृत्यानाम राक्षसी काशीसे आई है. मैं अभी इसका उपाय करताहूं. महाराज! इतना कह श्रीकृष्णजीने सुदर्शनचक्रको आज्ञा दी कि, इसे मार भगाय और इसी-समय जाय काशीपुरीको जलाय आव. हरिकी आज्ञा पातेही सुदर्शनचक्रने कृत्याको मार भगाया और बातके कहतेही काशीको जा जलाया.

परजा भागी फिरैं दुखारी। गारी देहिं सुदक्षहि भारी॥
फिर्यो चक्र शिवपुरी जलाय। सोई कही कृष्णसों आय॥

इति श्रीलल्लूलालकृते प्रेमसागरे नृपपौंड्रकमोक्षो नाम
सप्तषष्टितमोऽध्यायः ॥ ६७ ॥

अध्याय ६८.

श्रीशुकदेवजी बोले कि, महाराज! जैसे बलराम सुखधाम रूपनिधानने द्विविदकपिको मारा तैसेही मैं कथा कहताहूं तुम चित्तदे सुनो. एकदिन

द्विविद जो सुग्रीवका मंत्री और मयन्द कपिका भाई व भौमासुरका सखा था सो कहने लगा कि, एक शूल मेरे मनमें है सो जब तब खटकती है. यह बात सुन किसीने पूंछा कि, महाराज ! सो क्या ? वह बोला कि, जिसने मेरे मित्र भौमासुरको मारा तिसेमारूं तो मेरे मनका दुःख जाय. महाराज ! इतना कह वह उसीसमय अतिक्रोधकर द्वारकापुरीको चला. श्रीकृष्णचंद्रका देश उजाड़ता और लोगोंको दुःख देता. किसीको पानी बरसाय बहाया, किसीको आग बरसाय जलाया किसीको पहाड़पर पटका, किसीपर पहाड़ दे पटका. किसीको समुद्रमें डुबाया, किसीको पकड़ बाँध गुफामें छिपाया, किसीका पेट फाड़डाला, किसीपर वृक्ष उखाड़मारा. इसीरीतिसे लोगोंको सताता जाताथा और जहाँ ऋषि मुनि देवतावोंको बैठे पाताथा तहाँ गू मूत रुधिर बरसाताथा. निदान इसीभाँति लोगोंको दुःख देता और उपाधि करता जा द्वारकापुरीमें पहुँचा और अल्पतनुधर श्रीकृष्णके मंदिरपर जा बैठा उसको देख सब सुंदरी मंदिरके भीतर किवाँड़ देदे भागकर जाय छिपीं तब तो वह मनहींमन यह विचार बलरामजीके समाचार पाय रैवतकगिरिपर गया.

पहले हलधरको वध करौं । पीछे प्राण कृष्णके हरौं ॥

जहाँ बलदेवजी स्त्रियोंके साथ विहार करतेथे महाराज ! छिपकर वह वहाँ क्या देखता है कि, बलरामजी मद्य पी सब स्त्रियोंको साथ ले एकसरोवर बीच अनेक अनेक भाँतिकी लीलाकर गाय गाय न्हाय न्हिलाय रहे हैं. यह चरित्र देख द्विविद एक पेड़पर जाय चढ़ा और किलकारियाँ मार मार घुरक घुरक लगा डाल डाल कूद कूद फिर फिर चरित्र करने और जहाँ मदिराका भरा कलश और सबके चीर धरेथे. तिनपर लगा हगने मूतने. बंदरको सब सुंदरी देखतेही डरकर पुकारीं कि, महाराज ! यह कपि कहाँसे आया जो हमैं डरवाय डरवाय हमारे वस्त्रोंपर हग मूत रहा है. इतनी बातके सुनतेही बलदेवजीने सरोवरसे निकल जो हँसके ढेला चलाया तो वह उनको मतवालाजान महाक्रोधकर किलकारीमार नीचे आया. आतेही उसने मदका भरा घड़ा जो तीरपर धराथा सो लुढ़ाय दिया और

सारे चीरफाड़ टूक टूक कर डाले. तब तो क्रोधकर बलरामजीने हल मूशल सँभाला और वह भी पर्वतसमहो प्रभुके सोहीं युद्ध करनेको जाय उपस्थितहुआ इधरसे वे हल मूशल चलातेथे और उधरसे वह पेड़ पर्वत.

महायुद्ध दोऊ मिलि करैं। नेक न दुऊ ठौरते टरैं॥

महाराज! ये तो दोनों बली अनेक अनेक प्रकारकी बातें कर निधड़क लड़तेथे पर देखनेवालोंका मारेभयके प्राणहीं निकलता था- निदान प्रभुने सबको दुःखित जान द्विविदको मारगिराया उसके मरतेही सुरनर मुनि सबके जीको आनंद हुआ और दुःख छूटगया.

फूले देव पुष्प वरषावैं। जय जय कर हलधरहिं सुनावैं॥

इतनी कथा कह श्रीशुकदेवजीने राजापरीक्षितसे कहा कि, महाराज! त्रेतायुगसे यह बंदर था तिसे बलदेवजीने मार उद्धार किया. आगे बलराम सुखधाम सबको साथ ले वहाँ सुखपूर्वक श्रीद्वारकापुरीमें आये और द्विविदके मारनेके समाचार सारे यदुवंशियोंको सुनाये.

इति श्रीलल्लूलालकृते प्रेमसागरे बलभद्रचरित्रे द्विविदकपिवधोनाम अष्टषष्टितमोऽध्यायः॥ ६८॥

अध्याय ६९.

श्रीशुकदेवजी बोले कि राजा अब मैं दुर्योधनकी बेटी लक्ष्मणाके विवाहकी कथा कहताहूं कि, जैसे सांब हस्तिनापुर जाय उसे व्याह-

लाये. महाराज ! राजादुर्योधनकी पुत्री लक्ष्मणा जब ब्याहने योग्यहुई तब उसके पिताने सब देश देशके नरेशोंको पत्र लिखलिख बुलाया और स्वयंवर किया. स्वयंवरके समाचार पाय श्रीकृष्णचंद्रका पुत्र जो जाम्बवतीसे सांबनामक था वह भी वहाँ पहुँचा वहाँ जाय सांब क्या देखता है कि देशदेशके नरेश बलवान् गुणवान् रूपनिधान महासुजान सुथरे वस्त्र आभूषण रत्नजड़ित पहने, अस्त्र शस्त्र बांधे, मौन साधे, स्वयंवरके बीच पांति पांति खड़े हैं और उनके पीछे उसी भाँति सब कौरव भी, जहाँ तहाँ बाहर बाजन बाज रहेहैं. भीतर मंगलीलोग मंगलाचार कररहेहैं. सबके बीच राजकुमारी मातु पिताकी प्यारी मनहींमन यों कहती हार लिये आँखोंकीसी पुतली फिरतीहै, कि मैं किसे बरूं, महाराज ! जब वह सुंदरी शीलवती रूपवती मालालिये लाजकिये फिरती फिरती सांबके सन्मुख आई, तब इन्होंने शोच संकोच तज निर्भयहो उसे हाथ पकड़ रथमें बैठाय अपनी बाट ली. सब राजा खड़े मुँह देखते रहगये और कर्ण, द्रोण, शल्य, भूरिश्रवा, दुर्योधनआदि सारे कौरव भी उससमय कुछ न बोले. पुनि अति क्रोधकर आपसमें कहनेलगे कि, देखो ! इसने क्या काम किया कि जो रसमें आयके अनरस किया. कर्ण बोला कि, यदुवंशियोंकी सदाकी यह टेव है कि, जहाँ कहीं शुभकाजमें जातेहैं तहाँ उपाधिही करते हैं.

जातिहीन अबहीं ये बढ़े । राज्यपाय माथेपर चढे ॥

इतनीबातके सुनतेही सब कौरव महाक्रोधकर अपने अपने अस्त्र शस्त्र ले यों कह चढ़ दौड़े कि, देखें वह कैसा बली है जो हमारे आगेसे कन्या ले निकल जायगा और बीच बाटके सांबको जा घेरा आगे दोनोंओरसे अस्त्र शस्त्र चलने लगे. निदान कितनी एक बेरके लड़नेमें जब सांबका सारथी मारा गया और वह नीचे उतरा तब ये उसे घेर पकड़कर बाँधके लाये व सभाके बीचोंबीच खड़ाकर इन्होंने उससे पूंछा कि, अब तेरा पराक्रम कहाँगया ? यह बात सुन वह लजायरहा, इसमें नारदजीने आय राजा दुर्योधन समेत सब कौरवोंसे कहा कि, यह सांबनाम श्रीकृ-

ष्णचंद्रका पुत्र है, तुम इसे कुछ मतकहो. जो होनाथा सो हुआ अभी इसका समाचार पाय दल साज आवेंगे श्रीकृष्ण और बलराम, जो कुछ कहना सुनना हो सो उनसे कह सुन लीजो, लड़केसे बात कहनी तुम्हें किसी भाँति उचित नहीं. इसने लड़कबुद्धि की तो की महाराज! इतना वचन कह नारदजी वहाँसे विदा हो चले चले द्वारकापुरीको गये. और राजाउग्रसेनकी सभामें जाखड़े भये.

देखत उठे सबै शिरनाय। आसनदियो ततक्षण लाय॥

बैठतेही नारदजीबोले कि, महाराज! कौरवोंने सांबको बाँध महादुःख दिया और देतेहैं जो इससमय जाय उसकी शीघ्र सुध लो तौ ठीक नहीं तो फिर सांबका बचना कठिन है.

गर्व भयो कौरवको भारी। लाजसकुचनहिंकरीतुम्हारी॥
बालककोबाँध्यो उन ऐसे। शत्रूको बाँधै कोउ जैसे॥

इस बातके सुनतेही राजा उग्रसेनने अति कोपकर यदुवंशियोंको बुलायके कहा कि, तुम अभी हमारी सब कटक ले हस्तिनापुर चढ़ जावो और कौरवोंको मार सांबको छुड़ालेआवो, राजाकी आज्ञा पातेही ज्यों सब दल चलनेको उपस्थित हुआ, त्यों बलरामजीने जाय राजाउग्रसेनसे समझाकर कहा कि, महाराज! आप उनपर सेना न पठाइये मुझे आज्ञाकीजे मैं जाय उन्हें उलहना दे सांबको छुड़ालाऊं देखूं उन्होंने किसलिये सांबको पकड़बाँधा इसबातका भेद बिन मेरे गये न खुलेगा. इतनीबात के सुनतेही राजाउग्रसेनने बलरामजीको हस्तिनापुर जानेकी आज्ञादी और बलदेवजी कितनेएक बड़े बड़े पंडित ब्राह्मण और नारदमुनिको साथ ले द्वारकासे चले चले हस्तिनापुर पहुँचे उस समय प्रभुने नगरके बाहर एक बाड़ीमें डेरा कर नारदजीसे कहा कि, महाराज! हम यहाँ उतरे हैं आप जाय कौरवोंसे हमारे आनेका समाचार कहियो. प्रभुकी आज्ञापाय नारदजीने नगरमें जाय बलरामजीके आनेका समाचार सुनाया.

सुनिकै सावधान सब भये। आगे होय लेन तहँ गये॥
भीषम द्रोण कर्ण मिलिचले। लीन्हे वसन पटंबर भले॥
दुर्योधन यों कहिके धायो। मेरोगुरु संकर्षण आयो॥

इतनी कथाकह श्रीशुकदेवजीने राजासे कहा कि, महाराज! सब कौरवोंने उस बाड़ीमें जाय बलरामजीसे भेंटकर भेट दी और पाँवोंपड़ हाथजोड़ बहुत स्तुतिकी. आगे चोवा चंदन लगाय फूल मालपहिराय पाटंबरके पाँवड़े बिछाय बाजे गाजेसे नगरमें लिवा लाये, पुनि षटरस भोजन करवाय पास बैठाय सबकी कुशलक्षेम पूँछ पूंछा कि महाराज! आपका आना कहाँ कैसे हुआ? ऐसी उनके मुखसे यह बात निकलते ही बलरामजी बोले कि महाराज! उग्रसेनके पठाये संदेशा कहने तुम्हारे पास आये हैं, कौरव बोले कहो-बलदेवजीने कहा कि, राजाजीने कहाहै कि, तुम्हैं हमसे विरोध करना उचित न था.

तुमहौबहुतसोबालकएक। कियो युद्ध तजिज्ञानविवेक॥
महाअधर्मजानिकैकियो। लोकलाजतजिसुतगहिलियो॥
ऐसो गर्व तुम्हैं अब भयो। समझ बूझ ताको दुख दयो॥

महाराज! इतनीबातके सुनतेही कौरव महाकोपकर बोले कि बलरामजी! बसकरो बसकरो, अधिकबड़ाई उग्रसेनकी मतकरो, हमसे यह बात सुनी नहीं जाती. चार दिनकी बात है कि उग्रसेनको कोई जानता मानता न था; जबसे हमारे यहाँ सगाई की तभीसे प्रभुता पाई. अब हमींसे अभिमानकीबात कह पठाई, उसे लाज नहीं आती? जो द्वारकापुरीमें बैठा राज्यपाय पिछली सब बात गँवाय, जो मनमानता है सो कहताहै. वह दिन भूलगया कि मथुरामें ग्वालगूजरोंके साथ रहता खाताथा. जैसा हमने साथ खिलाय सम्बन्धकर राज्यदिलवाया तिसका फल हाथोंहाथ पाया जो किसी पूरेपर गुणकरते तो वह जन्मभर हमारा गुणमानता. किसीने सच कहाहै कि, ओछोंकी प्रीत, बालूकी भीत समान है. इतनी कथा कह श्रीशुकदेवजी बोले कि, महाराज!

ऐसे अनेक अनेकप्रकारकी बातैं कह कर्ण, द्रोण, भीष्म, दुर्योधन, शल्य आदि सब कौरव गर्वकर उठ उठ अपने घर गये और बलरामजी उनकी बातैं सुन सुन हँस हँस वहाँ बैठे मनहींमन यों कहतेरहैं कि, इनको राज्य और बलका गर्व भयाहै; जो ऐसी ऐसी बातें करते हैं नहीं तो ब्रह्मा, रुद्र, इंद्रका ईश, जिसे नवावे शीश; तिस उग्रसेनकी ये निंदाकरैं तो मेरानाम बलदेव, जो सब कौरवोंको नगर समेत गंगामें डुबाऊं नहीं तो नहीं. महाराज ! इतना कह बलदेवजी अति क्रोधकर सब कौरवोंको नगरसमेत हलसे खैंचगंगातीरपर लेगये और चाहैं कि, डुबावैं त्योंहीं अति घबराय भयखाय सब कौरव आय हाथजोड़ शिरनाय गिड़गिड़ाय विनतीकर बोले कि, महाराज ! हमारा अपराध क्षमाकीजे हम आपकी शरणआये. अब बचाय लीजै जो कहोगे सो करेंगे. सदा राजा उग्रसेनकी आज्ञामें रहैंगे. राजा ! इतनी बातके सुनतेही बलरामजीका क्रोध शांत हुआ और जो हलसे खैंच नगर गंगातीर पर लायेथे सो वहीं रक्खा. तिसीदिनसे हस्तिनापुर गंगा तीरपर है. पहले वहाँ न था. आगे उन्होंने सांबको छोड़दिया और राजादुर्योधनने चचा भतीजोंको मनाय घरमें लेजाय मंगलाचार करवाय वेदकी विधिसे सांबको कन्या दान किया और उसके यौतुकमें बहुत कुछ संकल्प किया इतनी कथा कह श्रीशुकदेवजीने कहा कि, महाराज ! ऐसे बलरामजी हस्तिनापुर जाय कौरवोंका गर्व गँवाय भतीजेको छुड़ाय ब्याह लाये. उसकाल सारी द्वारकापुरीमें आनंदहोगया और बलदेवजीने हस्तिनापुरका सब समाचार ब्योरा समेत समझाय राजाउग्रसेनके पास जा कहा.

इति श्रीलल्लूलालकृते प्रेमसागरे सांबविवाहकथनं नामै-
कोनसप्ततितमोऽध्यायः ॥ ६९ ॥

अध्याय ७०.

श्रीशुकदेवजी बोले कि महाराज! एकसमय नारदजीके मनमें आई कि, श्रीकृष्णचन्द्र सोलहसहस्र एकसौआठ स्त्री ले कैसे गृहस्थाश्रम करतेहैं सो चलकर देखनाचाहिये. इतना विचार चले चले द्वारकापुरीमें आये तो नगरके बाहर क्या देखतेहैं कि, कहीं बाड़ियोंमें नानाभाँति के बड़े बड़े उंचे उंचे वृक्ष हरे फलफूलोंसे भरे खड़े झूम रहे हैं. तिनपर कपोत, कीर, चातक, मयूर आदि पक्षी मनभावन बोलियाँ बैठे बोलरहेहैं. कहीं सुंदर सरोवरमें कमल खिलेहुए तिनपर भौरोंके झुंडके झुंड गुंजरहे, तीरमें हंस, सारस समेत खग कोलाहल कर रहे हैं, कहीं फुलवाड़ियोंमें माली मीठे २ सुरोंसे गाय गाय ऊँचे नीचे नीर चढ़ाय क्यारियोंमें जल सींच रहे हैं. कहीं इंदारों, बाड़ियोंपर रहँट परोहे चल रहे हैं. और पनघटपर पनहारियों के ठट्ठके ठट्ठ लगे हैं. तिनकी शोभा कुछ वर्णी नहींजाती. वह देखतेही बन आवे. महाराज! यह शोभा वन उपवनकी निरख हरष नारदजी पुरीमें जाय देखें तो अति सुंदर कंचनके मणिमय मंदिर जगमगाय रहे हैं तिनपर ध्वजा पताका पहराय रही हैं. द्वार द्वारमें तोरण बंदनवार बंधी हैं. द्वार द्वारपर केलेके खंभ और कंचनके कुंभ सपल्लव भरे धरे हैं. घर घरकी जाली झरोखों मोखोंसे धूपका धुआँ निकल श्यामघटासा मँड़रायरहाहै उसके बीच सोनेके कलश कलशियाँ बिजुलीसी चमकरही हैं घर घर पूजा पाठ होम यज्ञ दान हो रहे हैं. ठौर२ भजन सुमिरण गान कथा पुराणकी चर्चा चलरही है जहाँ तहाँ यदुवंशी इंद्रकीसी सभा किये बैठेहैं और सारे नगरमें सुख छाय रहा है.

इतनी कथा कह श्रीशुकदेवजी राजापरीक्षितसे कहनेलगे कि, महाराज! नारदजी पुरीमें जातेही नमहो कहनेलगे कि, प्रथम किस मंदिरमें जाऊं जो श्रीकृष्णचन्द्रको पाऊं? महाराज! मनहींमन इतना कह नारदजी पहले रुक्मिणीजीके मंदिरमें गये वहाँ श्रीकृष्णचन्द्र विराजतेथे. सो इन्हें देख उठ खडे भये रुक्मिणीजी जलकी झारी भरलाई प्रभुने पावँ धोय आसनपर बैठाय धूप दीप नैवेद्यधर पूजाकर हाथ जोड़ नारदजीसे कहा.

जाघर चरण साधुके परैं। ते नर सुख संपति अनुसरैं॥
हमसे कुटमी तारण हेतु। घरही आय दरश तुम देतु॥

महाराज! प्रभुके मुखसे इतना वचन निकलतेही कि जगदीश तुम चिरंजीवरहो, यह आशीप दे नारदजी जाम्बवतीके मंदिरमें गये. श्रीजाम्बवतीके समीप देखा कि हरि पंसासार खेलरहे हैं. नारदजीको देखतेही जो प्रभु उठे तो नारदजी आशीर्वाद दे उलटे फिरे. पुनि सत्यभामाके यहाँगये तो देखा कि, श्रीकृष्णजी बैठे तेल उबटन लगवाय रहे हैं. वहाँसे चुपचाप नारदमुनिजी फिर आये. इसलिये कि, शास्त्रमें लिखाहै "तेल लगानेके समय न राजा प्रणामकरै न ब्राह्मण आशीष दे" आगे नारदजी कालिंदीके घरगये, वहाँ देखा कि हरि सोरहे हैं. महाराज! कालिंदी ने नारदजीको देखतेही हरिको पाँव दाब जगाया. प्रभु जागतेही ऋषिके निकटजाय दंडवत्कर हाथ जोड़ बोले कि, साधुवों के चरण तीर्थजलके समान हैं; जहाँ पड़ें तहाँ पवित्र करते हैं. यह सुन वहाँ सेभी आशीष दे नारदजी चल खड़े हुए और मित्रविंदा के धाम गये. तहाँ देखा कि, ब्रह्मभोज होरहाहै और श्रीकृष्ण परोसतेहैं. नारदजीको देख प्रभुने कहा कि, महाराज! जो कृपाकर आये हो तो आप भी प्रसाद ले हमें उच्छिष्ट दीजे और घर पवित्र कीजे. नारदजीने कहा, महाराज! मैं थोड़ा फिरआऊं, फेरआऊंगा, ब्राह्मणोंको जिमालीजे. पुनि ब्रह्मशेष आय मैं पाऊंगा. यों सुनाय नारदजी बिदा हो सत्याके गेह पधारे वहाँ क्यादेखतेहैं कि, श्रीबिहारी भक्तहितकारी आनंदसे बैठे विहार कर रहे हैं यह चरित्र देख नारदजी

उलटे पाँवों फिरे. पुनि भद्राके स्थानपर गये, तो देखा कि, हरि भोजन कर रहेहैं. वहाँसे फिरे तो लक्ष्मणाके गेह पधारे. तहाँ देखाकि, प्रभु स्नान कर रहे हैं. इतनी कथा सुनाय श्रीशुकदेवजीने कहा कि, महाराज! इसी भाँति नारदमुनिजी सोलहसहस्र एकसौआठ घर फिरे, पर विन श्रीकृष्ण कोई घर न देखा.जहाँ देखा तहाँ हरिको गृहस्थाश्रमका कामही करते देखा. यह चरित्र लखि–

नारदके मन अचरज एह । कृष्ण विना नहिं कोई गेह ॥
जाघर जाउँ तहाँ हरि प्यारी । ऐसी प्रभु लीला विस्तारी ॥
सोलहसहसअठोतरसौघर । तहाँ २ सुंदरिसँगगिरिधर ॥
मगनहोयऋषिकहत विचारी । यहमायायदुनाथतिहारी ॥
काहूसों नहिं जानी परै । कौन तिहारी माया तरै ॥

महाराज! जब नारदजीने अचंभाकर कहे ये बैन, तब बोले प्रभु श्रीकृष्णचंद्र सुखदैन; कि नारद! तू अपने मनमें कुछ खेद मत कर मेरी मायाअतिप्रबल है और सारे संसारमें फैल रहीहै यह मुझेही मोहती है तो दूसरेकी क्या सामर्थ्य? जो इसके हाथसे बचै और जगत्‌में आय इसमें न रचै.

नारद सुनि विनवैं शिरनाय । मोपर कृपा करो यदुराय ॥

जो आपकी भक्ति सदा मेरे चित्तमें रहे और मेरामन मायाके वश न होय विषयकी वासना न चहे. राजा! इतना कह नारदजी प्रभुसे विदाहो दंडवत्‌कर वीणा बजाते हरिगुण गाते अपने स्थानको गये और श्रीकृष्णचंद्रजी द्वारकामें लीला करतेरहे.

इति श्रीलल्लूलालकृते प्रेमसागरे नारदमायादर्शनं नाम सप्ततितमोऽध्यायः ॥ ७० ॥

अध्याय ७१.

श्रीशुकदेवजी बोले कि, महाराज ! एकदिन श्रीकृष्णचंद्र रात समय श्रीरुक्मिणीजीके साथ विहार करतेथे और रुक्मिणीजी आनंदमें मग्न बैठी प्रीतमका चंद्रमुख निरख २ अपने नयन चकोरोंको सुख देतीथीं कि, इसबीच रात व्यतीतभई, चिड़ियां चुहचुहाई अंबरमें अरुणाई छाई; चकोरोंको वियोग हुआ और चकवा चकइयोंको संयोग; कमल बिकसे कुमुदिनी कुम्हिलाई चंद्रमा छबिक्षीण भया और सूर्यका तेज बढ़ा सब लोग जागे और अपना अपना गृहकाज करनेलगे. उसकाल रुक्मिणीजी तो हरिके समीपसे उठसोच संकोच लिये घरकी टहलटकोर करने लगीं औरश्रीकृष्णचंद्रजी देहशुद्धकर हाथमुख धोय स्नान कर जप ध्यान पूजा तर्पणसे निश्चित होय ब्राह्मणोंको नानाप्रकारके दान दे नित्यकर्मसे सुचित्त हो बालभोगपायपान लौंग,इलायची, जावित्री, जायफलके साथ खाय सुथरेवस्त्रआभूषणमँगवाय पहनशस्त्रलगायउग्रसेनके पासगये. पुनि जुहारकर यदुवंशियोंकी सभाके बीच आय रत्नसिंहासन पर विराजे.

महाराज ! उसीसमय एकब्राह्मणने जाय द्वारपालोंसे कहा कि तुम श्रीकृष्णचंद्रजीसे जाकर कहो कि, एक ब्राह्मण आपके दर्शनकी अभिलाषा किये द्वारपर खड़ाहै, जो प्रभुकी आज्ञापावे तो भीतर आवे. ब्राह्मणकी वातसुन द्वारपालोंने भगवान्‌से जाकर कहा कि, महराज ! एक ब्राह्मण आपके दर्शनकी अभिलाषा किये पवँरि पर खड़ा है, आज्ञा पावे तो आवे. हरि बोले अभी लाव. प्रभुके मुखसे बात निकलतेही द्वार-

पाल हाथोंहाथ ब्राह्मणको सन्मुख लेगये. विप्रको देखतेही श्रीकृष्णचंद्र सिंहासनसे उतर दंडवतकर आगू बढ़ हाथपकड़ उसे मंदिरमें लेगये और रत्नसिंहासनपर अपनेपास बिठाय पूंछनेलगे कि, कहो देवता आपका आना कहाँसे हुआ और किस कार्यके हेतु पधारे ? ब्राह्मण बोला कृपासिंधु ! दीनबंधु ! ! मैं मगधदेशसे आयाहूं और बीससहस्र राजाओंका संदेशा लायाहूं. प्रभु बोले-सो क्या ? ब्राह्मणने कहा-महाराज ! जिन बीससहस्र राजाओंको जरासंधने बलकर पकड़ हथकड़ियां बेड़ियां दे रक्खा है, तिन्होंने मेरे हाथ आपको विनतीकर यह संदेशा कहला भेजा है. दीनानाथ ! तुम्हारी सदा सर्वदाकी यह रीति है कि, जब जब असुर तुम्हारे भक्तोंको सताते हैं, तब तब तुम अवतार ले भक्तोंकी रक्षा करते हो. हे नाथ ! हिरण्यकशिपुसे प्रह्लादको छुड़वाया और गजको ग्राहसे, तैसेही दयाकर अब हमें इस महादुष्टके हाथसे छुड़वाइये, हम महाकष्टमें हैं तुम बिन और किसीकी सामर्थ्य नहीं, जो इस महाविपत्तिसे निकाले और हमारा उद्धार करे.

महाराज ! इतनी बातके सुनतेही प्रभु दयालुहो बोले कि, हे देवता ! तुम अब चिंता मतकरो उनकी चिंता मुझे है. इतनी बातके सुनतेही ब्राह्मण संतोषकर श्रीकृष्णचंद्रको आशीष देने लगा. इसबीच नारदजी आ उपस्थित हुए. प्रणामकर श्रीकृष्णचंद्रने उनसे पूंछा कि-नारदजी तुम सब ठौर जाते आते हो, कहो हमारे भाई युधिष्ठिर आदि पांचपांडव इन दिनोंमें कैसेहैं ? और क्या करते हैं ! बहुत दिनसे हमने उनके कुछ समाचार नहीं पाये इससे हमारा चित्त उन्हींमें लगा है. नारदजी बोले कि, महाराज ! मैं उन्हींके पाससे आता हूं, हैं तो कुशल क्षेमसे, पर इन दिनोंमें राजसूययज्ञ करनेके लिये निपट भावित होरहेहैं और घड़ी घड़ी यही कहते हैं कि बिना श्रीकृष्णचंद्रकी सहायके हमारा यज्ञ पूरा न होगा. इससे महाराज ! मेरा कहा मानिये तो.

पहले उनको यज्ञ सवाँरो । पाछे अनत कहूँ पगुधारो ॥

महाराज ! इतनी बात नारदजीके मुखसे सुनतेही प्रभुने उद्धवजीको बुलायके कहा कि-

उद्धव तुमहौ सखा हमारे। मन आँखहुते कबहुँ न न्यारे॥
दुहूँ ओरकी भारी भीर। पहले कहाँ चलें कहु वीर॥
उत राजा संकटमें भारी। दुख पावत किये आश हमारी॥
इत पांडव मिलि यज्ञ रचायो। ऐसेकहिप्रभुवचनसुनायो॥

इति श्रीलल्लूलालकृते प्रेमसागरे राजयुधिष्ठिरसंदेशो नामैकसप्ततितमोऽध्यायः॥ ७१॥

अध्याय ७२.

श्रीशुकदेवजी बोले कि, महाराज! पहले तो श्रीकृष्णचंद्रजीने उस ब्राह्मणको इतना कह बिदा किया. जो राजाओंका संदेशा लायाथा कि, देवता तुम हमारी ओरसे सब राजाओंसे कहो कि, तुम किसी बातकी चिंता मत करो हम वेगही आय तुम्हें छुड़ाते हैं. महाराज! यह बात कह श्रीकृष्णचंद्र ब्राह्मणको बिदाकर उद्धवजीको साथ ले राजा उग्रसेन शूरसेनकी सभामें गये और इन्होंने सब समाचार उनके आगे कहे वे सुन चुप हो रहे. इसमें उद्धवजी बोले कि, महाराज! ये दोनों काज कीजे. पहिले राजाओंको जरासंधसे छुड़ाय लीजे. पीछे चलकर यज्ञ सवाँरिये, क्योंकि राजसूययज्ञका काम बिन राजा और कोई नहीं करसकता और वहाँ बीससहस्र नृप इकट्ठे हैं उन्हें छुड़ावोगे तो वे सब गुणमान यज्ञकाज बिन बुलाये जाकर करेंगे. महाराज! और कोई दशोंदिशा जीत आवेगा तौभी इतने राजा इकट्ठे न पावेगा. इससे अब उत्तम यही है कि, हस्तिनापुरको

चलिये. पांडवोंसे मिल मताकर जो काम करना हो सो करिये. महाराज ! इतना कह पुनि उद्धवजी बोले कि, महाराजा ! राजाजरासंध बड़ा दाता और गो ब्राह्मणका मानने और पूजनेवाला है. जो कोई उससे जाकर जो माँगता है सो पाता है. याचक उसके यहाँसे विमुख नहीं आता है. वह झूँठ नहीं बोलता, जिससे वचनबंध होता है, उसको निबाहता है और दशसहस्र हाथीका बलरखता है. उसके बलके समान भीमसेनका बल है नाथ ! जो तुम चलो तो भीमसेनको साथ ले चलो, मेरी बुद्धिमें आताहै कि, उसकी मीचु भीमसेनके हाथ है. इतनी कथा कह श्रीशुकदेवजीने राजा परीक्षितसे कहा कि, राजा ! जब उद्धवजीने ये बातें कहीं तब श्रीकृष्णचंद्रजीने राजा उग्रसेन शूरसेनसे विदाहो सब यदुवंशियोंसे कहा कि, कटक साजो हम हस्तिनापुरको चलेंगे. बातके सुनते ही सब यदुवंशी सेना साज ले आये और प्रभुभी आठों पटरानियों समेत कटकके साथ होलिये. महाराज ! जिसकाल श्रीकृष्णचंद्र कुटुंबसहित सब सेना ले धौंसा दे द्वारकापुरीसे हस्तिनापुरको चले उससमयकी शोभा कुछ वर्णी नहीं जाती, आगे हाथियोंका कोट, बायें दाहिने रथ घोड़ोंकी ओट बीचमें रनिवास और पीछे सब सेना साथ लिये सबकी रक्षा किये श्रीकृष्णचंद्रजी चले जातेथे, जहाँ डेरा होताथा तहाँ कई योजनके बीच एक सुंदर सुहावना नगर बनजाताथा. देश देशके नरेश भय खाय आय भेंटकर भेंट धरतेथे और प्रभु उन्हें भयातुरदेख तिनका सब भाँति समाधान करतेथे. निदान, इसी धूमधामसे चले चले हरि सब समेत हस्तिनापुरके निकट पहुँचे. इसमें किसीने राजायुधिष्ठिरसे जाय कहा कि, महाराज ! कोई नृपति अतिसेना ले बड़ी भीड़भाड़से आपके देशपर चढ़ आया है. आप वेगही उसे देखिये, नहीं तो उसे यहाँ पहुँचा जानिये. महाराज ! इस बातके सुनतेही राजायुधिष्ठिरने अतिभयखाय अपने नकुल, सहदेव दोनों छोटे भाइयों को यह कह प्रभुके सन्मुख भेजा कि, तुम देख आवो कि, कौन राजा चढ़ आयाहै. राजाकी आज्ञा पातेही–

सहदेव नकुलदेखि फिरिआये। राजाको ये वचन सुनाये ॥

प्राणनाथ आयेहैं हरी। सुनि राजा चिंता परिहरी॥

आगे अति आनंदकर राजायुधिष्ठिरने भीम अर्जुनको बुलायके कहा कि, भाई! तुम चारों भाई आगूजाय श्रीकृष्णचंद्र आनंदकंदको ले आवो. महाराज! राजाकी आज्ञापाय और प्रभुका आनासुन वे चारों भाई अतिप्रसन्नहो भेंट पूजाकी सब सामा और बड़े बड़े पंडितोंको साथ ले ले बाजेगाजेसे प्रभुको लेने चले. निदान अतिआदर मानसे मिल वेदकी विधिसे भेंट पूजाकर ये चारों भाई श्रीकृष्णजीको सब समेत पाटंबरके पाँवड़े डालते चोवा, चंदन, गुलाबनीर छिड़कते चाँदी सोनेके फूल बरसाते धूपदीप नैवेद्य करके बाजेगाजेसे नगरमें ले आये. राजा युधिष्ठिरने प्रभुसे मिल अति सुख माना और अपना जीवन सफल जाना आगे बाहर भीतर सबने सबसे मिल यथायोग्य परस्पर सन्मान किया और नयनोंको सुख दिया घर बाहर सारे नगरमें आनंद होगया और श्रीकृष्णचंद्र वहाँ रह सबको सुख देने लगे.

इति श्रीलल्लूलालकृते प्रेमसागरे श्रीकृष्णहस्तिनापुरगमनो नाम द्विसप्ततितमोऽध्यायः॥ ७२॥

अध्याय ७३.

श्रीशुकदेवजी बोले कि, महाराज! एकदिन श्रीकृष्णचंद्र करुणासिंधु दीनबंधु भक्तहितकारी ऋषि मुनि ब्राह्मण क्षत्रियोंकी सभामें बैठेथे कि

राजायुधिष्ठिरने आय अति गिड़गिड़ाय विनतीकर हाथ जोड़ शिरनायके कहा कि, हे शिव-विरंचिके ईश! तुम्हारा ध्यान करतेहैं सदा सुर मुनि ऋषि योगीश. तुमहो अलख अगोचर अभेद, कोई नहीं जानता तुम्हारा भेद.

मुनियोगीश्वरइकचितध्यावत। तिनकेमनक्षनकभू न आवत ॥
हमको घरही दरशन देतु। मानत प्रेम भक्तके हेतु ॥
जैसी मोहन लीला करौ। काहूपै नहिं जाने परौ ॥
मायामें भूल्यो संसार। हमसों करत लोक व्यवहार ॥
जोतुमकोसुमिरतजगदीश। ताहिआपनोजानतईश ॥
अभिमानी ते हौ तुम दूर। सतवादीके जीवनमूर ॥

महाराज! इतना कह पुनि राजायुधिष्ठिर बोले कि, हे दीनदयालु! आपकी दयासे मेरे सब काम सिद्ध हुए. पर एकही अभिलाषा रही. प्रभु बोले, सो क्या? राजाने कहा कि मेरा यही मनोरथ है कि, राजसूययज्ञकर आपको अर्पणकरूं. तो भवसागर तरूं. इतनी बातके सुनतेही श्रीकृष्णचंद्र प्रसन्नहो बोले कि, राजा! यहतुमने भला मनोरथ किया. इससे सुर, नर, मुनि, ऋषि सब संतुष्ट होयँगे. यह सबको भावता है और इसका करना तुम्हें कुछ कठिन नहीं. क्योंकि तुम्हारे चारों भाई अर्जुन, भीम, नकुल, सहदेव बड़े प्रतापी और अतिबली हैं. संसारमें अब ऐसा कोई नहीं जो इनका सामना करे. पहले इन्हें भेजिये कि ये जाय दशोंदिशाके राजाओंको जीत अपने वश कर आवैं, पीछे आप निश्चिंताईसे यज्ञ कीजिये, राजा! प्रभुके मुखसे इतनी बात जो निकलीत्योंहीं राजायुधिष्ठिरने अपने चारों भाइयोंको बुलाय कटक दे चारोंको चारों ओर भेजदिया. दक्षिणको सहदेव पधारे, पश्चिमको नकुल सिधारे, उत्तरको अर्जुन धाये, पूर्वमें भीमसेन आये. आगे कितने एकदिनके बीच महाराज! वे चारों हरिप्रतापसे सारे द्वीप नौखंड जीत दशोंदिशाके राजाओंको वशकर अपने साथ ले आये. उसकाल राजायुधिष्ठिरने हाथजोड़ श्रीकृष्णचंद्रजीसे कहा कि, महाराज! आपकी सहायतासे यह काम तो हुआ अब क्या

आज्ञा होती है. इसमें उद्धवजी बोले कि धर्मावतार! सब देशके तो नरेश आये. पर अब एक मगधदेशका राजा जरासंधही आपके वशका नहीं और जबतक वह वश न होगा तबतक यज्ञ भी करना सफल न होगा. महाराज! जरासंध राजाबृहद्रथका बेटा महाबली बड़ा प्रतापी और अतिदानी धर्मात्माहै. हर किसीकी सामर्थ्य नहीं जो उसका सामना करे. इस बातको सुन जो राजायुधिष्ठिर उदास हुएतो श्रीकृष्ण-चंद्र बोले कि, महाराज! आप किसी बातकी चिंता मत कीजे. भाई भीम, अर्जुन समेत हमें आज्ञा दीजे, कैतो बलछलकर हम उसे पकड़ लावें, कै मार आवें. इस बातके सुनतेही राजायुधिष्ठिरने दोनों भाइयोंको आज्ञादी तद हरिने उन दोनोंको अपनें साथ ले मगधदेशकी बाट ली, आगे जाय पंथमें श्रीकृष्णजीने अर्जुन और भीमसेनसे कहा कि–

विप्ररूप ह्वै पुर पगधारिय। छल बलकर वैरीद्रुत मारिय॥

महाराज! इतनी बात कह श्रीकृष्णजीनें ब्राह्मणका वेष किया उनके साथ भीम अर्जुनने भी विप्र वेप लिया त्रिपुंड्र किये, पुस्तक काँखमें लिये, अतिउज्ज्वल स्वरूप, सुंदररूप, बनठनकर ऐसे चले कि, जैसे तीनों गुण सत, रज, तम देह धरे जाते होयँ; कै तीनों काल. निदान कितने एकदिनोंमें चले चले वे मगधदेशमें पहुँचे और दोपहरके समय राजाजरासंधकी पवँरिपर जा खड़े हुए. इनका वेष देख पौरियोंने अपने राजासे जा कहा कि; महाराज! तीन ब्राह्मण अतिथी बड़े तेजस्वी, महापंडित, अतिज्ञानी कुछ वाँछा किये द्वारपर खड़े हैं हमें क्या आज्ञा होती है.महाराज! बातके सुनतेही राजाजरासंध उठ आया और इन तीनोंसे प्रणाम कर अतिमान सन्मानसे घरमें लेगया. आगे वह इन्हें सिंहासनपर बैठाय आप सन्मुख हाथ जोड़ खड़ाहो देख देख सोच सोच बोला कि–

याचक जो परद्वारेआवै। बड़ोभूपसोउअतिथिकहावै॥
विप्र नहीं तुम योधा बली। बात न कछू कपट की भली॥
जोठगठगनरूपधरिआवै। ठगितो जाय भलो न कहावै॥

छिपे न क्षत्रिय कांति तिहारी । दीसत शूरवीर बलधारी ॥
तेजवंत तुम तीनों भाई । शिव विरंचि हरिसे वरदाई ॥
मैं जान्यो जियकर निर्मान । करो देव तुम आप बखान ॥
तुम्हरी इच्छा हो सो करौं । अपवाचाते नहिं मैं टरौं ॥
दानी मिथ्या कबहुं न भाषै । धन तन सर्वसु कछु न राखै ॥
माँगौ सोही देहौं दान । सुत सुंदरि सर्वस्व परान ॥

महाराज ! इस बातके सुनतेही श्रीकृष्णचंद्रजीने कहा कि, महाराज ! किसीसमय राजाहरिश्चंद्रजी बड़ा दानी होगया है कि, जिसकी कीर्ति संसारमें अबतक छाय रही है, सुनिये, एकसमय राजाहरिश्चंद्रके देशमें कालपड़ा और अन्न बिन सब लोग मरनेलगे, तब राजाने अपना सर्वस्व बेंच बेंच सबको खिलाया. जब देश नगर धन गया और निर्द्धन हो राजा रहा तब एकदिन साँझसमय यह तो कुटुंब समेत भूंखा बैठाथा कि, इसमें विश्वामित्रने आय इसका सत्त्वदेखनेको यह वचन कहा, महाराज ! मुझे धन दीजै. और कन्यादान कासा फल लीजै. इस वचनके सुनतेही जो कुछ घरमें था सो लादिया पुनि ऋषिने कहा महाराज ! मेरा काम इतनेमें न होगा फिर राजाने दास दासी बेंच धन लादिया और धन जन गवाँया निर्द्धन निर्जनहो स्त्री पुत्रको ले रहा. पुनि ऋषिने कहा कि, धर्ममूर्ति इतने धनसे मेरा काम न सरा अब मैं किसके पास जाय माँगूं मुझे तो संसारमें तुझसे अधिक धनवान् धर्मात्मा दानी कोई नहीं दृष्टि आताहै. एक श्वपचनाम चांडाल मायापात्र है. कहो तो उससे जा धन माँगूं पर इसमें भी लाज आती है कि; ऐसे दानी राजाको याँच उससे क्या याचूं, महाराज ! इतनी बातके सुनतेही राजाहरिश्चंद्र विश्वामित्रको साथ ले उस चांडालके घर गये और इन्होंने उससे कहा कि भाई ! तू हमें एकवर्षके लिये गहनेधर और इनका मनोरथ पूराकर श्वपच बोला-

कैसे टहल हमारी करिहौ । राजस तामस मनते हरिहौं ॥

तुम नृप महातेज बलधारी। नीचटहल है खरी हमारी॥

महाराज! हमारे तो यही काम है कि, श्मशानमें जाय चौकी दे और जो मृतक आवें उनसे कर ले पुनि हमारे घरबारकी चौकशी करे, तुमसे यह होसके तो मैं रुपये दूं और तुम्हैं बंधकररक्खूं, राजाने कहा अच्छा मैं वर्षभर तुम्हारी सेवाकरूंगा तुम इन्हें रुपये दो. महाराज! इतना वचन राजाके मुखसे निकलतेही श्वपचने विश्वामित्रको रुपये गिन दिये. वह ले अपने घर गये और राजा वहाँ रह उसकी सेवा करने लगा. कितनेएक दिन पीछे कालवशहो राजाहरिश्चंद्रका पुत्र रोहिताश्व मरगया. उस मृतकको ले रानी मरघटमें गई और ज्यों चिताबनाय अग्नि संस्कार करनेलगी त्योंहीं राजाने आय कर मांगा.

रानी बिलख कहै दुखपाय। देखौ समुझि हिये तुम राय॥

यह तुम्हारा पुत्र रोहिताश्व है और कर देनेको मेरे पास और तो कुछ नहीं एक यही चीर है जो पहरे खड़ीहूं. राजाने कहा मेरा इसमें कुछ वश नहीं, मैं स्वामीके कार्यपर खड़ा हूं, जो स्वामी का कार्य न करूं तो मेरा सत्यत्व जाय. महाराज! इस बातके सुनतेही रानीने ज्यों चीर उतारनेको आँचलपर हाथ डाला, त्योंहीं तीनोंलोक काँपउठे. वोहीं भगवान्‌ने राजा रानीका सत देख पहले एक विमान भेजदिया और पीछेसे आय दर्शन दे तीनोंको उद्धार किया. महाराज! जब बिधाताने रोहिताश्वको जिवाय राजा रानीकी पुत्रसमेत विमानपर बैठाय वैकुंठ जाने की आज्ञाकी, तब राजाहरिश्चंद्रने हाथजोड़ भगवान्‌से कहा कि, हे दीनबंधु! पतितपावन!! दीनदयालु!!! मैं श्वपच बिना वैकुंठधाममें कैसे जा करूं विश्राम. इतना वचन सुन और राजाके मनका अभिप्राय जान श्रीभक्तहितकारी करुणासिंधु हरिने श्वपचको भी राजा रानी और कुँवरके साथ तारा.

वहाँहरिश्चंद्रअमरपदपायो। यहाँयुगन युगयशचलिआयो॥

महाराज! यह प्रसंग जरासंधको सुनाय श्रीकृष्णचंद्रजीने कहा कि, महाराज! और सुनिये कि, रंतिदेवने ऐसा तप किया कि, अड़तालीस

दिन बिनपानी रहा और जब जल पीने बैठा तिसीसमय कोई प्यासा आया इसने वह नीर आप न पी उस तृषावंत को पिलाया उस जलदान से उसने मुक्तिपाई, पुनि राजाबलिने अतिदान किया तो पातालका राज्यलिया और अबतक उसका यश चला जाता है. फिर देखिये कि, उद्दालकमुनि छठे महीने अन्न खातेथे एकसमय खाती बिरियाँ उनके यहाँसे कोई अतिथि आया, उन्होंने अपना भोजन आप न खाय भूखेको खिलाया और उस क्षुधाहीमें मरे निदान. अन्नदान करनेसे वैकुंठको गये चढ़कर विमान. पुनि एक समय सब देवताओंको साथले राजा इंद्रने जाय दधीचिसे कहा कि महाराज! हम वृत्रासुरके हाथसे अब बच नहीं सकते जो आप अपना अस्थि हमें दीजे तो उसके हाथसे बचें नहीं तो बचना कठिन है. क्योंकि वह बिन तुम्हारे हाड़के आयुध किसी भाँति न मारा जायगा. महाराज! इतनीबातके सुनतेही दधीचिने शरीर गायसे चटवाय जाँघका हाड़ निकालदिया. देवताओंने ले उस अस्थिका वज्र बनाया और दधीचिने प्राण गवाँया और वैकुंठधाम पाया.

ऐसे दाता भये अपार। तिनको यश गावत संसार॥

राजा! यों कह श्रीकृष्णचंद्रजीने जरासंधसे कहा कि, महाराज! जैसे आगे और युगमें धर्मात्मा दानी राजा होगये हैं, तैसे अब इसकाल में तुम हो जो आगे उन्होंने याचकोंकी अभिलाषा पूरी की, तो तुम अब हमारी आशा पुजावो कहाहै–

दो०–याचक कहा न माँगई, दाता कहा न देय।
गृहसुतसुंदरिलोभनहिं, तनुशिरदे यशलेय॥

इतना वचन प्रभुके मुखसे निकलतेही जरासंध बोला कि, याचकको दाताकी पीर नहीं होती. तोभी दानी धीर अपनी प्रकृति नहीं छोड़ता, इसमें सुख पावै कै दुःख; हरिने कपटरूप धर वामन बन राजाबलिके पास जाय तीन पग पृथ्वी माँगी उससमय शुक्रने बलिको चिताया तौभी राजाने अपना प्रण न छोड़ा.

देह समेत मही तिन दई । ताकी जगमें कीरति भई ॥
याचकविष्णुकहायशलीन्हों । सर्वसुलै तोऊ हठ कीन्हों ॥

इससे तुम पहले अपना नाम भेद कहो, तद जो तुम माँगोगे सो मैं दूंगा, मैं मिथ्या नहीं भाषता. श्रीकृष्णचंद्र बोले कि, राजा हम क्षत्रियहैं वासुदेव हमारा नामहै तुम भलीभाँति हमें जानतेहो और ये दोनों अर्जुन भीम हमारे फुफेरे भाई हैं. हम युद्धकरनेको तुम्हारे पास आये हमसे युद्ध कीजै. हम यही तुमसे माँगने आये हैं, और कुछ नहीं माँगते. महाराज ! यहबातश्रीकृष्णचंद्रजीसे सुन जरासंध हँसकर बोला कि; मैं तुझसे क्या लडूं तू मेरे सोहींसे भागचुकाहै और अर्जुनसे भी न लडूंगा. क्योंकि यह विदर्भदेश गयाथा तहाँ नारीका वेष करके रहा, भीमसेनसे कहो तो इससे लडूं यह मेरे समानकाहै इससे लडनेमें मुझे कुछ लाज नहीं.

पहले तुम सव भोजन करो । पाछे मल्ल अखाडे लरो ॥
भोजनदे नृप बाहर आयो । भीमसेनतहँबोलिपठायो ॥
अपनी गदा ताहि तिनदई । गदा दूसरी आपुन लई ॥

दो०—जहाँ सभामंडल बन्यो, बैठे जाय मुरारि ।
जरासन्धअरुभीम तहँ, भये ठाढ इकबारि ॥

टापी शीश काछनी काछे । बने रूपनटुआकेआछे ॥

महाराज ! जिससमय दोनों वीर अखाडेमें खम ठोंक गदातान ध्वजा पलट झूमकर सन्मुख आये उसकाल ऐसे जनाये कि, मानो दो मतंग मतवाले उठधाये, आगे जरासंधने भीमसेनसे कहा कि. पहले गदा तू चला क्योंकि तू ब्राह्मणका वेष ले मेरी पौरीमें आया था इससे मैं पहले प्रहार न करूंगा. यह बात सुन भीमसेन बोले कि राजा ? हमसे तुमसे धर्म युद्ध है इससे यह ज्ञान न चाहिये जिसका जीचाहे सो पहले शस्त्र करे, महाराज ! उन दोनों बीरोंने परस्पर ये बातेंकर एक साथही गदा चलाई और युद्ध करने लगे.

ताकतघातैं अपनी अपनी । चोटकरतबाईंअरुदहिनी ॥
अँग बचाय उछरि पग धरैं । झपटहिं गदा गदासों लरैं ॥
खटपटचोट गदापटकारी । लागतशब्दकुलाहलभारी ॥

इतनी कथा सुनाय श्रीसुकदेवजीने राजापरीक्षितसे कहा कि, महाराज इसीभाँति दोनों बली दिनभर तो धर्म युद्ध करते और साँझको घर आय एक साथ भोजन कर विश्राम करते. ऐसे नित लडते २ सत्ताईस दिन भये- तब एकदिन उन दोनोंके लडनेके समय श्रीकृष्णचंद्रजीने मनहींमन विचारा कि, यह यों न मारा जायगा. क्योंकि जब यह जन्माथा तब दो फांक हो जन्माथा. उससमय जराराक्षसीने आय जरासंधका मुँह और नाक मूंदी तब दोनों फांक मिलगई. यह समाचार सुनि उसीस- मय उसके पिता बृहद्रथने ज्योतिपियोंको बुलायके पूछा किं, कहो ! इस लड़केका नाम क्या होगा? और कैसा होगा ज्योतिषियोंने कहा कि, महाराज ! इसका नाम जरासंध हुआ और यह बड़ा प्रतापी और अजर अमरहोगा. जबतक इसकी,संधि न फटेगी तबतक यह किसीसे न मारा जायगा. इतनाकह ज्योतषी बिदा हो चले गये, महाराज ! यह बात श्रीकृष्णचंद्रजीने मनहींमन सोच और अपना बलदे भीमसेनको तिनुका चीर सैनसे जताया कि, इसे इसरीतिसे चीर डालो. प्रभुके चितातेही भीमसेनने जरासंधको पकड़कर देमारा और एक जांघपर पाँव दे दूसरा पाँव हाथसे पकड यों चीर डालाकि, जैसे कोई दातून चीर डाले. जरा- संधके मरतेही सुर, किन्नर, गंधर्व ढोल दमामे भेर बजाय फूल बरसाय बरसाय जयजयकार करनेलगे और दुःख द्वंद्व जाय सारे नगरमें आनंद होगया. उसी बिरियां जरासंधकी नारी रोती २ श्रीकृष्णचंद्रजीके सन्मुख खडीहो हाथ जोड़ बोली कि, धन्यहै धन्यहैनाथ तुम्हैं जो ऐसा काम किया कि,जिसने सर्वस दिया तुमने उसका प्राण लिया.जो जन तुम्हैं सुत वित्त समर्पे देह, उससे तुम करते हो ऐसाही सनेह.

कपटरूपकरछलबलकियो । जगतआयतुमयहयशलियो ॥

महाराज ! जरासंधकी रानीने जब करुणाकर करुणानिधान के आगे

हाथ जोड़ विनतीकर यों कहा, तब प्रभुने दयालु हो पहले जरासंधकी क्रिया की; पीछे उसके सुत सहदेवको बुलाय राजतिलक दे सिंहासनपर बिठायके कहा कि; पुत्र! नीतिसहित राज्य कीजो और ऋषि, मुनि, गौ, ब्राह्मण प्रजाकी रक्षाकरो.

इति श्रीलल्लूलालकृते प्रेमसागरे जरासंधवधोनाम त्रिसप्ततितमोऽध्यायः ॥ ७३ ॥

अध्याय ७४.

श्रीशुकदेवजी बोले कि, महाराज! राजपाटपर बैठाय समझाय श्रीकृष्णचंद्रजीने सहदेवसे कहा कि राजा! अब तुम जाय उन राजाओं को ले आवो. जिन्हैं तुम्हारे पिताने पहाड़की कंदरामें मूंद रक्खा है, इतना वचन प्रभुके मुखसे सुनतेही जरासंधका पुत्र सहदेव बहुत-अच्छा कहकर कंदराके निकट जाय उसके मुखसे शिलाउठाय बीस सहस्र आठसौ राजाओंको निकाल हरिके सन्मुख ले आया, हथकड़ियाँ बेड़ियाँ पहने, गलेमें सांकल लोहेकी डाले, नख केश बढ़ाये, तनक्षीन, मनमलीन मैले वेष, सब राजा प्रभुके सन्मुख पाँति पाँति खड़े हो हाथ जोड़ विनतीकर बोले हे कृपासिंधु! दीनबंधु!! आपने भले समय आय हमारी सुध ली नहीं तो सब मर चुकेथे. तुम्हारा दर्शन पाया हमारे जीमें जी आया, पिछला दुःख सब गवांया. महाराज! इस बातके सुन-

तेही कृपासागर श्रीकृष्णचंद्रजीने जो उनपर दृष्टि की तो बातकी बातमें सहदेव उनको लेजाय हथकड़ी बेड़ी कटवाय क्षौर करवाय न्हिलवाय धुलवाय षट्रस भोजन खिलवाय वस्त्र आभूषण पहरवाय अस्त्र शस्त्र बँधवाय पुनि हरिके सोहीं लिवाय लाया. उसकाल श्रीकृष्णचंद्रजीने उन्हें चतुर्भुज हो शंख, चक्र, गदा, पद्म धारणकर दर्शन दिया. प्रभुका स्वरूप भूप देखतेही हाथ जोड़ बोले, हेनाथ! तुम संसारके कठिन बंधनसे जीवको छुड़ातेहो. तुम्हें जरासंधकी बंधसे हमें छुड़ाना क्या कठिन था? जैसे आपने कृपाकर हमें इस कठिनबंधसे छुड़ाया. तैसेही अब हमें गृहरूप कूपसे निकाल काम, क्रोध, लोभ, मोहसे छुड़ाइये. जो हम एकांत बैठ आपका ध्यान करें और भवसागरको तरें.

श्रीशुकदेवजी बोले कि, राजा जब सब राजाओंने ऐसे ज्ञान वैराग्यभरे वचन कहे तब श्रीकृष्णचंद्रजी प्रसन्नहो बोले कि, सुनो जिनके मनमें मेरी भक्ति है वे निःसंदेह भक्ति मुक्ति पावेंगे. बंध मोक्ष मनहीका कारणहै. जिनका मनस्थिर है, तिन्हें घर और वन समान है. तुम और किसी बातकी चिंता मतकरो आनंदसे घरमें बैठ नीतिसहित राज्य करो, प्रजाको पालो, गोब्राह्मणकी सेवामें रहो, झूँठ मत भाषो, काम, क्रोध, लोभ, अभिमान तजो, भाव भक्तिसे हरिको भजो. तुम निःसंदेह परमपदको पावोगे, संसारमें आय जिसने अभिमान किया, वह बहुत न जिया. देखो अभिमानने किसे न खोदिया.

सहसबाहुअतिबलीबखान्यो। परशुरामताकोबलभान्यो ॥
वैनरूप रावण हो भयो । गर्व आपने सो नशिगयो ॥
भौमासुर बाणासुर कंस । भये गर्व ते ते विध्वंस ॥
श्रीमदगर्व करौ जनि कोय। त्यागै सर्व सो निर्भयहोय ॥

इतना कह श्रीकृष्णचंद्रजीने सब राजाओंसे कहा कि, अब तुम अपने २ घर जावो. कुटुंबसे मिल अपना राजपाट सँभाल हमारे न पहुँचते हस्तिनापुरमें राजायुधिष्ठिरजीके यहाँ राजसूययज्ञमें शीघ्र आवो महाराज! इतना वचन श्रीकृष्णचंद्रजीके मुखसे निकलतेही सहदेवने सब

राजाओंको जानेका सामान जितना चाहिये उतना बातकी बातमें ला उपस्थित किया. प्रभुसे बिदाहो अपने देशोंको गये और श्रीकृष्णचंद्रजी भी सहदेवको साथ ले भीम अर्जुन सहित वहाँसे चले चले आनंद मंगलसे हस्तिनापुर आये. आगेप्रभुने राजायुधिष्ठिरकेपासजाय जरासंधके मारनेका समाचार और सब राजाओंके छुड़ानेका ब्योरा समेत कह सुनाया.

इतनी कथा कह श्रीशुकदेवजीने राजा परीक्षितसे कहा कि, महाराज! श्रीकृष्णचंद्र आनंदकंदजीके हस्तिनापुर पहुँचतेही वे सब राजा भी अपनी २ सेना ले भेंट सहित आन पहुँचे और राजायुधिष्ठिरसे भेंटकर भेंटदे श्रीकृष्णचंद्रजीकी आज्ञा ले हस्तिनापुरके चारों ओर जा उतारे और यज्ञकी टहलमें आ उपस्थित हुए.

इति श्रीलल्लूलालकृते प्रेमसागरे सर्वभूपतिहस्तिनापुरगमनो नाम चतुःसप्ततितमोऽध्यायः ॥ ७४ ॥

अध्याय ७५.

श्रीशुकदेवजी बोले कि राजा! जैसे यज्ञ राजायुधिष्ठिरने किया और शिशुपाल मारागया तैसे मैं सब कथा कहताहूं तुम चित्त दे सुनो. बीससहस्रआठसौ राजाओंके जातेही चारोंओरके जितने राजाथे क्या सूर्य-

वंशी क्या चंद्रवंशी जितने सब आय हस्तिनापुरमें उपस्थित हुए. उस समय श्रीकृष्णचंद्र और राजा युधिष्ठिरने मिलकर सब राजाओंका सब भाँति शिष्टाचार कर समाधान किया, और हरएकको एक एक काम यज्ञका सौंपा. आगे श्रीकृष्णचंद्रजीने राजा युधिष्ठिरसे कहा कि, महाराज! भीम, अर्जुन, नकुल, सहदेव सहित हम पाँचो भाई तो सब राजावोंको साथ ले ऊपरकी टहल करें और आप ऋषि मुनि ब्राह्मणोंको बुलाय यज्ञ आरंभ कीजै. महाराज! इतनीबातके सुनतेही राजा युधिष्ठिरने सबमुनि ब्राह्मणोंको बुलाकर पूंछा कि महाराज! जोजो वस्तु यज्ञमें चाहिये सो आज्ञा कीजै. महाराज! इस बातके कहतेही ऋषि, मुनि, ब्राह्मणोंने ग्रंथ देख देख यज्ञकी सामग्री सब एक पत्रपर लिखदी और राजाने वोहीं मँगवाय उनके आगे धरवादी ऋषि, मुनि, ब्राह्मणोंने मिल यज्ञकी वेदी रची चारों वेदके सब ऋषिमुनि ब्राह्मणवेदीके बीचआसन बिछाय २ जा बैठे पुनि शुचिहोय स्त्रीसहित गाँठ बाँध राजायुधिष्टिर भी जा बैठे और द्रोणाचार्य, कृपाचार्य, धृतराष्ट्र, दुर्योधन, शिशुपाल आदि जितने योद्धा और बड़े बड़े राजाथे- वेभी आन बैठे. ब्राह्मणों ने स्वस्तिवाचन गणेश पुजवाय कलश स्थापनकर ग्रह स्थापनकिये. राजाने भरद्वाज. गौतम, वशिष्ठ; विश्वामित्र वामदेव, पराशर, कश्यप, व्यासआदि बड़े बड़े ऋषि, मुनि, ब्राह्मणोंको वरण किया और उन्होने राजासे यज्ञको संकल्पकरवाय होमका आरंभ किया. महाराज! मंत्र पढ़ पढ़ ऋषि, मुनिब्राह्मणआहुति देने लगे और देवता प्रत्यक्ष हाथ बढ़ाय २ लेने. उससमय ब्राह्मण वेदपाठ करतेथे और सब राजा होमकी समग्री ला ला देतेथे. और राजायुधिष्ठिर होम करते, कि इसमें निर्द्वंद्व यज्ञ पूर्ण हुआ, राजाने पूर्णाहुतिदी उसकाल सुर, नर, मुनि सब राजाको धन्य धन्य कहने लगे और यक्ष, गंधर्व, किन्नर बाजन बजाय २ यश गाय गाय फूल बरसाने, इतनी कथा कह श्रीशुकदेवजीने राजापरीक्षितसे कहा कि महाराज! यज्ञसे निश्चितहो राजायुधिष्ठिरने सहदेवजीको बुलायके पूँछा कि-

पहिले पूजा काकी कीजै। अक्षत तिलक कौनको दीजै॥

कौन बड़ो देवनको ईश। ताहि पूजि हम नावैं शीश ॥

सहदेवजी बोले कि, महाराज! सब देवोंके देव हैं वासुदेव, कोई नहीं जानता इसका भेव, ये हैं ब्रह्मा, रुद्र, इंद्रके ईश इन्हींको पहले पूजि नवाइये शीश; जैसे तरुवरकी जड़में जल देनेसे सब शाखाहरी होतीहैं तैसेही हरिकी पूजा करनेसे सब देवता संतुष्ट होते हैं यही जगत् कर्ता हैं और यही उपजाते पालते मारते हैं. इनकी लीलाहै अनंत, कोई नहीं जानता इनका अंत; येही हैं प्रभु अलख, अगोचर, अविनाशी, इन्हींके चरणकमल सदा सेवती हैं कमला भई दासी, भक्तोंके हेतु बार बार लेतेहैं अवतार. तनुधर करते हैं लोकव्यवहार.

बंधु कहत घर बैठे आवैं। अपनी माया मोहिं भुलावैं ॥
महामोह हम प्रेम भुलाने। ईश्वरको भ्राता कर जाने ॥
इनसे बडो न दीसै कोई। पूजा प्रथम इन्हींकी होई ॥

महाराज! इस बातके सुनतेही सब ऋषि, मुनि और राजा बोल उठे कि, राजा! सहदेवजीने सत्य कहा. प्रथम पूजन योग्यहरिही हैं. तब तो राजायुधिष्ठिरने श्रीकृष्णचन्द्रजीकोसिंहासनपर बिठाय आठों पटरानियों समेत चंदन, अक्षत, पुष्प, धूप, दीप, नैवेद्य कर पूजाकी पुनि सब देवताओं, ऋषियों, मुनियों ब्राह्मणों और राजाओंकी पूजाकी. रंग रंगके जोड़े पहिनाये. चंदनकेशरकी खौरेंकी, फूलोंके हार पहराय सुगंध लगाय यथायोग्य राजाने सबकी मनुहार की. श्रीशुकदेवजी बोले कि राजा!

हरिपूजत सबको सुखभयो। शिशुपालको शीश भूनयो ॥

कितनी एकबेरतक तो वह शिर झुकाये मनहीमन कुछ सोच विचार करता रहा. निदान कालवशहो अति क्रोधकर सिंहासनसे उतर सभाके बीच. निस्संकोच निडर हो बोला कि, इससभामें धृतराष्ट्र, दुर्योधन, भीष्म, कर्ण, द्रोणाचार्य आदि सब बडे बडे ज्ञानी मानी हैं पर इससमय सबकी गति मति मारीगई बड़े बड़े मुनीश बैठे रहे और नंदगोपके सुतकी पूजा भई और कोई कुछ न बोला, जिसने ब्रजमें जन्म ले ग्वालबालोंकी जूँठी छाक खाई, तिसीकी इससभामें भई प्रभुताई बड़ाई.

ताहि बडो सबकहत अचेत । सुरपतिकी बलि कागहि देत ॥

जिसने गोपी और ग्वालोंसे स्नेह किया, इस सभामें तिसही को सबसे बड़ा साधु बनायदिया. जिसने दुग्ध दही मही माखन घर घर चुराय खाया, उसीका यश सबने मिल गाया. बाट घाटमें जिसने लिया दान तिसीका यहाँ हुआ सन्मान; परनारिनसे जिसने छलबलकर भोग किया सबने मताकर उसीको पहले तिलक दिया, ब्रजमेंसे इंद्रकी पूजा जिसने उठाई, और पर्वतकी पूजा ठहराई; पुनि पूजाकी सब सामग्री गिरिके निकट लिवाय लेजाय मिसकर आपही खाई, तोभी उसे लाज न आई. जिसकी जाति पाँति और माता पिता कुल धर्मका नहीं ठिकाना, तिसको अलख अविनाशी कर सबने माना.

इतनी कथा सुनाय श्रीशुकदेवजीने राजा परीक्षिसे कहा कि महाराज ! इसीभाँतिसे कालवशहो, राजा शिशुपाल अनेक २ प्रकारकी बुरी बातें श्रीकृष्णचन्द्रजीको कहताथा और श्रीकृष्ण सभाकेबीचसिंहासनपर बैठे सुन एक एक बातपर एक एकलकीर खैंचतेथे. इसबीच भीष्म, कर्ण, द्रोण, और बड़े बड़े राजा हरिनिंदा सुन अतिक्रोधकर बोले कि, अरे मूर्ख ! तू सभामें बैठा हमारे सन्मुख प्रभुकी निंदा करता है ? रे चांडाल ! चुपरह नहीं तो अभी पछाड़ मार डालते हैं. महाराज ! यह कह शस्त्र लेले सब राजा शिशुपालके मारनेको उठधाये. उससमय श्रीकृष्णचन्द्र आनंदकंदने सबको रोंककर कहा कि, तुम इसपर शस्त्र मतकरो खड़े खड़े देखो; यह आपसे आपही मरजाता है. मैं इसके सौ अपराध सहूंगा. क्योंकि मैंने वचनहारा है सौसे बढ़ती न सहूंगा. इसी लिये मैं रेखा काढ़ता जाताहूं. महाराज ! इतनी बातके सुनतेही सबने हाथजोड़ श्रीकृष्णचंद्रजीसे पूँछा कि; कृपानाथ ! इसका क्या भेद है ? जो आप इसके सौ अपराध क्षमा करियेगा, सो कृपाकर हमें समझाइये, जो हमारे मनका संदेह जाय. प्रभु बोले कि; जिससमय यह जन्माथा, तिससमय इसके तीन नेत्र और चार भुजा थीं. यह समाचार इसके पिता दमघोषने पाया ज्योतिषियों और बड़े बड़े पंडितोंको बुलायके पूंछाकि

यह लड़का कैसा हुआ. इसका विचारकर मुझे उत्तर दो. राजाकी बात सुनतेही पंडित और ज्योतिषियोंने शास्त्रको विचारके कहा कि महाराज! यह बड़ा बली और प्रतापी होगा और यह भी हमारे विचारमें आता है कि, जिसके मिलनेसे इसकी एक आँख और दो बाहु गिरपड़ेंगी यह उसीके हाथ माराजायगा. इतना सुन इसकी माँ महादेवी शूरसेनकी बेटी वसुदेवकी बहन हमारी फूफी अति उदास भई और आठ पहर पुत्रहीकी चितामें रहने लगी, कितने एक दिन पीछे एकसमय पुत्रको लिये पिताके घर मथुरा आई और इसे सबसे मिलाया. जब यह मुझसे मिला और इसकी एक आँख औरदो बाहु गिरपड़ी, तब फूफीने मुझे वचनबंध करके कहा कि, इसकी मौत तुम्हारे हाथ है, तुम इसे मत मारियो; मैं यह भीख तुमसे माँगतीहूं. मैंने कहा अच्छा, सौ अपराध हम इसके न गिनेंगे, इस उपरांत अपराध करेगा तो हनेंगे. हमसे यहवचन ले फूफी सबसे बिदाहो इतनाकह पुत्र सहित अपने घर गई कि,यह सौ अपराध क्यों करेगा, जो कृष्णके हाथ मरेगा.

महाराज ! इतनी कथा सुनाय श्रीकृष्णजीने सब राजाओंके मनका भ्रम मिटाय उन लकीरोंको गिना. जो एक एक अपराधपर खैंची थी गिनतेही सौसे बढ़तीहुई तभी प्रभुने सुदर्शनचक्रको आज्ञा दी, उसने झट शिशुपालका शिर काटडाला. उसके धड़से जो ज्योति निकली सो एक बेर तो आकाशको धाई, फिर आय सबके देखते श्रीकृष्णचंद्रके मुखमें समाई. यह चरित्र देख सुर, नर, मुनि जयजयकार करनेलगे और पुष्पवर्षावने. उसकाल श्रीमुरारी भक्तहितकारीने उसे तीसरी मुक्ति दी. और उसकी क्रिया की.

इतनी कथा सुन राजापरीक्षितने श्रीशुकदेवजीसे पूंछा कि, महाराज ! तीसरी मुक्ति प्रभुने किस भाँतिदी? सो मुझे समझायके कहिये. शुकदेवजी बोले कि, राजा ! एक बार यह हिरण्यकशिपु हुआ, तब प्रभुने नृसिंहअवतार ले तारा, दूसरी बेर रावण भया. तो हरिने रामावतार ले इसका उद्धार किया. अब तीसरी बिरियां यह है. इसीसे तीसरी मुक्ति

भई. इतना सुन राजाने मुनिसे कहा कि, महाराज! अब आगे कथा कहिये. श्रीशुकदेवजी बोले कि राजा! यज्ञके हो चुकतेही राजा युधिष्ठिर ने सब राजाओंको स्त्रीसहित वस्त्र पहराय ब्राह्मणोंको अनगिनत दान- दिये. देनेका काम यज्ञमें राजा दुर्योधनका था. तिसने द्वेषकर एककी ठौर अनेक दिये इसमें उसका यश हुआ तौभी वह प्रसन्न न हुआ इतनी कथा कह श्रीशुकदेवजीने राजापरीक्षितसे कहा कि, महाराज यज्ञके पूर्ण होतेही श्रीकृष्णचंद्रजी राजा युधिष्ठिरसे विदा हो सर्व सेना ले कुटुंब सहित हस्तिनापुरसे चले चले द्वारकापुरी पधारे. प्रभुके पहुँ- चतेही घरघर मंगलचार होनेलगे और सारे नगरमें आनंद होगया.

इति श्रीलल्लूलालकृते प्रेमसागरे राजसूययज्ञशिशुपालमोक्षोनाम पंचसप्ततितमोऽध्यायः ॥ ७५ ॥

अध्याय ७६.

राजा परीक्षित बोले कि, महाराज! राजसूय यज्ञ होनेसे सब कोई प्रसन्न हुए. दुर्योधन अप्रसन्न हुआ इसका कारण क्या है? सो तुम मुझे

समझायके कहो, जो मेरे मनका भ्रम जाय. श्रीशुकदेवजी बोले कि, राजा! तुम्हारे पितामह बड़े ज्ञानी थे, उन्होंने यज्ञमें जिन्हें जैसा देखा तिन्हें तैसा काम दिया. भीमको भोजन करवानेका अधिकार दिया, पूजापर सहदेवको रक्खा. धन लानेको नकुल रहे. सेवा करनेपर अर्जुन ठहरे. श्रीकृष्णचंद्रजीने पाँवधोने और जूंठी पत्तल उठानेका काम लिया.दुर्योधनको द्रव्य बाँटनेका काम दिया और सब जितने राजाथे, तिन्होंने एक एक काज बाँटलिया. महाराज! सब तो निष्कपट यज्ञकी टहल करतेथे पर एक राजादुर्योधनही कपट सहित काम करताथा, इससे वह एककी ठौर अनेक उठाताथा. निज मनमें यह बात ठानके कि इनका भंडार टूटै तो अप्रतिष्ठा होय, पर भगवत्कृपासे अप्रतिष्ठा न होती बल्कि यश होताथा. इसलिये वह अप्रसन्न होता था और वह यह भी न जानताथा कि मेरे हाथमें चक्रहै एकरुपया दूंगा तो चार इकट्ठे होयँगे. इतनी कथा कह श्रीशुकदेवजी बोले कि, राजा! अब आगे कथा सुनिये. श्रीकृष्णचंद्रजीके पधारतेही राजा युधिष्ठिरने सब राजाओंको खिलाय पिलाय पहराय अति शिष्टाचारकर बिदा किया. वे दल साज साज अपने २ देशको सिधारे. आगे राजायुधिष्ठिर पांडव और कौरवोंको ले गंगास्नानको बाजे गाजेसे गये. नीरमें पैठ उनके साथ सबने स्नान किया. पुनि न्हाय न्हिलाय संध्या पूजनसे निश्चितहोय वस्त्र आभूषण पहन सबको साथलिये राजा युधिष्ठिर कहाँ आते हैं कि, जहाँ मय दैत्यने अतिसुंदर सुवर्णके रत्नजड़ित मंदिर बनायेथे. महाराज! राजा युधिष्ठिर सिंहासनपर विराजे उसकाल गंधर्व गुणगातेथे, चारण बंदीजन यश बखानतेथे. सभाके बीच पातुर नृत्य करती थी. घर बाहरमें मंगलीलोग मंगलाचार करतेथे और राजायुधिष्ठिरकी सभा इंद्रकीसी सभा होरही थी. इसबीच राजायुधिष्ठिरके आनेके समाचार पाय राजादुर्योधन भी कपटस्नेह किये वहाँ मिलनेको बड़ी धूमधामसे आया.

इतनी कथा कह श्रीशुकदेवजीने राजापरीक्षितसे कहाकि, महाराज! वहाँ मयने चौक बीच ऐसा काम कियाथा कि, जो कोई जाताथा तिसे

थलमें जलका भ्रम होताथा और जलमें थलका. महाराज ! जो राजादुर्योधन मंदिरमें पैठा तो उसे थल देख जलका भ्रम हुआ उसने वस्त्र समेट उठायलिये. पुनि आगेबढ़ जल देख उसे स्थलका धोखा हुआ, जो पाँव बढ़ाया तो उसके कपड़े भीजे. यह चरित्रदेख सब सभाके लोग खिलखिला उठे, राजा युधिष्ठिरने हँसीको रोक मुँह फेरलिया महाराज ! सबके हँस पड़तेही राजा दुर्योधन अतिलज्जितहो महाक्रोधकर उलटा फिर गया, सभामें बैठ कहने लगा कि, कृष्णका बल पाय युधिष्ठिरको अति अभिमान हुआहै. आज सभामें बैठ मेरी हँसी की इसका पलटा मैं लूं और उसका गर्व तोड़ूं तो मेरा नाम दुर्योधन, नहीं तो नहीं.

इति श्रीलल्लूलालकृते प्रेमसागरे दुर्योधनमानमर्दनो नाम षट्सप्ततितमोऽध्यायः ॥ ७६ ॥

अध्याय ७७.

श्रीशुकदेवजी बोले कि, महाराज ! जिससमय श्रीकृष्णचंद्र और बलरामजी हस्तिनापुरमें थे तिसीसमय शाल्वनाम दैत्य शिशुपालका साथी जो रुक्मिणीके व्याहमें श्रीकृष्णचंद्रजीके हाथकी मारखाय

भागा था, सो मनहींमन इतनाकह लगा महादेवजीकी तपस्याकरने कि, अब मैं अपना बैर यदुवंशियोंसे लूंगा.

इंद्रियजीतिसबैवशकीन्हीं। भूंखप्यासमबऋतुसहलीन्हीं॥
ऐसी विधि तप लाग्यो करन। सुमिरै महादेवके चरन॥
नितउठि मुठी रेत लैखाय। करैकठिनतपशिवमनलाय॥
वर्ष एक ऐसी विधि गयो। तबहीं महादेव वर दयो॥

कि आजसे तू अजर अमर हुआ और एक रथ मायाका तुझे मयदैत्य बनादेगा.तू जहाँ जाना चाहेगा, वह तुझे तहाँ लेजायगा, विमानकी त्रिलोकीमें मेरे वरसे सब ठौर जानेकी सामर्थ्य होगी. महाराज! सदाशिवने जो वरदिया तो एकरथ आय उसके सन्मुख खड़ा हुआ.वह शिवजीको प्रणाम कर रथपर चढ़ द्वारकापुरीको घर धमका. वहाँ जाय नगरनिवासियोंको अनेक अनेक भाँतिकी पीड़ा उपजाने लगा. कभी अग्नि बरसाताथा, कभी जल, कभी वृक्ष उखाड़ नगरपर फेंकताथा; कभी पहाड़, उसके डरसे सब नगरनिवासी अतिभयमानहो भाग राजा उग्रसेनके पास जा पुकारे कि, महाराज की दुहाई, दैत्यने आय नगरमें अति धूम मचाई; जो इसीभाँति उपाधि करेगा तो कोई जीता न रहेगा. महाराज! इतनी बातके सुनतेही राजा उग्रसेनने प्रद्युम्नजी और सांबको बुलायके कहा कि, देखो हरिका पीछा ताक यह असुर आयाहै, प्रजाको दुःखदेने, तुम इसका कुछ उपाय करो. राजाकी आज्ञापाय प्रद्युम्नजी सब कटकले रथपर बैठ नगरके बाहर लड़नेको जा उपस्थित हुए और सांबको भयातुरदेख बोले कि, तुम किसी बातकी चिंता मत करो. मैं हरिप्रतापसे इस असुरको बातकी बातमें मारलेताहूं. इतना वचन कह प्रद्युम्नजी सेना ले शस्त्र पकड़ जो उसके सन्मुख हुए तो उसने ऐसी माया की कि, दिनकी महाअँधेरी रात होगई. प्रद्युम्नजीने तेज बाण चलाय यों महाअंधकारको दूर किया ज्यों सूर्यका तेज होके दूर करे.पुनि कई एक बाण उन्होंने ऐसे मारे कि, उसका रथ अस्तव्यस्त होगया और वह घबराकर कभी भागजाताथा,

कभी आय अनेक अनेक राक्षसी माया. उपजाय लड़ताथा और प्रभुकी प्रजाको अतिदुःख देताथा.

इतनी कथा सुनाय श्रीशुकदेवजीने राजा परीक्षितसे कहा कि, महाराज! दोनोंओरसे महायुद्ध होताही था कि, इसबीच एकाएकी आय शाल्वदैत्यके मंत्री द्युमानने प्रद्युम्नजीकी छातीमें एक गदा ऐसी मारी कि, ये मूर्च्छाखाय गिरे. इनके गिरतेही वह किलकारी मार के पुकारा कि, मैंने श्रीकृष्णजीके पुत्र प्रद्युम्नजी को मारा. महाराज! यादव तो राक्षसोंसे महायुद्ध कर रहे थे. उसीसमय प्रद्युम्नजीको मूर्च्छित देख दारुक सारथीका बेटा रथमें डाल रणसे भागा और नगरमें ले आया. चैतन्यहोतेही प्रद्युम्नजीने अतिक्रोधकर सूतसे कहा कि—

ऐसो नाहिं उचितरह तोहिं। जानि अचेत भजायो मोहिं ॥
रणतजिके तू ल्यायो धाम। यहतो नहीं शूरको काम ॥
यदुकुलमें ऐसो नहिं कोय। तजिके खेत जो भाग्यो होय ॥

क्या तैंने कभी मुझे भागता देखाथा? जो तू आज रणसे भगायलाया यह बात जो सुनेगा सो मेरी हँसी और निंदा करेगा. तैंने यह काम भला न किया, जो बिनकाम कलंकका टीका लगा दिया. महाराज! इतनी बातके सुनतेही सारथी रथसे उतर सन्मुख खड़ाहो हाथजोड़ शिरनाय बोला कि, हे प्रभो! तुम सब नीति जानते हो ऐसा संसारमें कोई धर्म नहीं, जिसे तुम नहीं जानते, कहा है—

रथीशूर जो घायल परै। ताहि सारथी लै नीकरै ॥
जो सारथी परै खा घाय। ताहि बचाय रथी लैजाय ॥
लागीप्रबलगदाअति भारी। मुर्च्छितहैसुधिदेहबिसारी ॥
तबहों रणते लै नीसरो। स्वामि द्रोह अपयश ते डरो ॥
घरी एक लीन्हों विश्राम। अब चलकर कीजे संग्राम ॥
धर्मनीति तुम सकल जानिये। जगउपहासनमनआनिये ॥
अब तुमसबहीकोवधकरिहो। मायामयदानवकीहरिहो ॥

महाराज! ऐसेकह सूत प्रद्युम्नजीकोजलके निकट लेगया वहाँ जाय उन्होंने मुख हाथ पांव धोय सावधानहो कवच टोप पहन धनुष बाण सँभाल सारथीसे कहा भला जो भया सो भया पर तू अब मुझे वहाँ लेचल. जहाँ द्युमान् यदुवंशियोंसे युद्ध कररहा है, बातके सुनतेही सारथी बातकी बातमें रथ वहाँ लेगया. जहाँ वह लड़ रहाथा.जातेही इन्होंने ललकारकर कहा कि इधर उधर क्या लड़ताहै. आ मेरे सन्मुख हो जो तुझे शिशुपालके पास भेजूं यह वचन सुनतेही वह जो प्रद्युम्नजीपर आय टूटा तो कई एक बाणमार इन्होंने उसे मारगिराया और सांबने भी असुरदल काट काट समुद्रमें पाट डुबाया.

इतनी कथा कह श्रीशुकदेवजी बोले कि महाराज! जब असुर दलसे युद्ध करते २ द्वारकापुरीमें सब यदुवंशियोंको सत्ताईस दिन हुए,तब अंतर्यामी श्रीकृष्णचन्द्रजीने जब हस्तिनापुरमें थे बैठे बैठे द्वारकाकी दशा देख देख राजा युधिष्ठिरसे कहा कि,महाराज! मैंने रात्रिस्वप्नमें देखा कि, द्वारकामें महाउपद्रव होरहाहै और सब यदुवंशी अतिदुःखित हैं इससे अब आप आज्ञा दो तो हम द्वारकाको प्रस्थान करैं. यह बात सुन राजा युधिष्ठिरने हाथ जोड़कर कहा कि जो प्रभुकी इच्छा. इतना वचन राजा युधिष्ठिरके मुखसे निकलतेही श्रीकृष्ण और बलराम सबसे बिदा हो जो पुरके बारह निकले तो क्या देखते हैं कि, बाईं ओर एक हरिणी दौड़ी जातीहै और सोहीं श्वान खड़ा शिर झाड़ताहै. यह अशकुन देख हरिने बलरामजीसे कहा कि, भाई! तुम सबको साथ ले पीछेसे आवो. मैं आगे चलताहूं. राजा! भाईसे यों कह श्रीकृष्णचंद्रजी आगे जाय रणभूमि क्या देखते हैं कि, असुर यदुवंशियोंको चारोंओरसे वड़ीमार माररहे हैं और वे निपट घबराय घबराय शस्त्र चलाय रहेहैं. यह चरित्र देख हरि जो वहाँ खडेहो कुछ भावित हुए तो पीछेसे बलदेवजी भी जा पहुँचे उस काल श्रीकृष्णचंद्रजीने बलरामजीसे कहा कि भाई! तुम जाय नगर और प्रजाकी रक्षा करो; मैं इन्हें मार चला आता हूं. प्रभुकी आज्ञा पाय बलदेवजी तो पुरीमें पधारे और आप हरि वहाँ रणमें गये. जहाँ प्रद्युम्नजी

शाल्वसे युद्ध कररहेथे. यदुपतिके आतेही शंखध्वनि हुई और सबने जाना कि श्रीकृष्णचंद्र आये. महाराज ! प्रभुके जातेही शाल्व अपना रथ उड़ाय आकाशमें लेगया और वहाँसे अग्निसम बाण वर्षाने लगा. उससमय श्रीकृष्णचंद्रजीने सोलह बाणगिनकर ऐसे मारे कि, उसका रथ और सारथी उड़गया और वह तड़फड़ाय नीचे गिरा; गिरतेही सँभल कर एक बाण उसने हरिकी वामभुजामें मारा और यों पुकारा कि, कृष्ण खड़ारह, मैं युद्धकर तेरा बल देखताहूं तैंने तो शंखासुर, भौमासुर और शिशुपाल आदि बड़े बड़े बलवान् योद्धा छल बल करके मारे हैं. पर अब मेरे हाथसे तेरा बचना कठिन है.

मोसों तोहिंपरयो अबकाम । कपटछाँड़ि कीजोसंग्राम ॥
कंसासुर भौमासुर अरी । तेरो मग देखतहैं हरी ॥
पठऊँ तहाँ बहुरि नहिं आवै । भेजे तुम्हहिं बड़ाई पावै ॥

यह बात सुन जो श्रीकृष्णजीने इतना कहा कि, रे मूर्ख अभिमानी कायर क्रूर क्षत्रिय जो हैं गंभीर शूर धीर, वे पहले किसीसे बड़ा बोल नहीं बोलते, इतना सुन उसने दौड़कर हरिपर एक गदा अतिक्रोधकर चलाई, सो प्रभुने सहजस्वभावही काट गिराई; पुनि श्रीकृष्णचंद्रजीने उसके एक गदा मारी वह गदा खाय मायाकी ओटमें जाय दो घड़ी मूर्च्छित हुआ फिर कपटरूप बनाय प्रभुके सन्मुख आय बोला-

दो०-माय तिहारी देवकी, पठयो म्वहिं अकुलाय ।
शत्रुशाल्व वसुदेवको, पकरे लीन्हें जाय ॥

महाराज ! वह असुर इतना वचन सुनाय, वहाँसे जाय, माया का वसुदेव बनाय, बाँधलाया श्रीकृष्णचंद्रके सोहीं आय बोला रे कृष्ण ! देख मैं तेरे पिताको बाँधलाया और अब इसका शिर काट सब यदुवंशियोंको मार समुद्रमें डालूंगा. पीछे तुझे मार एकछत्र राज्यकरूंगा महाराज ! ऐसे कह उसने मायाके वसुदेवका शिर श्रीकृष्णजीके देखते २ काटडाला और बरछीके फलपर रख सबको दिखाया. यह मायाकाचरित्र देख पहले तो प्रभुको मूर्च्छा आई पुनि देह सँभाल मनहीं मन कहनेलगे

कि यह क्योंकर हुआ ? जो यह वसुदेवजी को बलरामजीके रहते द्वार-कासे पकड़लाया क्या यह उनसे भी बली है; जो उनके सन्मुखसे वसुदे-वजीको ले निकल आया ? महाराज ! इसीभाँतिकी अनेक अनेक बातें कितनी एक बेर लग आसुरीमायामें आय प्रभुने कीं और महाभावित रहे, निदान ध्यानकर प्रभुने देखा तो सब आसुरीमायाकी छायाका भेद पाया. तब तो श्रीकृष्णचंद्रजीने उसे ललकारा. प्रभुकी ललकार सुन वह आकाशको गया और लगा वहांसे प्रभुपर शस्त्र चलाने; इसबीच श्रीकृष्ण-चंद्रजीने कई एक बाण ऐसे मारे कि, वह रथससेत समुद्रमें गिरा; गिर-तेही सँभल गदा ले प्रभुपर झपटा. तब तो हरिने उसे अति क्रोधकर सुदर्शनचक्रसे मारगिराया. ऐसे कि, जैसे सुरपतिने वृत्रासुरको मारगिरा-या था. महाराज ! उसके गिरतेही उसके शीशकी मणि निकल भूमि-पर गिरी और ज्योति श्रीकृष्णचंद्रजीके मुखमें समाई.

इति श्रीलल्लूलालकृते प्रेमसागरे शाल्वदैत्यवधो नामसप्तसप्ततितमोऽध्यायः ७७॥

अध्याय ७८.

श्रीशुकदेवजी बोले कि, राजा ! अब मैं शिशुपालके भाई दंतवक्र और विदूरथकी कथा कहताहूं कि, जैसे वे मारेगये, जबसे शिशुपाल मारागया तबसे वे दोनों श्रीकृष्णचंद्रजीसे अपने भाईका पलटा लेनेंका विचारकिया करतेथे. निदान शाल्व और द्युमानके मरतेही अपना सब कटक ले

द्वारकापुरीपर चढ़आये और चारोंओर से घेर लगे अनेक अनेक प्रकारके यंत्र और शस्त्र चलाने.

परो नगर कोलाहल भारी । सुनि पुकार रथ चढ़े मुरारी ॥

आगे श्रीकृष्णचंद्रजी नगरके बाहरजाय वहाँ खड़े हुए कि, जहाँ अति कोपकिये शस्त्रलिये वे दोनों असुर लड़नेको उपस्थित थे. प्रभुको देखतेही दंतवक्र महा अभिमानकर बोला कि रे कृष्ण ! तू पहले अपना शस्त्र चलायले पीछे मैं तुझे मारूंगा. इतनी बात मैंने इसलिये तुझे कही कि, मरते समय तेरे मनमें यह अभिलाषा न रहे कि, मैंने दंतवक्रपर शस्त्र न किया, तूने तो बड़े बड़े बली मारे हैं, पर अब मेरे हाथसे जीता न बचेगा. महाराज ! ऐसे कितनेएक दुष्ट वचन कह दंतवक्रने प्रभुपर गदा चलाई, सो हरिने सहजही काट गिराई, पुनि दूसरी गदाले हरिसे महायुद्ध करनेलगा. तब तो भगवान्ने उसे मारगिराया और उसका जी निकलप्रभुके मुखमें समाया. आगे दंतवक्रका मरना देख विदूरथ ज्यों युद्ध करनेको चढ़आया, त्योंहीं श्रीकृष्णजी सुदर्शनचक्र चलाया, उसने विदूरथका शिर मुकुट कुंडल समेत काट गिराया, पुनि सब असुरदलको मारभगाया; उसकाल—

फूले देव पुष्प वर्षावें । किन्नर चारण हरियश गावें ॥
सिद्धसाध्यविद्याधर सारे । जय जय चढे विमान पुकारे ॥

पुनि सब बोले कि, महाराज ! आपकी लीला अपरंपार है, कोई इसका भेद नहीं जानता, प्रथम हिरण्यकशिपु और हिरण्याक्ष भये, पीछे रावण और कुम्भकर्ण; अब ये दंतवक्र शिशुपाल हो आये. तुमने तीनों बेर इन्हें मारा और परममुक्ति दी. इससे तुम्हारी गति कुछ किसीसे जानी नहीं जाती. महाराज ! इतनाकह देवता तो प्रभुको प्रणामकर चलेगये और हरि बलरामजीसे कहनेलगे कि, भाई ! कौरव और पांडवोंसे हुई लड़ाई अब क्या करें ? बलदेवजी बोले कृपानिधान ! कृपाकर आप हस्तिनापुरको पधारिये, तीर्थयात्राकर पीछेसे मैंभी आताहूं इतनी कथा कह श्रीशुकदेवजी बोले कि, महाराज ! यह वचन सुन श्रीकृष्णचंद्रजी तो वहाँसे

कुरुक्षेत्रमें पधारे. जहाँ कौरव पांडव महाभारत युद्ध करतेथे और बलरामजी तीर्थयात्राको निकले. आगे सब तीर्थ करते २ बलदेवजी नैमिषारण्यमें पहुँचे. तो वहाँ क्या देखते हैं कि, एक ओरऋषि मुनि यज्ञ रच रहे हैं और एक ओर ऋषि मुनिकी सभामें सिंहासनपर बैठे सूतजी कथा बाँच रहे हैं इनको देखतेही शौनकादिक सब मुनि ऋषियोंने उठकर प्रणाम किया और सूत सिंहासनपर गद्दी लगाय बैठा देखता रहा. महाराज ! सूतके न उठतेही बलरामजीने शौनकादिक सब ऋषि मुनियोंसे कहा कि, इस मूर्खको किसने वक्ता किया और व्यास आसन दिया ? वक्ता चाहिये भक्तिमंत विवेकी और ज्ञानी, यह है गुणहीन कृपण और अति अभिमानी; पुनि चाहिये निर्लोभी और परमार्थी. यह है महालोभी और अपस्वार्थी; ज्ञानहीन अविवेकीको यह व्यासगद्दी फबती नहीं. इससे मारें तो क्या ? पर यहाँसे निकाल देना चाहिये. इस बातके सुनतेही शौनकादिक बड़े बड़े मुनि ऋषि अति विनती कर बोले कि, महाराज ! तुम हो वीर धीर सकल धर्म नीतिके जाननेवाले, यह है कायर अधीर अविवेकी अभिमानी अज्ञान;इसका अपराध क्षमा कीजे क्योंकि, ये व्यास गद्दीपर बैठा है और ब्रह्मयज्ञ कर्मके लिये इसे यहां स्थापित कियाहै.

आसनगर्वमूढमनधरयो । उठिप्रणामतुमको नहिं करयो ॥
यही नाथ याको अपराध । परी चूकहै तो यहि साध ॥
सूतहि मारे पातक होय । जगमें भलो कहै नहिं कोय ॥
निष्फलवचननजायतिहारो। यहतुमनिजमनमाहिंविचारो॥

महाराज ! इतनी बातके सुनतेही बलरामजीने एक कुश उठाय सहज स्वभाव सूतको मारा, उसके लगतेही वह मरगया. यह चरित्र देख शौनकादि मुनि ऋषि हाहाकार कर अति उदासहो बोले कि,महाराज ! जो बात होनीथी सो तो हुई पर अब कृपाकर हमारी चिंता मेटिये. प्रभु बोले तुम्हें किस बातकी इच्छा है ? सो तुम कहो, हम पूरी करैं. मुनियोंने कहा, महाराज ! हमारे यज्ञ करनेमें किसी बातका विघ्न न हो, यही हमारी वासना है, सो आप पूरी कीजे और जगत्में यश लीजै. इतना

वचन मुनियोंके मुखसे निकलतेही अंतर्यामी बलरामजीने सूतके पुत्रको बुलाय व्यासगद्दीपर बैठायके कहा कि, यह अपने बापसे अधिकवक्ताहोगा और मैंने इसे अमरपद दे चिरंजीव किया. अब तुम निश्चिंताईसे यज्ञकरो.

इति श्रीलल्लूलालकृते प्रेमसागरे सूतवधोनाम अष्टसप्ततितमोऽध्यायः॥७८॥

अध्याय ७९.

श्रीशुकदेवजी बोले कि, महाराज! बलरामजीकी आज्ञापाय शौनकादिक सब ऋषि मुनि अतिप्रसन्नहो यज्ञ करने लगे, तो इल्वलका बेटा आय महामेघ कर बादल गर्ज बड़ी भयंकर अतिकाली आँधी चलाय लगा आकाशसे रुधिर और मल मूत्र वर्षाने, अनेक अनेक उपद्रव मचाने महाराज! दैत्यकी यह अनीति देख बलदेवजीने हल मूसलका आवाहन किया. वे आय उपस्थित हुए. पुनि महाक्रोधकर प्रभुजीने बल्वलको हलसे खैंच एक मुसल उसके शिरपर ऐसा मारा कि-

फूट्यो मस्तक छूटे प्रान। रुधिर प्रवाह भयो तिहिथान॥
करभुज डारि परयो विकरार। निकरे लोचन रातेवार॥

बल्वलके मरतेही सब मुनियोंने अतिसंतुष्टहो बलदेवजीकी पूजा की और बहुतसी स्तुतिकर भेंट दी. फिर बलराम सुखधाम वहाँसे विदाहो तीर्थयात्राको निकले तो महाराज! सब तीर्थकर पृथ्वीकी प्रदक्षिणा करते २ वहाँ पहुँचे कि, जहाँ कुरुक्षेत्रमें दुर्योधन और भीमसेन महायुद्ध करतेथे और पांडवों समेत श्रीकृष्णचंद्र और बड़े बड़े राजा खड़े देखतेथे बलरामजीके जातेही दोनों वीरोंने प्रणाम किया एकने गुरु जान, दूसरेने बन्धु मान; महाराज! उन दोनोंको लड़ता देख बलरामजी बोले-

सुभटसमानप्रबलदोउवीर। अब संग्राम तजहु तुम धीर॥
कुरु पांडवको राखहु वंश। बंधुमित्र सब भये विध्वंश॥
दोऊ सुनि बोले शिरनाय। अब रणते उतरयो नहिं जाय॥

पुनि दुर्योधन बोला कि, गुरुदेव! मैं आपके सन्मुख झूंठ नहीं भाषता; आप मेरी बात मन दे सुनिये. यह जो महाभारत युद्ध होता है

और लोग मारेगये और मारे जाते हैं और मारे जायँगे, सोतुम्हारे भाई श्रीकृष्णचंद्रजीके मतसे, पांडव केवल श्रीकृष्णजीके बलसे लड़तेहैं नहीं तो इनकी क्या सामर्थ्य थी? जो ये कौरवोंसे लड़ते ये बापुरे तो हरिके वश ऐसे होरहे हैं कि, जैसे काठकी पुतली नटुएके वश होय, जिधर वह चलावे तिधरचले; उनको यह उचित न था. जो पाँडवोंकी सहायता कर हमसे इतनाद्वेष करें, दुःशासनकी भीमसेनसे भुजा उखड़ाई और मेरी जांघमें गदा लगवाई तुमसे अधिक हम क्या कहेंगे? इस समय—

जो हरि करें सोइ अब होय। या बातैं जानैं सब कोय॥

यह वचन दुर्योधनके मुखसे निकलतेही, इतना कह बलरामजी श्रीकृष्णचंद्रजीके निकट आये, कि तुम भी उपाधि करनेमें कुछ घाट नहीं. और बोले कि भाई! तुमने यह क्या किया? जो युद्ध करवाय दुःशासनकी भुजा उखड़ाई और दुर्योधनकी जांघ कटवाई यह धर्मयुद्धकी रीति नहीं है कि, कोई बलवान् हो किसीकी भुजा उखाड़े के कटिके नीचे शस्त्र चलावे, हाँ धर्मयुद्ध यह है कि, एक एकको ललकार सन्मुख शस्त्र करे. श्रीकृष्णचन्द्र बोले भाई! तुम नहीं जानते, ये कौरव बड़े अधर्मी अन्यायी हैं. इनकी अनीति कुछ कही नहीं जाती. पहिले इन्होंने दुःशासन, शकुनी, भगदत्तके कहे जुवाँ खेल कपटकर राजा युधिष्ठिरका सर्वस्व जीत लिया दुःशासन द्रौपदीको हाथ पकड़ लाया. इससे उसके हाथ भीमसेनने उखाड़े, दुर्योधनने सभाके बीच द्रौपदीको जांघपर बैठने को कहा, इससे उसकी जांघ काटीगई. इतना कह पुनि श्रीकृष्णचंद्र बोले कि, भाई! तुम नहीं जानते इसी भाँतिकी जो जो अनीति कौरवोंने पांड़वोंके साथ की हैं सो हम कहाँतक कहेंगे. इससे यह भारत की आग किसी रीतिसे अब न बुझेगी. तुम इसका कुछ उपाय मत करो महाराज! इतना वचन प्रभुके मुखसे निकलतेही बलरामजी कुरुक्षेत्रसे चल द्वारकापुरीमें आये और राजाउग्रसेन व शूरसेनसे भेंटकर हाथ जोड़ कहनेलगे कि, महाराज! आपके पुण्यप्रतापसे हम सब तीर्थयात्रा तो कर आये, पर एक अपराध हमसे हुआ. राजा उग्रसेन बोले सो क्या?

बलरामजीने कहा महाराज ! नैमिषारण्यमें जाय हमने सूतको मारा तिसकी हत्या हमको लगी. अब आपकी आज्ञा होय तो पुनि नैमिषारण्यमें जाय यज्ञके दर्शनकर फिर तीर्थ न्हाय हत्याका पाप मिटाय आवें पीछे ब्राह्मण भोजन करवाय जातिको जिमावें; जिससे जगमें यश पावें राजा उग्रसेन बोले अच्छा आप होआइये. महाराज ! राजाकी आज्ञा बलरामजी कितने एक यदुवंशियोंको साथ ले नैमिषक्षेत्रजाय स्नान दान कर शुद्ध होआये. पुनि पुरोहितको बुलाय होम करवाय ब्राह्मण जिमाय जातिको खिलाय लोकरीति कर पवित्रहुए. इतनी कथा कह श्रीशुकदेवजी बोले किमहाराज!

जो यह चरित सुनै मनलाय । ताको सबही पाप नशाय ॥

इति श्री लल्लूलालकृते प्रेमसागरे बलरामतीर्थयात्राकरणो नामो-
नाशीतितमोऽध्यायः ॥ ७९ ॥

अध्याय ८०.

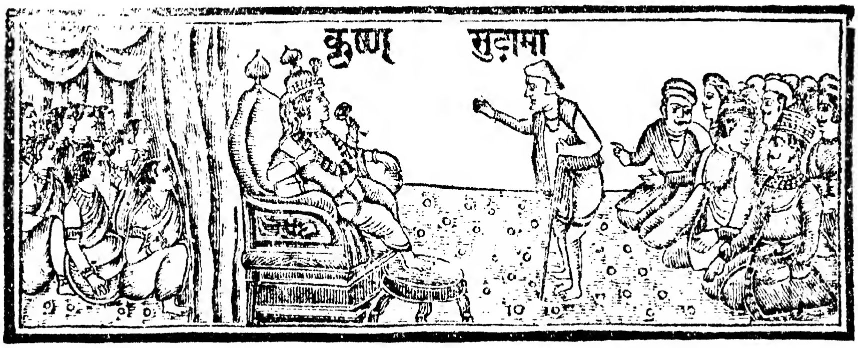

श्रीशुकदेवजी बोले कि, महाराज ! अब मैं सुदामाकी कथा कहताहूं कि, जैसे वह प्रभुके पास गया और उसका दरिद्र कटा; सो तुम मन दे सुनो, दक्षिण दिशाकी ओर है एक द्राविड़ देश, तहाँ विप्र और वणिक बसतेथे नरेश; जिनके राज्यमें घर घर होता था भजन सुमिरण, और हरिका ध्यान, पुनि सब करतेथे तप, यज्ञ, धर्म, दान और साधु, संत, गो, ब्राह्मणका सन्मान.

ऐसे बसैं सबै तिहि ठौर । हरिबिन कछुन जानैं और ॥

तिसी देशमें सुदामानाम ब्राह्मण श्रीकृष्णचंद्रका गुरुभाई अतिदीन, धनहीन, तनक्षीन, महादरिद्र ऐसा कि; जिसके घरपै न घास न खानेको कुछ पास रहताथा. एकदिन सुदामाकी स्त्री दरिद्रसे अति घबराय, महादुःखपाय, पतिके निकटजाय, भयखाय, डरती कांपती बोली कि, महाराज! अब इस दरिद्रके हाथसे महादुःख पातीहूं. जो आप इसे खोया चाहिये, तो मैं एक उपाय बताऊं; ब्राह्मणबोला सो क्या? कहा तुम्हारे परममित्र त्रिलोकीनाथ द्वारकावासी श्रीकृष्णचंद्र आनंदकंद हैं जो उनके पास जावो तो यह दरिद्र जाय, क्योंकि वे अर्थ, धर्म, काम, मोक्षके दाता हैं महाराज! जब ब्राह्मणीने ऐसे समझायकर कहा तब सुदामा बोला कि हे प्रिये! बिनदिये श्रीकृष्णचंद्र भी किसीको कुछ नहीं देते. मैं भलीभाँतिसे जानताहूं, कि जन्मभर मैंने किसीको कभी कुछ नहीं दिया. बिन दिये कहाँसे पाऊंगा? हां तेरे कहेसे जाऊँगा तो श्रीकृष्णजीके दर्शन कर आऊँगा, इसबातके सुनतेही ब्राह्मणीने एक अतिपुराने धौले वस्त्रमें थोड़ेसे चावल बांध लादिये, प्रभुकी भेंटके लिये और डोर लोटा और लाठी ला आगे धरी, तब तो सुदामा डोर लोटा काँधेपर डाल चावलकी पोटली काँखमें दबाय लाठी हाथमें ले श्रीगणेशको मनाय श्रीकृष्णचंद्रजीका ध्यानकर द्वारकापुरीको पधारा. महाराज! बाटमें चलते २ सुदामा मनहींमन कहने लगा कि, भला धनतो मेरी प्रारब्धमें नहीं पर द्वारका जानेसे श्रीकृष्णचंद्र आनंदकंदका दर्शन तो करूंगा. इसीभाँतिसे सोच विचार करता करता सुदामा तीन पहरके बीच द्वारकापुरीमें पहुँचा तो क्या देखताहै कि, नगरके चारोंओर समुद्र है और बीचमें पुरी, वह पुरी कैसी है कि, जिसके चहूं ओर वन उपवन फूल फल रहेहैं तड़ाग वापीइन्दारोंपर रहँट परोहेचलरहेहैं, ठौरठौरगायोंके यूथके यूथ चररहे हैं तिनके साथ ग्वाल बाल न्यारेही कुतूहल करते हैं.

इतनी कथा कह श्रीशुकदेवजी बोले कि, महाराज! सुदामा वन उपवनकी शोभा निरख पुरीके भीतर जाय देखा तो कंचनके मणिमय मंदिर महासुन्दर जगमगाय रहे हैं ठाँव ठाँव अथाइयोंमें यदुवंशी इन्द्रकीसी

सभा किये बैठे हैं हाट बाट चौहटोंपर नानाप्रकारकी वस्तु बिकरही हैं घर घर जिधर तिधर गान दान हरिभजन और प्रभुका यश होरहा है और सारे नगरनिवासी महा आनन्दमें हैं. महाराज! यह चरित्र देखता देखता और श्रीकृष्णचंद्रजीका मंदिर पूँछता पूँछता सुदामा जा प्रभुकी सिंहपौरि पर खड़ा हुआ. इसने किसीसे डरते डरते पूँछा कि श्रीकृष्णचंद्रजी कहाँ विराजते हैं? उसने कहा कि, देवता आप मंदिरके भीतर जावो सन्मुख श्रीकृष्णचंद्रजी रत्नसिंहासनपर बैठे हैं, महाराज! इतना वचन सुन सुदामा जो भीतर गया; तो देखतेही श्रीकृष्णचंद्र सिंहासनसे उतर आगू बढ़ भेंट कर अतिप्यारसे हाथपकड़ उसे लेगये. पुनि सिंहासनपर बिठलाय पाँव धोय चरणामृतलिया आगे चंदन चरच, अक्षत लगाय; पुष्प चढ़ाय धूप दीपकर, प्रभुने सुदामाकी पूजा की.

इतनो करि हरि जोरे हाथ। कुशल क्षेम पूछत यदुनाथ॥

इतनी कथा सुनाय श्रीशुकदेवजीने राजासे कहा कि, महाराज! यह चरित्र देख रुक्मिणीजी समेत आठों पटरानियाँ और सब यदुवंशी जो उस समय वहाँथे मनहींमन यों कहनेलगे कि, इस दरिद्री, दुर्बल, मलीन, वस्त्रहीन, ब्राह्मणने ऐसा क्या अगले जन्म पुण्य किया था? जो त्रिलोकी-नाथने इसे इतना मान दिया. महाराज! अंतर्यामी श्रीकृष्णचन्द्र उस काल सबके मनकी बात समझ उनका संदेह मिटानेको सुदामासे गुरुके घरकी बात करने लगे. कि, भाई! तुम्हें वह सुधहै? जो एकदिन गुरु-पत्नीने हमें तुम्हे इंधन लेने भेजा था और जब वनमे इंधन ले गठरिया बाँध शिरपर घर घरको चले. तब आँधी और मेह आया और लगा मूसलधार वर्षने, जल थल चारों ओर भरगये. हम तुम भीगकर महादुःख पाय जाड़ा खाय रातभर एक वृक्षके नीचे रहे. भोरही गुरुदेव वनमें ढूँढ़ते २ आये और अतिकरुणाकर आशीष दे हमें तुम्हें अपने साथ घर लिवाय लाये,

इतना कह श्रीकृष्णचंद्रजी बोले कि भाई? जबसे तुम गुरुदेव के यहाँसे बिछुड़े तबसे हमने तुम्हारा समाचार न पाया था. कि कहाँ थे और क्या

कृतेथे अब आप दर्शन दिखाय तुमने हमें महासुख दिया और घर पवित्र किया. सुदाम बोला हे कृपासिंधु ! दीनबंधु !! स्वामी अंतर्यामी !!! तुम सब जानो हो, कोई बात संसारमें ऐसी नहीं जो तुमसे छिपी है.

इति श्रीलल्लूलालकृते प्रेमसागरे सुदामद्वारकागमनो नामा-
शीतितमोऽध्याय ॥ ८० ॥

अध्याय ८१.

श्रीशुकदेवजी बोले कि, राजा! अंतर्यामी श्रीकृष्णचंद्रजीने सुदामाकी बात सुन और उसके अनेक मनोरथ समझ हँसकर कहा कि, भाई ! भाभीने हमारे लिये क्या भेंट भेजी है, सो देते क्यों नहीं; काँखमें किसलिये दबाय रहे हो. महाराज! यह वचन सुन सुदामा तो सकुचाय शिरझुकाय रहा और प्रभुने उठ चावलकी पोटली उसकी काँखसे निकाल ली, पुनि खोल उसमेंसे अति रुचिकर दो मूठी चावल खाये और ज्यों तीसरी मूट भरी त्यों रुक्मिणीजीने हरिका हाथ पकड़ा और कहा कि, महाराज ! आपने दो लोक तो इसे दिये अब अपने रहनेका भी कोई ठौर रक्खोगे कि नहीं ? ब्राह्मण तो सुशील कुलीन अति वैरागी महात्यागीसा दृष्टि आताहै क्योंकि इसे विभव पानेसे कुछ भी हर्ष न हुआ इससे मैंने जाना कि, ये लाभ हानि समान जानते हैं न इन्हें पानेका हर्ष, न जानेका शोच, इतनी बात रुक्मिणीके मुखसे निकलतेही श्रीकृष्णचन्द्रजीने कहा कि; हे प्रिये ! यह मेरा परममित्रहै, इसके गुण मैं कहांतक बखानूं, सदा सर्वदा मेरे

स्नेहमें मग्न रहना है और उसके आगे संसारके सुखको तृणवत् समझता है. इतनी कथा कह श्रीशुकदेवजीने राजापरीक्षितसे कहा कि, महाराज ! ऐसे अनेक प्रकारकी बातें कर प्रभु रुक्मिणीजीको समझाय सुदामाको मंदिर लिवाय लेगये. आगे षट्रस भोजन करवाय पान खिलाय हरिने सुदामाको फेनसी सेजपर लेजाय बैठाया. वह पंथका हारा थका तो थाही सेजपर जाय सुखपाय सोगया.

प्रभुने विश्वकर्माको बुलाय समझायके कहा कि,तुम अभीजाय सुदामाके मंदिर अतिसुंदर कंचनरत्नके बनाय तिनमें अष्टसिद्धि नवनिधि धर आवो, जो इसे किसी बातकी आकांक्षा न रहे इतना वचन प्रभुके मुखसे निकलतेही विश्वकर्मा वहाँ जाय बातकी बातमें बनाय आया और हरिसे कह अपने स्थानको गया. भोर होतेही सुदामा उठ स्नान, ध्यान, भजन, पूजासे निश्चिंत हो प्रभुके पास विदा होने गया, उससमय श्रीकृष्णचंद्रजी मुखसे तो कुछ न बोलसके, पर प्रेमसे सनेहो आँखें डबडबाय शिथिलहो देख रहे. सुदामा विदाहो प्रणामकर अपने घरको चला और पंथमें जाय मनहींमन विचार करने लगा. भला भया जो मैंने प्रभुसे कुछ न माँगा जो उनसे कुछ माँगता तो वे देते तो सही, पर मुझे लोभी लालची समझते. कुछ चिंता नहीं, ब्राह्मणीको मैं समझाय लूंगा श्रीकृष्णचंद्रजीने मेरा अतिमान सन्मान किया और मुझे निर्लोभी जाना यही मुझे लाख है. महाराज ! ऐसे शोच विचार करता करता सुदामा अपने गाँवके निकट आया, तो क्या देखताहै कि, न ठाँव है न वह टूटी मड़ैया; वहाँ तो एक इन्द्रपुरीसी बस रही है. देखते सुदामा अतिदुःखित हो कहने लगा कि, हे नाथ ! तुमने यह क्या किया, एक दुःख तो थाही, दूसरा और दिया यहाँसे मेरी झोपड़ी क्या हुई ? और ब्राह्मणी कहाँ गई किससे पूँछू और किधर ढूंढू ? इतनाकह द्वारपर जाय सुदामाने द्वारपालोंसे पूछा कि,यह मंदिर अति सुंदर किसका है ? तब द्वारपालोंने कहा श्रीकृष्णचंद्रजीके मित्र सुदामाजीका, यह बातसुन जो सुदामा कुछ कहनेको हुआ तो भीतरसे देख उसकी ब्राह्मणी अच्छे वस्त्र आभूषण

पहने नखशिखसे शृंगारकिये पानखाये सुगंधलगाये सखियोंको साथ लिये पतिके निकट आई.

पायँनपर पाटंबर डारे। हाथजोरि ये वचन उचारे॥
ठाढेक्यों मंदिर पगु धारो। मनमों शोचकरो तुम न्यारो॥
तुमपाछे विश्वकर्मा आये। तिन मंदिर पलमाँझ बनाये॥

महाराज! इतनी बात ब्राह्मणीके मुखसे सुन सुदामाजी मंदिरमें गये और अतिविभव देख महाउदास भये ब्राह्मणी बोली स्वामी! धनपाय लोग प्रसन्न होते हैं, तुम उदास हुए इसका कारण क्या है? सो कृपाकर कहिये, जो मेरे मनका संदेह जाय. सुदामा बोला कि, हे प्रिये! यह माया बड़ी ठगिनीहै इसने सारे संसारको ठगा है, ठगती है और ठगेगी सो प्रभुने मुझे दी और मेरे प्रेमकी प्रतीति न की मैंने उनसे कब मांगीथी जो उन्होंने मुझे दी? इसीसे मेरा चित्त उदास है. ब्राह्मणी बोली स्वामी तुमने तो श्रीकृष्णचंद्रजीसे कुछ न माँगाथा, पर अंतर्यामी घट घटकी जानतेहैं. मेरे मनमें धनकी वासना थी, सो प्रभुने पूरी की; तुम अपने मनमें और कुछ मत समझो.

इतनी कथा सुनाय श्रीशुकदेवजीने राजापरीक्षितसे कहा कि, महाराज! इस प्रसंगको जो सदा सुने सुनावेगा, सो जन जगत्में आय दुःख कभी न पावेगा और अंतकाल वैकुंठधाम जावेगा.

इति श्रीलल्लूलालकृते प्रेमसागरे सुदामोदरिद्रगमनो नामै-
काशीतितमोऽध्यायः॥ ८१॥

अध्याय ८२.

श्रीशुकदेवजी बोले कि, राजा! अब मैं प्रभुके कुरुक्षेत्र जानेकी कथा कहताहूं, तुम चित्त दे सुनो. कि जैसे द्वारकासे सब यदुवंशियोंको साथ ले श्रीकृष्णचंद्र और बलरामजी सूर्यग्रहण न्हाने कुरुक्षेत्र गये. राजाने कहा महाराज! आप कहिये मैं मन दे सुनताहूं पुनि श्रीशुकदेवजी बोले कि, महाराज! एकसमय सूर्यग्रहणका समाचारपाय श्रीकृष्णचंद्र

और बलदेवजीने राजा उग्रसेनके पास जायके कहा कि, महाराज ! बहुत दिन पीछे सूर्यग्रहण आयाहै,जो इसपर्वको कुरुक्षेत्रमें चलकर स्नान करें तो बड़ापुण्य होय, क्योंकि शास्त्रमें लिखा है कि, कुरुक्षेत्रमें जो दान पुण्य करिये सो सहस्र गुण होय. इतनीबातके सुनतेही यदुवंशियोंने श्रीकृष्णचंद्रजीसे पूछा कि, महाराज ! कुरुक्षेत्र ऐसा तीर्थ कैसेहुआ ? सो कृपाकर हमें समझायके कहिये. श्रीकृष्णचंद्रजी बोले कि, सुनो जमदग्नि ऋषि बड़े ज्ञानी तपस्वीथे, तिनके तीन पुत्र हुए उनमें सबसे बड़े परशुराम सो वैराग्यकर घरछोड़ चित्रकूट जाय रहे और सदाशिवकी तपस्या करने लगे. लड़कोंके होतेही जमदग्निऋषि गृहस्थाश्रम छोड़ वैराग्यकर स्त्रीसहित वनमें जाय तप करने लगे उनकी स्त्रीका नाम रेणुका. सो एक दिन अपनी बहनको नौतने गई. उसकी बहन राजा सहस्रार्जुनकी स्त्री थी नौता देतेही अहंकारकर राजा सहस्रार्जुनकी रानी रेणुकाकी बहन हँसकर बोली, बहन ! तुम हमें हमारे कटक समेत जिमायसको तो नौता दो नहीं तो न दो; महाराज ! यह बात सुन रेणुका अपनासा मुहँ ले चुपचाप वहाँसे उठ अपने घर आई इसे उदासदेख जमदग्निऋषिने पूछा कि, आज क्या है जो तू अनमनी होरही है ? महाराज ! बातके पूँछतेही रेणुकाने रोकर सब ज्योंकी त्यों बातकही, सुनतेही जमदग्निऋषिने स्त्रीसे कहा कि, अच्छा तू जायके अभी अपनी बहनको कटक समेत नौत आ, पतिकी आज्ञा पाय रेणुका बहनके घर जाय नौत आई. उसकी बहनने अपने स्वामीसे कहा, कल तुम्हें हमें दलसमेत जमदग्नि ऋषिके यहाँ भोजन करने जाना है. स्त्रीकी बात सुन अच्छाकह, वह हँसकर चुप होरहा. भोर होतेही जमदग्नि उठकर राजा इंद्रके पास गये और कामधेनु माँग लाये. पुनि जाय सहस्रार्जुनको बुलाय लाये वह कटक समेत आया, तिसे जमदग्निने इच्छा भोजन खिलाया. कटक समेत भोजनकर राजा सहस्रार्जुन. अति लज्जित हुआ और मनहीं मन कहने लगा कि, इसने इतने लोगोंके खानेकी सामग्री रातभरमें कहाँ पाई और कैसे बनाई ? इसका भेद कुछ जाना नहीं जाता इतना कह बिदा होय उसने अपने घर जाय यों कह एक

ब्राह्मणको भेजदिया कि,देवता!तुम जमदग्नि ऋषिके घर जाय इस बातका भेद लावो कि, उसने किसके बलसे एकदिनके बीच मुझे कटक समेत नौत जिमाया, इतनी बातके सुनतेही ब्राह्मणने जाय देख आय सहस्रार्जुनसे कहा कि, महाराज! उसके घरमें कामधेनुहै, उसीके प्रभावसे तुम्हें एकदिनमें नौत जिमाया. यह समाचार सुन सहस्रार्जुनने उसी ब्राह्मणसे कहा कि, देवता! तुम जाय हमारीओरसे जमदग्निऋषिसे कहो कि, सहस्रार्जुनने कामधेनु माँगी है बातके सुनतेही वह ब्राह्मण सँदेशा ले ऋषिके पास गया और उनसे सहस्रार्जुनकी कही बात कही. ऋषि बोले कि, यह गाय हमारी नहीं, जो हम दें; यह तो राजा इंद्रकी है, हम इसे दे नहीं सकते; तुम जाय अपने राजासे कहो. बातके सुनतेही ब्राह्मणने जाय राजा सहस्रार्जुनसे कहा कि, महाराज! ऋषिने कहा है, कि कामधेनु हमारी नहीं; यह तो राजा इंद्रकी है इसे हम नहीं दे सकते. इतनी बात ब्राह्मणके मुखसे निकलतेही सहस्रार्जुनने अपने कितने एक योद्धाओंको बुलायके कहा तुम अभी जाय जमदग्निके घरसे कामधेनु खोल लावो. स्वामीकी आज्ञा पाय योद्धा ऋषिके स्थानपर गये और जो धेनुको खोल जमदग्निके घरसे ले चले तो ऋषिने दौडकर बाटमें जाय कामधेनुको रोका; यह समाचार पाय क्रोधकर सहस्रार्जुनने आ ऋषिका शिर काट डाला, कामधेनु भाग इंद्रके यहाँ गई, रेणुका आय पतिके पास खड़ी भई.

दो०-शिर खसोट लोटति फिरै, बैठिरहै गहिपाय।
छातीपीटै रुदनकरि, पियपिय कहि बिलखाय॥

उसकाल रेणुकाका बिलखाय बिलाप करना और रोना सुन दशों दिशाके दिक्पाल काँपउठे और परशुरामजीका तप करते आसन डिगा और ध्यान छूटा; ध्यानके छूटतेही ज्ञानकर परशुरामजी अपना कुठारले वहाँ आये जहाँ पिताकी लोथ पड़ीथी और माता रोती पीटती खड़ीथी, देखतेही परशुरामजीके महाकोप हुआ. इसमें रेणुकाने पतिके मारे जानेका सब भेद पुत्रको रो रो कह सुनाया. बातके सुनतेही परशु-

रामजी इतना कह तहाँ गये जहाँ सहस्रार्जुन अपनी सभामें बैठाथा कि, माता पहले मैं अपने पिताके बैरीको मारआऊं, तब आय पिताको उठाऊँगा. उसे देखतेही परशुरामजी कोपकर बोले-

अरे क्रूर कायर कुलद्रोही । तात मारि दुख दीन्हों मोंही ॥

ऐसे कह जब फरसा ले परशुरामजी महाकोपमें आये, तब वह भी धनुषबाण ले इनके सोहीं खड़ा हुआ. दोनों बली महायुद्ध करनेलगे. निदान लड़ते लड़ते परशुरामजीने चार घड़ीके बीच सहस्रार्जुनको मार गिराया, पुनि उसका कटक चढि आया. तिसे भी उन्होंने उसीके पास काट डाला फिर वहाँसे आय पिताकी गति करी और माताको समझाय पुनि उसी ठौर परशुरामजीने रुद्रयज्ञ किया, तभीसे वह स्थान क्षेत्र कहकर प्रसिद्ध हुआ वहाँ जाकर ग्रहणमें जो कोई दान, स्नान, तप, यज्ञ करताहै, उसे सहस्रगुण फल होताहै.

इतनी कथा सुनाय श्रीशुकदेवजीने राजापरीक्षितसे कहा कि, महाराज ! इस प्रसंगके सुनतेही सब यदुवंशियोंने प्रसन्न हो श्रीकृष्णचंद्रजीसे कहा कि महाराज ! शीघ्र कुरुक्षेत्रको चलिये अब विलंब न करिये क्योंकि पर्वपर पहुँचा चाहिये. बातके सुनतेही श्रीकृष्णचन्द्र और बलरामजीने राजा उग्रसेनसे पूंछा कि महाराज ! सब कोई कुरुक्षेत्रको चलेंगे. यहाँ पुरीकी चौकशीको कौन रहेगा. राजाउग्रसेनने कहा अनिरुद्धजीको रख चलिये. राजाकी अज्ञापाय प्रभुने अनिरुद्धको बुलाय समझायकर कहा कि, बेटा ! तुम यहाँ रहो, गोब्राह्मणकी रक्षाकरो और प्रजाको पालो. हम राजाजीके साथ सब यदुवंशियोंसमेत कुरुक्षेत्र न्हाय आवैं. अनिरुद्धजीने कहा जोआज्ञा. महाराज ! एक अनिरुद्धजी को पुरीकी रखवालीमें छोड़ शूरसेन, वसुदेव, उद्धव, अक्रूर कृतवर्मा आदि छोटे बड़े यदुवंशी अपनी अपनी स्त्रियों समेत राजा उग्रसेनके साथ कुरुक्षेत्र चलनेको उपस्थित हुए, जिससमय कटक समेत राजाउग्रसेनने पुरोंके बाहर डेरा किया, उसकाल सब जाय मिले; तिनके पीछेसे श्रीकृष्णजी भाई भोजाईको साथ ले आठों पटरानी और सोलह

सहस्र एकसौरानियों व बेटों पोतों समेत जायमिले प्रभुके पहुँचतेही राजाउग्रसेनने वहाँ से डेरा उठाय राजा इंद्रकी भाँति बड़ी धूमधामसे आगेको प्रस्थानकिया. इतनी कथा कह श्रीशुकदेवजी बोले कि, महाराज ! कितने एक दिनोंमें चले चले श्रीकृष्णचंद्र सब यदुवंशियों समेत आनन्द मंगलसे कुरुक्षेत्रमें पहुँचे, वहांजाय पर्वमें सबने स्नान किया और यथाशक्ति हरएकने हाथी, घोड़ा, रथ, पालकी, अस्त्र, शस्त्र, वस्त्र, आभूषण, अन्न, धन दान दिया. पुनि वहाँ सबोंने डेरे डाले. महाराज ! श्रीकृष्णचंद्र और बलरामजीके कुरुक्षेत्रके जानेके समाचारपाय चहूँओरके राजा कुटुंब सहित अपनी अपनी सब सेना ले ले वहाँ आय आय श्रीकृष्ण बलरामजीको मिले, पुनि सब कौरव पांडव भी अपना २ दल लेले सकुटुम्ब वहाँ आय मिले. उसकाल कुंती और द्रौपदी यदुवंशियोंके रनिवासमें जाय सबसे मिलीं आगे कुंतीने भाईके सन्मुख जाय कहा कि भाई ! मैं बड़ीअभागी, जिस दिनसे माँगी उसी दिनसे दुःख उठातीहूं. तुमने जबसे व्याह दी तबसे मेरी सुधि कभी न ली और राम कृष्ण जो सबके हैं सुखदाई; उनको भी मेरी दया कुछ न आई. महाराज ! इस बातके सुनतेही करुणाकर आँखें भर वसुदेवजी बोले कि, बहन ! तू मुझे क्या कहतीहै ? इसमें मेरा कुछ वश नहीं कर्मकी गति जानी नहीं जाती, हरिइच्छा प्रबल है; देखो ! कंसके हाथसे मैंने भी क्या क्या दुःख न पाया ?

प्रभुआधीन सकलजगआय । कितदुखकरौदेखजगमाय ॥

महाराज ! इतना कह बहनको समझाय बुझाय वसुदेवजी वहाँ गये जहाँ सब राजा उग्रसेनकी सभामें बैठेथे और राजादुर्योधन आदि बड़े बड़े नृप और पांडव उग्रसेनहीकी बड़ाई करतेथे कि राजा ! तुम बड़े भागी हो जो सदा श्रीकृष्णचंद्रका दर्शनपातेहो और जन्म जन्मका पाप गवाँते हो. जिन्हें शिव विरंचि आदि सब देवता खोजते फिरैं, सो प्रभु तुम्हारी सदा रक्षा करैं; जिनका भेद योगी, यती, मुनि, ऋषि, न पावैं, सोहरि तुम्हारी आज्ञा लेने आवैं. जो हैं सर्व जगत्के ईश,

वेही तुम्हैं नवाते शीश. इतना कह श्रीशुकदेवजी बोले कि महाराज ! ऐसे सब राजा आय आय राजाउग्रसेनकी प्रशंसा करतेथे और वे यथा योग्य सबका समाधान करतेथे. इसमें श्रीकृष्ण बलरामजीका आना सुन नंद उपनंद भी सकुटुम्ब सब गोपी गोप ग्वाल बाल समेत आन पहुँचे स्नान दानसे सुचित्तहो नंदजी वहाँ गये, जहाँ पुत्र सहित वसुदेव विराजतेथे. इन्हें देखतेही वसुदेवजी उठकर मिले और दोनोंने परस्पर प्रेमकर ऐसे सुख माना कि जैसे कोई गई वस्तु पाय सुख माने. आगे वसुदेवजीने नंदरायसे ब्रजकी पिछली सब बात कह सुनाई, जैसे नंदरायजीने श्रीकृष्ण बलरामजीको पाला था. महाराज ! इस बातके सुनतेही नंदरायजी नयनोंमें नीरभर वसुदेवजीका मुख देख रहे, उसकाल श्रीकृष्ण,बलदेवजी प्रथम नंद यशोदाजीको यथायोग्य दंडवत प्रणामकर पुनि ग्वाल बालोंसे जाय कर मिले. तहाँ गोपियोंने आय हरिका चंद्रमुख निरख निरख अपने नयनचकोरोंको बहुतसा सुख दिया और जीवनका फल लिया.

इतना कह श्रीशुकदेवजी बोले कि महाराज! वसुदेव, देवकी, रोहिणी श्रीकृष्ण बलरामसे मिल जो कुछप्रेम नंद, उपनंद, यशोदा, गोपीगोप, ग्वाल बालोंने किया, सो मुझसे कहा नहीं जाता; वह देखतेही बनिआवै निदान सबको स्नेहमें निपट अति व्याकुल देख श्रीकृष्णचंद्रजी बोले कि; सुनो

मेरी भक्ति जो प्राणी करै । भवसागर निर्भयसो तरै ॥
तनमनधनतुमअर्पणकीन्हो । नेहनिरंतरकरमोहिंचीन्हों ॥
तुमसम बडभागी नहिं कोय । ब्रह्मरुद्रइंद्रादि न होय ॥
योगीश्वरके ध्यान न आयो । तुमसँगरहनितप्रेमबढायो ॥
हौं सबहीके घट घट रहौं । अगम अगाध जुवाणीबहौं ॥

जैसे तेज, जल, अग्नि, पृथ्वी, आकाशका है देहमें बास, तैसे सर्व घटमें भरा है मेरा प्रकाश.

श्रीशुकदेवजी बोले कि, महाराज ! जब श्रीकृष्णचंद्रने यह सब भेद कह सुनाया तब सब व्रजवासियोंको धीरज आया.

इति श्रीलल्लूलालकृते प्रेमसागरे श्रीकृष्णबलरामकुरुक्षेत्रगमनो नाम
द्व्यशीतितमोऽध्यायः ॥ ८२ ॥

अध्याय ८२.

श्रीशुकदेवजी बोले कि, महाराज ! जैसे द्रौपदी और श्रीकृष्णचंद्रजीकी स्त्रियोंमें परस्पर बातें हुई सो प्रसंग मैं कहताहूं तुम सुनो एकदिन कौरव और पांडवोंकी स्त्रियां श्रीकृष्णचंद्रजीकी नारियोंके पास बैठी थीं और गुण गातीथीं. इसमें कुछ वार्ता जो चली तो द्रौपदीने रुक्मिणीजीसे कहा की; सुन्दरी ! कह तूने श्रीकृष्णचंद्रजीको कैसे पाया ? श्रीरुक्मिणी बोलीं-

सुनो द्रौपदी तुम चितलाय । जैसे प्रभुने कियो उपाय ॥

मेरे पिताका तो मनोरथ था कि, मैं अपनी कन्या श्रीकृष्णचंद्रको दूं और भाईने राजाशिशुपालके देनेका मनकिया. वह बरात ले व्याहनको आया और श्रीकृष्णचंद्रजीको मैंनें ब्राह्मण भेज बुलाया व्याहकेदिन मैं जो गौरीकी पूजाकर घरको चली तो श्रीकृष्णचन्द्रजी सब असुरदलके बीचसे मुझे उठायके ले रथमें बैठाय अपनी बाट ली. तिस पीछे समाचार पाय सब असुरदल प्रभु पर आय टूटा, सो हरिने सहजही मार

भगाया. पुनि मुझे ले द्वारका पधारे. वहाँ जातेही राजाउग्रसेन शूरसेन वसुदेवजीने वेदकी विधिसे श्रीकृष्णचंद्रजीके साथ मेरा व्याह किया विवाहके समाचार पाय, मेरे पिताने बहुतसा यौतुक भिजवाय दिया इतनी कथा कह श्रीशुकदेवजीने राजा परीक्षितसे कहा कि, महाराज! इसी प्रकार द्रौपदीजीने सत्यभामा, जाम्बवती- कालिंदी, भद्रा, सत्या, मित्रविंदा, लक्ष्मणा आदि श्रीकृष्णचंद्रजीकी सोलहसहस्र एकसौ आठ पटरानियोंसे पूछा और एक एकने सब समाचार अपने अपने विवाहका ब्योरे समेत कहा.

इति श्रीलल्लूलालकृते प्रेमसागरे श्रीगीतवर्णनो नाम त्र्यशीतितमोऽध्यायः ॥ ८३ ॥

अध्याय ८४.

श्रीशुकदेवजी बोले कि, महाराज! अब मैं सब ऋषियोंके आनेकी और वसुदेवजीके यज्ञ करनेकी कथा कहताहूं, तुम चित्त दे सुनो महाराज! एकदिन राजा उग्रसेन, वसुदेव, श्रीकृष्ण, बलराम सब यदुवंशियोंसमेत सभा किये बैठे थे और सब देश देशके नरेश वहाँ उपस्थित थे कि, इस बीच श्रीकृष्णचंद्र आनंदकंदके दर्शनकी अभिलाषाकर व्यास, वसिष्ठ, वामदेव, विश्वामित्र, पराशर, भृगु, पुलस्त्य, भरद्वाज, मार्कण्डेय आदि अट्ठासीसहस्र ऋषि वहाँ आये और तिनके साथ नारदजी भी आये. उन्हें देखतेही सभाकी सभा सब उठ खड़ी हुई

पुनि सब दंडवत्कर पाटंबरके पाँवड़े डाल सबको सभामें ले गये; आगे श्रीकृष्णचंद्रजीने सबको आसनपर बैठाय पावँधोय चरणामृत ले पिया और सारी सभापर छिड़का. फिर चंदन, अक्षत, धूप, दीप; नैवेद्यकर भगवानने सबकी पूजाकर परिक्रमा की; पुनि हाथ जोड सन्मुख खड़े हो हरि बोले कि, धन्य भाग्य हमारे, जो आपने आय घर बैठे दर्शन दिया, साधुका दर्शन गंगाके स्नानसमान है, जिसने साधुका दर्शन पाया, उसने जन्म जन्मका पाप गवाँया. इतनी कथा कह श्रीशुकदेवजी बोले कि, महाराज !

श्रीभगवान वचन जब कहे । तब सब ऋषी बिचारत रहे ॥

कि, जो प्रभु है ज्योतिस्वरूप और सकल सृष्टिका कर्ता सो जब यह बात कहे तब और की किसने चलाई. मनहींमन सब मुनियोंने जब इतना कहा तब नारदजी बोले–

सुनो सभा तुम सब मनलाय । हरिमायाजानीनहिं जाय ॥

ये आपही ब्रह्माहो उपजाते हैं. विष्णुहो पालते हैं. शिव हो संहारते हैं. इनकी गति अपरंपार है, इसमें किसीकी बुद्धि कुछ काम नहीं करती. पर इतना इनकी कृपासे हम जानते हैं कि साधुओंको सुखदेनेको और दुष्टोंके मारनेको और सनातनधर्म चलावनेको वारंवार अवतार ले प्रभु आते हैं, महाराज ! जो इतनी बात कह नारदजी सभासे उठनेकोहुए, तो वसुदेवजी सन्मुख आय हाथ जोड़ विनतीकर बोले कि, हे ऋषिराय ! मनुष्य संसार में आय कर्मबंधनसे कैसे छूटे ? सो कृपाकर कहिये. महाराज ! यह बात वसुदेवजीके मुखसे निकलतेही सब ऋषि मुनि नारदजीका मुखदेख रहे तब नारदजीने मुनियोंके मनका अभिप्राय समझकर कहा कि, हे देवताओ ! तुम इस बातका अचरज तम करो, श्रीकृष्णजीकी माया प्रबलहै;इसने सारे संसारको जीत रक्खा है. इसीसे वसुदेवजीने यह बात कही और दूसरे ऐसा भी कहाहै कि, जो जन जिसके समीप रहता है वह उसका गुण प्रभाव और प्रताप मायाके वश हो नहीं जानता. जैसे–

गंगावासी अनतहि जाई। तजिकैगंग कूपजलन्हाई ॥
योंहीं यादव भये अयाने। नाहींकछुक कृष्णगति जाने ॥

इतनी बात कह नारदजीने मुनियोंके मनका संदेह मिटाय वसुदेवजीसे कहा कि, महाराज! शास्त्रमें कहा है जो नर तीर्थ, दान, तप, व्रत, यज्ञ करताहै सो संसारके बंधनसे छूटकर मुक्ति पाता है. इसबातके सुनतेही प्रसन्नहो वसुदेवजीने; बातकी बात में सब यज्ञकी सामा मँगाय उपस्थित की और ऋषियों और मुनियोंसे कहा कि, महाराज! कृपाकर यज्ञका आरंभ कीजिये. महाराज! वसुदेवजीके मुखसे इतना वचन निकलतेहीसब ब्राह्मणोंने यज्ञका स्थान बनाय सँवारा. इस बीच स्त्रियों समेत वसुदेवजी वेदीमें जाय बैठे सब राजा और यादव यज्ञकी टहलमें आ उपस्थित हुए.

इतनी कथा सुनाय श्रीशुकदेवजीने राजापरीक्षितसे कहा कि, महाराज! जिस समय वसुदेवजी वेदीमें जाय बैठे, उसकाल वेदकी विधिसे मुनियोंने यज्ञका आरंभ किया और लगे वेदमंत्र पढ़ पढ़ आहुती देने और देवता सब भाग आय आय लेने. महाराज! जिसकाल यज्ञ होनेलगी उसकाल उधर किन्नर, गंधर्व, भेरी, दुंदुभी; बजाय बजाय गुण गातेथे. इधर चारण बंदीजन यश बखानतेथे. उर्वशीआदि अप्सरा नाचतीथीं और देवता अपने अपने विमानोंमें बैठे फूल बरसावते थे और याचक जयजयकार करते. इसमें यज्ञ पूर्ण हुआ और वसुदेवजीने पूर्णाहुति दे ब्राह्मणोंको पाटंबर पहिराय अलंकृत रत्न, धन; बहुतसा दिया और उन्होंने वेदमंत्र पढ़पढ़ आशीर्वाद किया. आगे सब देश देशके नरेशोंको भी वसुदेवजीने पहराय और जिमाया. पुनि उन्होंने यज्ञकी भेंट करकर बिदाहो अपनी अपनी बाट ली. महाराज! सब राजाओंके जातेही नारदजी समेत सारे ऋषि भी बिदा हुए पुनि नंदरायजी गोप, गोपी, ग्वाल, बाल समेत जब वसुदेवजीसे बिदा होने लगे, उस समयकी बात कुछ कही नहीं जाती. इधर तो यदुवंशी करुणाकर अनेक अनेक प्रकारकी बातें करते थे और उधर सब व्रजवासी. उसका बखान कुछ कहा नहीं जाता, सो देखेही बनिआवे. निदान वसुदेवजी श्रीकृष्ण बलरामजीने सब समेत नंदरायजीको समझाय, बुझाय,

पहराय और बहुतसाधन दे बिदा किया. इतनी कथा कह श्रीशुकदेवजी बोले कि, महाराज! इसभाँति श्रीकृष्णचन्द्र और बलरामजी पर्व न्हाय यज्ञकर सब समेत जब द्वारकापुरीमें आये तो घर घर मंगल आनंद भये बधाये.

इति श्रीलल्लूलालकृते प्रेमसागरे वसुदेवयज्ञकरणोनाम चतुरशीतितमोऽध्यायः ॥ ८४ ॥

अध्याय ८५.

श्रीशुकदेवजी बोले कि, महाराज! द्वारकापुरीके बीच एकदिन श्रीकृष्णचन्द्र और बलरामजी जो वसुदेवजीके पास गये तो वे इन दोनों भाइयोंको देख यह बात मनमें विचार उठ खड़ेहुए कि कुरुक्षेत्रमें नारदजीने कहाथा कि, श्रीकृष्णचंद्र जगत् के कर्त्ता और दुःखहर्त्ता हैं और हाथ जोड़ बोले. हे प्रभो! अलख, अगोचर, अविनाशी, सदासेवतीहैं तुम्हें कमलाभई दासी; तुमहो सब देवों के देव, कोई नहीं जानता तुम्हारा भेव; तुम्हारीही ज्योति हैं चंद्र, सूर्य, पृथ्वी, आकाश, तुम्हीं करते हो सब ठौर ठौरमें प्रकाश; तुम्हारी मायाहै प्रबल, उसने सारे संसारको भुलाय रक्खाहै; त्रिलोकीमें सुर, नर, मुनि ऐसा कोई नहीं जो उसके हाथसे बच गया हो. महाराज! इतना कहा पुनि वसुदेवजी बोले कि, हे कृपानाथ!

कोउन भेद तुम्हारो जानै। वेदनमाँझ अगाध बखानै॥
शत्रु मित्र कोऊ न तिहारो। पुत्र पिता न सहोदर प्यारो॥
पृथ्वी भार हरण अवतरौ। जनके हेतु वेष बहु धरौ॥

महाराज! ऐसे कह वसुदेवजी बोले कि, हे करुणासिंधु! दीनबंधु!! जैसे आपने अनेक पतितोंको तारा, तैसे कृपाकर मेरा भी निस्तार कीजै; जो भवसागरके पार हो आपके गुण गाऊं. श्रीकृष्णचंद्र बोले कि, हे पिता! तुम ज्ञानी होय पुत्रोंकी बड़ाई क्यों करते हो? टुक आपही मनमें विचारो कि भगवान्की लीला अपरंपार है उसका पार किसीने आजतक नहीं पाया देखो, वह–

घट घट माहिंज्योतिह्वैरहै । ताहीसों जग निर्गुण कहै ॥
आपहि सिरजै आपहि हरै । रहै मिल्यो बाँध्यो नहिं परै ॥
भूआकाशवायुजल ज्योति । पंचतत्त्वते देह जु होति ॥
प्रभुकी शक्ति सबनमें रहै । वेद माहिं विधि ऐसे कहै ॥

महाराज ! इतनी बात श्रीकृष्णचंद्रजीके मुखसे सुनतेही वसुदेवजी मोहवश होय चुपकर हरिका मुख देख रहे, तब प्रभु वहाँ से चल माताके निकट गये. तो पुत्रका मुख देखतेही देवकीजी बोलीं हे कृष्णचंद्र आनंदकंद ! एक दुःख मुझे जब तब शालै है. प्रभु बोले सो क्या ? देवकीजीने कहा कि, पुत्र ! तुम्हारे छः भाई बड़े जो कंसने मार डाले हैं उनका दुःख मेरे मनसे नहीं जाता.

श्रीशुकदेवजी बोले कि, महाराज ! बातके सुनतेही श्रीकृष्णचंद्रजी इतना कह पातालपुरीको गये कि, माता ! तुम अब मत कुढ़ो, मैं अपने भाइयोंको अभी जाय ले आताहूँ. प्रभुके जातेही समाचार पाय राजाबलि आय अति धूमधामसे पाटंबर पांवड़े डाल निज मंदिरमें लिवाय ले गया. आगे सिंहासनपर बिठाय राजा बलिने चंदन, अक्षत, पुष्प, चढ़ाय धूप, दीप, नैवेद्य कर श्रीकृष्णचंद्रजीकी पूजा की, पुनि सन्मुख खड़ाहो हाथ जोड़ अतिस्तुति कर बोला कि, महाराज ! आपका आना यहाँ कैसे हुआ ? हरि बोले कि, राजा ! सत्ययुगमें मरीचिनाम एक ऋषि बड़े ब्रह्मचारी, ज्ञानी, सत्यवादी और हरिभक्त थे. उनकी स्त्रीका नाम उरना, उसके छः बेटे थे. एक दिन वे छहों भाई तरुण अवस्थामें प्रजापतिके सन्मुख जाय हँसे, उनको हँसतादेख प्रजापतिने महाकोपकर यह शाप दिया कि, तुम जाय अवतार ले असुर हो. महाराज ! इस बातके सुनतेही ऋषिपुत्र अतिभयखाय प्रजापतिके चरणोंपर जाय गिरे और बहुत गिड़गिड़ाय अति विनती कर बोले कि, कृपासिंधु ! आपने शाप तो दिया, पर अब कृपाकर कहिये कि, इस शापसे हम कब मोक्ष पावेंगे, इनके दीन वचन सुन प्रजापतिने दयालु हो कहा कि तुम श्रीकृष्णचंद्रका दर्शनपाय मुक्त होगे महाराज !

इतनो कहत प्राण तजि गये। ते हिरणाकुश पुत्र जुभये॥
पुनि वसुदेवके जन्मे जाय। तिनको हत्यो कंसने आय॥
मार तिन्हैं माया ले आई। इहठाँ राखि गई सुखदाई॥

उनका दुःख माता देवकी करती है इसलिये हम यहाँ आये हैं कि, अपने भाइयोंको ले जाय माताको देवें और उनके चित्तकी चिंता दूर करैं. श्रीशुकदेवजी बोलेकि, राजा! इतना वचन हरिके मुखसे निकलतेही राजा बलिने छहों बालक ला दिये और बहुतसी भेंट आगेधरी, तव प्रभु वहाँसे भाइयोंको साथ ले माताके पास आये माता पुत्रोंको देख अति प्रसन्न हुई. इस बातको सुन सारीपुरीमें आनंद हुआ और उनका शाप छूटा.

इति श्रीलल्लूलालकृते प्रेमसागरे देवकीमृतपुत्रानयनं नाम पंचाशीतितमोऽध्यायः॥ ८५॥

अध्याय ८६.

श्रीशुकदेवजी बोले कि, राजा! जैसे द्वारकामें अर्जुन श्रीकृष्णचंद्रकी बहन सुभद्राको हरि लेगया और जैसे श्रीकृष्णचंद्र मिथिलामें जाय रहे तैसे मैं कथा कहताहूं, तुम मन लगाय सुनो, देवकीकी बेटी श्रीकृष्णचंद्रजीसे छोटी जिसका नाम सुभद्रा, वह व्याहन योग्य हुई, तव वसुदेवजीने कितने एक यदुवंशी और श्रीकृष्ण बलरामजीको बुलायके कहा कि अब कन्या व्याहन योग्य हुई, कहो किसे दें? बलरामजी बोले कि, कहाहै व्याह, वैर, प्रीति समानसे कीजै. एक बात मेरे मनमें आई है कि,

यह कन्या दुर्योधनको दीजै, तो जगतमे यश और बड़ाई लीजै. श्रीकृष्ण चंद्रजीने कहा मेरे विचारमें आताहै जो अर्जुनको लड़की दें, तो संसारमें यश लें. श्रीशुकदेवजी बोले कि, महाराज ! बलरामजीके कहनेपर तो कोई कछु न बोला, पर श्रीकृष्णचंद्रजीके मुखसे बात निकलतेही सब पुकारउठे कि अर्जुनको कन्या देना अति उत्तम है, इस बातके सुनतेही बलरामजी बुरामान वहाँसे उठगये और उनका बुरा मानना देख सब लोग चुप रहे, आगे यह समाचार पाय अर्जुनसंन्यासी का वेष बनाय दंडकमंडलु ले द्वारकामें जाय एक भलीसी ठौर देख मृगछाला बिछाय आसनमार बैठा-

चारमास वर्षाभरि रह्यो । काहू मर्म न ताको लह्यो ॥
अतिथिजान सब सेवनलागे । विष्णुहेतु तासों अनुरागे ॥
वाकोभेद कृष्ण सब जान्यो । काहूसों तिननाहिंबखान्यो ॥

महाराज ! एकदिन बलदेवजीभी अर्जुनको साधु जानकर घर जिमानें लिवाय लेगये, जो अर्जुन भोजन करने बैठे तो चंद्रवदनी मृग-लोचनी, सुभद्राजी दृष्टिआईं, देखतेही इधर तो अर्जुन मोहितहो सबकी दीठ बचाय फिर फिर देखनेलगे और मनहींमन यह विचार करने कि देखिये विधाता कब जन्मपत्रीकी विधि मिलावे और उधर सुभद्राजी इनके रूपकी छटा देख रीझ मनहीमन यों कहतीथीं-

हैकोउ नृपति नाहिंसंन्यासी । काकारण यहभयोउदासी ॥

महाराज ! इतना कह उधर तो सुभद्राजी घरमें जाय पतिके मिलनेकी चिंता करने लगीं और इधर भोजन कर अर्जुन अपने आसनपर आय प्रियाके मिलनेको अनेकअनेक प्रकारकी भावना करने लगे. इसमें कितने एक दिनपीछे एकसमय शिवरात्रिकेदिन सब पुरवासी क्या स्त्री क्या पुरुष नगरके बाहर शिवपूजनेको गये तहाँ सुभद्राजी अपनी सखी सहेलियों समेत गईं उनके जानेका समाचार पाय अर्जुन भी रथपर चढ़ धनुष बाण ले, वहाँ जाय उपस्थित हुआ. महाराज ! ज्यों शिवपूजनकर सखि-

योंको साथ ले सुभद्राजी फिरीं, त्यों देखतेही सोच संकोच तज अर्जुन, हाथ पकड़ उठाय सुभद्राको रथमें बैठाय अपनी बाट ली.

सुनिके राम कोप अतिकरघो। हलमूसलले काँधे धरघो॥
राते नयन रक्तसे करे। घन सम गर्ज बोल उच्चरे॥
अबहींजाय प्रलयमेंकरिहौं। क्षिति उठायकर माथेधरिहौं॥
मेरी बहन सुभद्रा प्यारी। ताको कैसे हरै भिखारी॥
अबहौंजहँसंन्यासी पांऊं। तिनका सबकुलखोजिमिटाऊं॥

महाराज! बलरामजी तो महाक्रोधमें बकझक रहेहीथे कि, इस बातका समाचार पाय प्रद्युम्न, अनिरुद्ध, सांब और बड़े बड़े यादव बलदेवजीके सन्मुख आय हाथ जोड़ बोले कि, महाराज! हमें आज्ञा होय तो जाय शत्रुको पकड़ लावें. इतनी कथा सुनाय श्रीशुकदेवजी बोलेकि, महाराज! जिससमय बलरामजी सब यदुवंशियोंको साथ ले अर्जुनके पीछे चलनेको उपस्थित हुए, उसकाल श्रीकृष्णचंद्रजीने आय बलरामजीको सुभद्राहरणका सब भेद समझाया और अतिविनती कर कहा कि, भाई! अर्जुन एक तो हमारी फूफीका बेटा और दूसरे परममित्र, उसने जाने अनजाने समझे बिनसमझे यह कर्म किया तो किया, पर हमें उससे लड़ना किसी भाँति उचित नहीं. यह धर्मविरुद्ध और लोकविरुद्ध है इस बातको जो सुनेगा सो कहेगा कि, यदुवंशियों की प्रीति है बालूकीसी भीति. इतनीबात सुनतेही बलरामजी शिर धुन झुँझुलाकर बोले कि, भाई! यह तुम्हाराही काम है कि, आग लगाय पानीको दौड़ना, नहीं तो अर्जुनकी क्या सामर्थ्यथी जो हमारी बहनको ले जाता? इतनाकह मनहींमन पछिताय तावपेंच खाय बलरामजी भाई का मुख देख हल मुसल पटक बैठ रहे, और उनके साथ सब यदुवंशी भी.

श्रीशुकदेवजी बोले कि राजा! इधर तो श्रीकृष्णचंद्रने सबको समझाय बुझाय रक्खा और उधर अर्जुनने घरजाय वेदकी विधिसे सुभद्राके साथ व्याह किया. व्याहके समाचार पाय श्रीकृष्ण बलरामजीने वस्त्र, आभूषण, दास, दासी, हाथी, घोड़े, रथ और बहुतसे रुपये एक

ब्राह्मणके हाथ संकल्पकर हस्तिनापुरको भेज दिये, आगे श्रीमुरारी भक्तहितकारी रथपर बैठ मिथिलाको चले. जहाँ श्रुतदेव बहुलाश्वनाम एक राजा एक ब्राह्मण दो भक्त थे. महाराज ! प्रभुके चलतेही नारद, वामदेव, व्यास, अत्रि,परशुराम आदि कितने एक मुनि आनमिले और श्रीकृष्णचंद्रजीके साथ हो लिये, पुनि जिस दिशामें हो प्रभु जाते थे. तहाँके राजा आगू आय आय पूज पूज भेंट धरते जातेथे. निदान चले चले कितने एक दिनोंमें प्रभु वहाँ पधारे, हरिके आनेके समचार पाय वे दोनों जैसे बैठेथे तैसेही भेंट लेले उठ धाये और श्रीकृष्णचंद्रके पास आये. प्रभुका दर्शन करतेही दोनों भेंटधर दंडवतकर हाथ जोड़ सन्मुख खड़े हो अति विनतीकर बोले, हे कृपासिंधु ! दीनबंधु ! ! आपने बड़ी दया की जो हमसे पतितोंको दर्शन दे पावन किया और जन्म मरणको चुकादिया. इतनी कथा कह श्रीशुकदेवजी बोले कि, राजा ! अंतर्यामी श्रीकृष्णचंद्र उन दोनों भक्तोंके मनकी भक्ति देख दो स्वरूप धारणकर दोनोंके घरजाय रहे,उन्होंने मन मानता सब राव चाव किया और हरिने कितने एकदिन वहाँ ठहर उन्हें अधिक सुखदिया.आगे प्रभु उनके मनका मनोरथ पूराकर ज्ञानदृढाय जब द्वारकाको चले, तब ऋषि मुनि पंथमें बिदाहुए और हरि द्वारकामें जा विराजे.

इति श्रीलल्लूलालकृते प्रेमसागरे सुभद्राहरणं श्रीकृष्णचंद्रमिथिलागमनं नाम षडशीतितमोऽध्यायः ॥ ८६ ॥

अध्याय ८७.

इतनी कथा सुनाय राजापरीक्षितने श्रीशुकदेवजीसे पूछा कि, महाराज ! आप जो आगे कह आये कि, वेदने परमेश्वरकी स्तुतिकी सो

निर्गुण ब्रह्मकी स्तुति वेदने क्योंकर की यह मुझे समझाकर कहो जो मेरे मनका संदेह जाय. श्रीशुकदेवजी बोले कि, महाराज! सुनिये कि जिसने बुद्धि, इंद्रिय, मन, प्राण, धर्म, अर्थ,काम,मोक्षको बनाया है, सो प्रभु सदा निर्गुण रहता है, पर जब ब्रह्मांड रचता है, तब सगुणरूप होता है. इससे निर्गुण सगुण वही एक ईश्वर है. इतना कह पुनि श्रीशुकदेव मुनि बोले कि, महाराज! जो तुमने प्रश्न किया सो प्रश्न एकसमय नारदजीने नरनारायणजीसे किया था. राजापरीक्षितने कहा कि महाराज यह प्रसंग मुझे समझाकर कहिये जो मेरे मनका संदेह जाय. श्रीशुकदेवजी बोले कि राजा सत्ययुगमें एकसमय नारदजी सत्यलोकमें जाय जहाँ नरनारायण अनेक मुनियोंके संग बैठे तप करते थे पूंछा कि, महाराज! निराकार ब्रह्मकी स्तुति वेद किस भाँति करते हैं? सो कृपाकर कहिये. नरनारायण बोले कि, सुन नारद! जो संदेह तूने मुझसे पूँछा यही संदेह एकसमय जनलोकमें जहाँ सनातनादि ऋषि बैठे तप करतेथे तहाँ संवाद हुआ था. नारदजी बोले महाराज! मैंभी तो वहीं रहताहूं, जो यह प्रसंग चलता तो मैंभी सुनता नरनारायणने कहा; नारदजी! तुम श्वेतद्वीपमें भगवतके दर्शनको गयेथे, तभी यह प्रसंग चला था इससे तुमने नहीं सुना. इतनी बात सुन नारदजीने पूंछा महाराज! वहाँ क्या प्रसंग चला था सो कृपाकर कहिये? नरनारायण बोले कि सुन नारद! जद मुनियोंने यह प्रश्न किया तद सनंदनमुनि कहनेलगे कि, सुनो. जिससमय महाप्रलय है चौदहब्रह्मांड जलाकार होजातेहैं उससमय पूर्णब्रह्म अकेले सोते रहते हैं. जब भगवान्‌को सृष्टिकरनेकी इच्छा होती है, तब उनके श्वाससे वेद निकल हाथजोड़ स्तुति करते हैं ऐसे कि, जैसे कोई राजा अपने स्थानपर सोता हो और बंदीजन भोरही उसका यश गाय उसीको जगावैं. इसलिये कि, चैतन्यहो शीघ्रअपना कार्य करे.

इतना प्रसंग कह नरनारायण बोले कि, सुन नारद! प्रभुके मुखसे निकल वेद यह कहते हैं कि, हे नाथ! वेग चैतन्य हो सृष्टिरचो और जीवोंके मनसे अपनी माया दूर करो. क्योंकि, वे तुम्हारे रूपको पहिंचानें

माया तुम्हारी प्रबल है, वह सब जीवोंको अज्ञान कर रखती है; जो उससे छूटे तो जीवको तुम्हारे समझनेका ज्ञान हो. हे नाथ! तुम बिन इसे कोई वश नहीं करसकता जिसके हृदयमें ज्ञानरूप हो तुम विराजते हो, सोई इस मायाको जीतता है; नहीं तो किसकी सामर्थ्य है जो मायाके हाथसे बचे? तुम सबके कर्त्ता हो, सब जीव तुम्हींसे उत्पन्न हो तुम्हीमें समातेहैं, ऐसे कि, जैसे पृथ्वी से अनेकवस्तु हो पृथ्वीमें मिलजाती हैं, कोई किसी देवताकी पुजा स्तुतिकरै, पर वह तुम्हारीही पूजास्तुति होती है; ऐसे कि, जैसे कोई कंचनके आभरण बनाय अनेक नाम धरे, पर वह कंचनही है; तिसीभाँति तुम्हारे अनेकरूप हैं और ज्ञानकर देखिये तो कोई कुछनहीं, जिधर देखिये तिधर तुमही तुम दृष्टिआते हो. नाथ! तुम्हारी माया अपरम्पार है. यही सत, रज, तम तीन गुणहो तीनस्वरूप धारणकर सृष्टिको उपजाय पालन नाश करती है, इसका भेद न किसीने पाया, न कोई पावेगा. इससे जीवको उचित यहहै कि सब वासना छोड़कर तुम्हाराही ध्यानकरे, इसीसे इसका कल्याण है. महाराज! इतनाप्रसंग सुनाय नरनारायणने नारदसे कहा कि, हे नारद! जब सनंदनमुनिने पुरातन कथा कह सबके मनका संदेह दूरकिया तब सनकादिक मुनियोंने वेदकी विधिसे सनंदनमुनि की पूजा की.

इतनी कथा कह श्रीशुकदेवजी बोले कि, हे राजा! यह नरनारायण नारदका संवाद जो कोई सुनेगा सो निःसंदेह भक्तिपदार्थ पाय मुक्त होगा. जो कथा पूर्णब्रह्मकी वेदने गाई, सो कथा सनंदनमुनिने सनकादिक मुनियोंको सुनाई; पुनि वही कथा नरनारायणने नारदके आगे गाई, नारदसे व्यासने पाई, व्यासने मुझे पढ़ाई, सो मैंने अब तुम्हें सुनाई; इस कथाको जो जन सुने सुनावेगा, सो मन मानता फल पावेगा. जो पुण्य होता है तप, यज्ञ, दान, व्रत, तीर्थ करनेमें, सोई पुण्य होताहै इसकथाके कहने सुननेमें.

इति श्रीलल्लूलालकृते प्रेमसागरे नरनारायणनारदसंवादो नाम सप्ताशीतितमोऽध्यायः ॥ ८७ ॥

अध्याय ८८.

श्रीशुकदेवजी बोले कि–महाराज! भगवत्की अद्भुत लीला है, इसे सब कोई जानताहै. जो जन हरिकी पूजा करे सो दरिद्री होय और महादेवजीको मानें सो धनवान, देखो हरिकी कैसी रीति है. ये लक्ष्मीपति, वे गौरीपति; ये धरे वनमाला, वे मुंडमाला; ये चक्रपाणि, वे शूलपाणि; ये धरणीधर, वे गंगाधर, ये मुरली बजावें, वे सींगी; ये वैकुंठनाथ, वे कैलासवासी; ये प्रतिपालैं, वे संहारैं; ये चरचैं चंदन, वे लगावें विभूति; ये ओढ़ैं अंबर. वे बाघंबर; ये पढ़ैं वेद, वे आगम; इनका वाहन गरुड़, उनका नंदी; ये रहैं ग्वालबालों में, वे भूतप्रेतों में.

दोऊ प्रभुकी उलटी रीति। जित इच्छा तित कीजे प्रीति॥

इतनी कथा कह श्रीशुकदेवजी बोले कि–महाराज! राजायुधिष्ठिरसे श्रीकृष्णचंद्रने कहा कि, हे युधिष्ठिर! जिसपर मैं अनुग्रह करता हूं, हौले हौले उसका धन सब खोताहूं; इसलिये कि, धनहीन को भाई, बंधु, स्त्री, पुत्र आदि सब कुटुंबके लोग तज देते हैं तब उसे वैराग उपजता है, वैराग होनेसे धन जनकी मायाछोड़ निर्मोही हो मन लगाय मेरा भजन करता है. भजनप्रतापसे अटल निर्वाणपद पाता है. इतना कह पुनि शुकदेवजी कहनेलगे कि, महाराज! और देवताकी पूजा करनेसे मनोकामना पूरी होती है, पर भक्ति नहीं मिलती. यह

प्रसंग सुनाय मुनिने पुनि राजापरीक्षितसे कहा कि, महाराज ! एकसमय कश्यपका पुत्र वृकासुर तप करनेकी अभिलाषाकर जो घरसे निकला तो पंथमें उसे नारदमुनि मिले, नारदजीको देखतेही इसने दंडवतकर हाथ जोड़ सन्मुख खड़े हो अतिदीनता कर पूंछा कि, महाराज ! ब्रह्मा, विष्णु, महादेव इन तीनों देवताओंमें शीघ्र वरदाता कौन है ? सो कृपाकर कहो तो मैं उन्हींकी तपस्या करूं. नारदजी बोले कि, सुन वृकासुर ! इन तीनों देवताओंमें महादेवजी बड़े वरदायक हैं, इनको न रीझते विलंब न खीझते; देखो ! शिवजीने थोड़ेसे तपकरने से प्रसन्न हो सहस्रार्जुनको सहस्र हाथ दिये और अल्पही अपराधमें महाक्रोधकर उनका नाश किया. महाराज! इतना कह नारद मुनि तो चलेगये और वृकासुर अपने स्थानपँर आय महादेवका अति तप यज्ञ करनेलगा. सात दिनके बीच उसने छूरीसे अपने शिरका मांस सब काट काट होम दिया; आठवें दिन जब शिर काटनेका मन किया तब भोलानाथने आय उसका हाथ पकड़के कहा, कि मैं तुझसे प्रसन्न हुआ, जो तेरी इच्छा आवे सो बर मांग, मैं तुझे अभी दूंगा. इतना वचन शिवजीके मुखसे निकलतेही वृकासुर हाथ जोड़कर बोला-

दो०-ऐसो वर दीजै अबै, धरौं जाहि शिर हाथ।
भस्म होय सो पलकमें, करहु कृपा तुम नाथ॥

महाराज ! बातके कहतेही महादेवजीने उसे मुँह माँगा वर दिया. वर पाय वह शिवजीकेही शिरपर हाथ धरने चला उसकाल भयखाय महादेव जी आसन छोड़ भागे, उनके पीछे असुर भी दौड़ा. महाराज ! सदाशिवजी जहाँ जहाँ फिरे तहाँ तहाँ वह भी उनके पीछेही लगा आया. निदान अतिव्याकुल हो महादेवजी वैकुंठमें गये. उनको महादुःखित देख भक्तहितकारी वैकुंठनाथ श्रीमुरारी करुणानिधान करुणाकरके विप्रवेषधर वृकासुरके सन्मुख जाय बोले कि, हे असुरराय ! तुम उनके पीछे क्यों श्रम करते हो ? यह मुझे समझायकर कहो. बातके सुनतेही वृकासुरने सब भेद कह सुनाया. पुनि भगवान् बोले, कि हे असुरराय ! तुमसे

सयाना हो धोखा खाय; यह बड़े अचरजकी बात है. इस नंगे मुनंगे बावले भांग धतूरा खानेवाले योगीकी बात कौन सत्य माने? यह सदा क्षार लगाये सर्प लिपटाये भयानक वेष किये भूत प्रेतोंको संग लिये श्मशानमें रहता है. इसकी बात किसके जीमें साँच आवे. महाराज ! यह बात कह श्रीनारायणजी बोले कि, हे असुरराय ! जो तुम मेरा कहा झूंठ मानो तो अपने शिरपर हाथ रख देख लो महाराज ! प्रभुके मुखसे इतनी बात सुनतेही मायाके वश अज्ञान हो ज्यों वृकासुरने अपने शिरपर हाथ रखलिया, त्यों जलकर भस्मका ढेर हुआ. असुरके मरतेही सुरपुरमें आनंदके बाजन बजने लगे और देवता जयजयकार कर फूल बरसावने; विद्याधर, गंधर्व, किन्नर, हरिगुण गाने. उसकाल हरिने हरकी स्तुतिकर बिदा किया और वृकासुरको मोक्षपदार्थ दिया. श्रीशुकदेवजी बोले कि, महाराज ! इस प्रसंगको जो सुने सुनावेगा, सो निःसंदेह हरिहरकी कृपासे परमपद पावेगा.

इति श्रीलल्लूलालकृते प्रेमसागरे रुद्रमोक्षवृकासुरवधो नामा-
ष्टाशीतितमोऽध्यायः ॥ ८८ ॥

अध्याय ८९.

श्रीशुकदेवजी बोले कि, महाराज ! एकसमय सरस्वतीके तीर सब ऋषि मुनि बैठे तप यज्ञ करतेथे, उनमेंसे किसीने पूंछा कि ब्रह्मा, विष्णु,

महेश इन तीनों देवताओंमें बड़ा कौन है ? सो कृपा कर कहो, इसमें किसीने कहा शिव, किसीने कहा विष्णु और किसीने कहा ब्रह्मा; पर सबने मिल एकको बड़ा न बताया. तब कई एक बड़े बड़े मुनीशों ऋषीशोंने कहा कि; हम यों तो किसीकी बात नहीं मानते. पर हाँ; जो कोई इन तीनों देवताओंकी जाके परीक्षा करआवे और धर्म स्वरूपी कहे तो उसका कहना सत्य मानैं. महाराज ! यह बात सुन सबने प्रमाणकी और ब्रह्माके पुत्र भृगुको तीनों देवताओंकी परीक्षा करआनेको आज्ञा दी. आज्ञापाय भृगुमुनि प्रथम ब्रह्मलोकमें गये और चुपचाप ब्रह्माकी सभामें जाकर बैठे, न दंडवत् की, न स्तुति, न परिक्रमा दी. राजा ! तब पुत्र का अनाचार देख ब्रह्माने कोप किया और चाहा कि शाप दूं पर पुत्रकी ममता कर न दिया. उसकाल भृगु ब्रह्माको रजोगुणमें आसक्त देख वहांसे उठ कैलासमें गये और जहाँ शिव पार्वती विराजतेथे तहाँ जा खडे भये, इसे देख शिवजी खड़े हों ज्यों हाथ पसार मिलनेको हुए त्यों यह बैठ गया; बैठतेही शिवजीनें अति क्रोधकर इसके मारनेको त्रिशूल हाथमें लिया उस समय पार्वतीने अति बिनतीकर पाँवों पड़ महादेवजीको समझाया और कहा कि, यह तुम्हारा छोटाभाई है, इसका अपराध क्षमा कीजिये. कहाहै-

बालकसों जु चूक कछु परै। साधु न कबहूं मनमें धरै॥

महाराज ! जब पार्वतीजीने शिवजीको समझाकर ठंढ़ा किया, तब भृगु महादेवजीको तमोगुणमें लीन देख चल खड़े हुए. पुनि वैकुंठमें गये, जहाँ भगवान् मणिमय कंचनके छपरखटपर फूलों की सेजमें लक्ष्मीके साथ सोतेथे जातेही भृगुने भगवान्के हृदयमें एक लात ऐसी मारी कि, वे नींदसे चौंक पड़े. मुनिको देख लक्ष्मीको छोड़ छपरखटसे उतर हरि भृगुजीका पाँव शिर आंखोंसे लगाय लगे दाबने और यों कहने, कि हे ऋषिराय ! मेरा अपराध क्षमा कीजै, मेरे कठिन हृदयकी चोट तुम्हारे कोमल कमलचरण में अनजाने लगी, यह दोष चित्तमें न लीजे. इतना वचन प्रभुके मुखसे निकलतेही भृगुजी अतिप्रसन्न हो स्तुतिकर बिदाहो

वहाँ आये, जहाँ सरस्वती तीर सब ऋषि मुनि बैठेथे; आतेही भृगुजीने तीनों देवताओंका भेद सब ज्यों का त्यों कह सुनाया कि,–

ब्रह्मा राजसमें लपटान्यो। महादेव तापसमें सान्यो॥
विष्णुजुसात्त्विकमाहिंप्रधान। तिनते बडोदेव नहिं आन॥
सुनत ऋषिनको संशयगयो। सबहीके मन आनँद भयो॥
विष्णुप्रशंसा सबने करी। अविचलभक्ति हृदयमें धरी॥

इतनी कथा कह श्रीशुकदेवजीने राजापरीक्षितसे कहा कि, महाराज! मैं अंतर कथा कहताहूँ; तुम मन लगाय सुनो द्वारकापुरीमें राजाउग्रसेन तो धर्मराज करतेथे और श्रीकृष्ण बलराम उनके आज्ञाकारी. राजाके राज्यमें सब लोग अपने अपने स्वधर्ममें सावधान, काज कर्ममें सज्ञान रहते और आनंद चैन करतेथे, तहाँ एक ब्राह्मणभी अति सुशील धर्मनिष्ठ रहताथा. एकसमय उसके पुत्र हो मरगया, वह उस मरे पुत्रको ले राजाउग्रसेनके द्वारपर गया और उसके मुँहमें जो आया सो कहने लगा कि, तुम बड़े अधर्मी दुष्कर्मी पापी हो. तुम्हारे ही कर्म धर्म से प्रजा दुःख पाती है, मेरा भी पुत्र तुम्हारेही पापसे मरा. महाराज! इसी भाँतिकी अनेक अनेक बातें कह मरा लड़का राजद्वार पर रख ब्राह्मण अपने घरको आया. आगे उसके आठ बेटे हुए और आठोंको वह उसी रीतिसे राजद्वारपर रख आया. जब नवाँ पुत्र होनेको हुआ, तब ब्राह्मण फिर राजा उग्रसेनकी सभामें जा श्रीकृष्णचन्द्रजीके सन्मुख खड़े हो पुत्रोंके मरनेका दुःख सुमिर सुमिर रो रो यह कहने लगा कि, धिक्कार है! राजा और इसके राज्यको. पुनि धिक्कार है उन लोगोंको जो इस अधर्मीकी सेवा करते हैं और धिक्कार है मुझे जो इस पुरीमें रहताहूं. जो इन पापियोंके देशमें न रहता तो मेरे पुत्र बचते. इन्हींके अधर्मसे मेरे पुत्र मरे और किसीने उपराला न किया. महाराज! इस ढबकी सभा के बीच खड़े हो ब्राह्मणने रो रो बहुतसी बातें कहीं पर कोई कुछ न बोला. निदान श्रीकृष्णचंद्रके पास बैठा सुन सुन घबराकर अर्जुन बोला कि, हे देवता! तुम किसीके आगे यह बात क्यों कहते हो

और क्यों इतना खेद करते हो ? इस सभामें कोई धनुर्धारी नहीं जो तुम्हारा दुःख दूर करे. आज कलके राजा आपकाजी हैं परदुःख निवारक नहीं; जो प्रजाको सुख दें और गो ब्राह्मणकी सेवा करें. ऐसा सुनाय पुनि अर्जुनने ब्राह्मणसे कहा कि, देवता ! अब तुम जाय अपने घर निश्चित बैठ रहो, जब तुम्हारे लड़का होनेका दिन आवे तब तुम मेरे पास आइयो; मैं तुम्हारे साथ चलूंगा और लड़केको न मरनेदूंगा. महाराज इतनी बातके सुनतेही ब्राह्मण खिझलायके बोला कि, मैं इस सभाके बीच श्रीकृष्ण बलराम प्रद्युम्न और अनिरुद्ध छुडाय ऐसा बलवान् किसीको नहीं देखता जो मेरे पुत्रको कालके हाथसे बचावे. अर्जुन बोला कि, ब्राह्मण तू मुझे नहीं जानता कि, मेरा नाम धनंजय है. तुझसे प्रतिज्ञा करताहूं कि, जो मैं तेरा सुत कालके हाथसे न बचाऊं; तो तेरे मरे हुए लड़के जहाँ पाऊँ तहाँसे ले आय तुझे दिखाऊँ, और वेभी न मिलें तो गांडीव धनुष समेत अपनेको अग्निसे जलाऊं, महाराज ! जब प्रतिज्ञाकर अर्जुनने ऐसे कहा, तब वह ब्राह्मण संतोषकर अपने घरको गया; पुनि पुत्र होनेके समय विप्र अर्जुनके निकट आया. उसकाल अर्जुन धनुष बाण ले उसके साथ उठ धाया. आगे वहां जाय उसका घर अर्जुनने बाणोंसे ऐसा छाया कि, जिसमें पवनभी प्रवेश न करसके और आप धनुष बाण लिये उसके चारों ओर फिरने लगा.

इतनी कथा कह श्रीशुकदेवजीने राजा परीक्षितसे कहा कि, महाराज ! अर्जुनने बहुतसा उपाय बालकके बचानेको किया पर न बचा और दिन बालक होनेके समय रोताथा, उस दिन श्वासभी न लिया; बरन् पेटहीसे मरा निकला. मरे लड़केका होना सुन लज्जितहो अर्जुन श्रीकृष्णचंद्रजीके निकट आया और इसके पीछे ब्राह्मण भी आया. महाराज ! वह आतेही रोरो ब्राह्मण कहनेलगा कि, रे अर्जुन ! धिक्कार है तुझे और तेरे जीवनको, जो मिथ्या वचन कह संसारमें लोगोंको मुख दिखाता है. अरे नपुंसक ! जो तू मेरे पुत्रको कालके हाथसे न बचा सकता था, तो तैंने प्रतिज्ञा क्यों कीथी ? कि मैं तेरे पुत्रको बचाऊंगा और न बचासकूंगा तो तेरे मरे सब

पुत्र ला दूंगा इतनी बातके सुनतेही अर्जुन धनुष बाण ले वहाँसे उठ चला चला संयमनीपुरीमें धर्मराजके पास गया उसे देखके धर्मराज! उठ खड़ा हुआ और हाथजोड़ स्तुतिकर बोला कि, महाराज! आपका आगमन यहाँ कैसे हुआ. अर्जुन बोले कि, मैं अमुक ब्राह्मणके बालक लेने आयाहूं, धर्मराजने कहा वे बालक यहाँ नहीं आये. महाराज! इतना वचन धर्मराजके मुखसे निकलतेही अर्जुन वहाँसे बिदा हो सब ठौर फिरा पर उसने ब्राह्मणके लड़कोंको कहीं न पाया. निदान अछता-पछता द्वारकापुरीमें आया और चिताबनाय धनुषबाण समेत जलनेको उपस्थित हुआ. आगे अग्नि जलाय अर्जुन जो चाहै कि चिता पर बैठूं, तो श्रीमुरारी गर्वप्रहारीने आय हाथ पकड़ा और हँसके कहा कि, हे अर्जुन! तू मत जले, तेरी प्रतिज्ञा मैं पूरी करूंगा; जहाँ उस ब्राह्मणके पुत्र होंगे तहाँसे लादूंगा. महाराज! ऐसे कह त्रिलोकीनाथ! रथपर बैठ अर्जुनको साथ ले पूर्व दिशाकी ओरको चले और सात समुद्रपार हो लोकालोकपर्वतके निकट पहुँचे, वहाँ जाय रथसे उतर एक अतिअँधेरी कंदरामें पैठे उससमय श्रीकृष्णचंद्रजीने सुदर्शनचक्रको आज्ञादी; वह कोटि सूर्यका प्रकाश किये प्रभुके आगे महाअँधियारको टालता चला.

तमतजि केतिक आगे गये। जलमें तवै जु पैठत भये॥
महातरंग तासुमें लसे। मूँदि आँखि ये तामें धँसे॥
पहुड़ेहुते शेषजी जहाँ। अर्जुन कृष्ण पहूँचे तहाँ॥

जातेही आँखें खोलकर देखा कि एक बड़ा लंबा चौड़ा ऊंचा कंचनका मणिमय मंदिर अति सुंदर है तहाँ शेषजीके शीशपर रत्नजड़ित सिंहासन धरा है तिसपर श्यामघनरूप सुंदर स्वरूप चंद्रवदन कमलनयन किरीट कुंडल पहने पीतवसन ओढे पीतांबर काछे वनमाल मुक्तमाल डाले आप प्रभु मोहनीमूर्ति विराजे हैं और ब्रह्मा, रुद्र, इंद्र आदि

सब देवता सन्मुख खड़े स्तुति करते हैं. महाराज ! ऐसा उत्तम स्वरूप देख अर्जुन और श्रीकृष्णचंद्रजीने प्रभुके सोहीं जाय दंडवत् कर हाथ जोड़ अपने आनेका सब कारण कहा; बातके सुनतेही प्रभुने ब्राह्मणके बालक सब मँगायदिये और अर्जुनने देखभाल प्रसन्न हो लिये. तब प्रभु बोले—

तुमदोउमेरीकलाजुआहि । हरिअर्जुन देखो चितचाहि ॥
भार उतारन भुविपर गये । साधु संतको वहु सुख दये ॥
असुर दैत्य तुम सब संहारे । सुर नर मुनिके काज सवाँरे ॥
मेरे अंश जु तुमसे हैहैं । पूरणकाम तुम्हारे हैहैं ॥

इतना कह भगवान्ने अर्जुन और श्रीकृष्णचंद्रजीको बिदा किया. ये बालक ले पुरीमें आये, घर घर आनंद मंगल भये बधाये. इतनी कथा कह श्रीशुकदेवजीने राजा परीक्षितसे कहा कि, महाराज !

जो यह कथा सुनै धरि ध्यान । तिनके पुत्रहोयँ कल्यान ॥

इति श्रीलल्लूलालकृते प्रे० द्विजकुमारहरणतत्प्राप्तिर्नाम
नवाशीतितमोऽध्यायः ॥ ८९ ॥

अध्याय ९०.

श्रीशुकदेवजी बोले कि, महाराज ! द्वारकापुरीमें श्रीकृष्णचंद्र सदा

विराजैं, ऋद्धि सिद्धि सब यदुवंशियोंके घर घर विराजे; नर नारी सब आभूषण ले नव वेष बनावैं, चोवा चंदन चरच सुगंध लगावैं. महाराज! हाट बाट चौहटे झाड़बुहार छिड़कावें, तहाँ देशदेशके व्यापारी अनेक २ पदार्थ बेंचनेको लावें. जिधर तिधर पुरवासी कुतूहल करैं, ठौर ठौर ब्राह्मण वेद उच्चरें, घर घर मंगली लोग कथा पुराण सुनैं सुनावैं. साधु संत आठों याम हरि यश गावैं, सारथी रथ घुड़बहल जोत जोत राजद्वार लावैं, रथी, महारथी, गजपती, अश्वपती, शूरवीर, रावत, योद्धा, यादव राजाको जुहार करने जावैं. गुणीजन नाचैं, गावैं, बजावैं, रिझावैं; बंदीजन चारण शब्द बखानकर हाथी, घोड़े; वस्त्र, अन्न, धन; कंचनके रत्नजड़ित आभूषण पावैं. इतनी कथा कह श्रीशुकदेवजीने राजा परीक्षितसे कहा कि, महाराज! इधर तो राजा उग्रसेनकी राजधानीमें इसीरीति भाँतिके कुतूहल होरहेथे और उधर श्रीकृष्णचंद्र आनंदकंद सोलहसहस्र एकसौआठ युवतियोंके साथ नित्य विहार करैं. कभी युवतियाँ प्रेममें आसक्तहो प्रभुका वेष बनाया करैं; कभी हरि आसक्त हो युवतियोंको शृंगारें और जो परस्पर लीला क्रीड़ा करैं, सो अकथ हैं; मुझसे कही नहीं जातीं. वह देखेही बनिआवैं.

इतना कह श्रीशुकदेवजी बोले कि, महाराज ! एकदिन रात्रिसमय श्रीकृष्णचंद्र सब युवतियोंके साथ बिहार करतेथे और प्रभुके नानाप्रकारके चरित्र देख किन्नर गंधर्व, वीण, पखावज, भेरी, दुंदुभी बजाय बजाय गुण गाते थे और एकसा सामा हो रहाथा कि, इसमें विहार करते करते जो कुछ प्रभुजीके मनमें आया तो सबको साथ ले सरोवरके तीर जाय नीरमें पैठ जलक्रीड़ा करनेलगे. आगे जलक्रीड़ा करते करते सब स्त्री श्रीकृष्णचंद्रके प्रेममें मग्न हो तनमनकी सुरत भुलाय एक चकवा चकईको सरोवरके वार पार बैठे बोलते देख बोलीं—

हे चकई तू दुख क्यों गावै। पिय वियोग ते रैनि नशावै ॥

अतिव्याकुलह्वै पियहिपुकारे। हमलौंतूनिजपियहिसम्हारे॥
हमतौ तिनकी चेरी भई। ऐसे कहि आगे को गई॥

पुनि समुद्रसे कहने लगीं कि, हे समुद्र ! तू जो लंबी श्वास लेता है और रात दिन जागता है सो क्या तुझे किसीका वियोग है ? के चौदह रत्न गये, सो शोक है. इतना कह फिर चन्द्रमाको देख बोलीं हे चंद्रमा ! तू क्यों तनक्षीन मनमलीन होरहा है ? क्या तुझे गजरोग हुआ, जो दिन दिन घटता बढ़ता है ? के श्रीकृष्णचंद्रको देख जैसे हमारी गति मति भूलती है तैसी तेरीभी भूली है ?

इतनी कथा कह श्रीशुकदेवजीने राजासे कहा कि महाराज! इसीभाँति सब स्त्रियाँ पवन, मेघ, पर्वत, नदी, कोकिल, हंससे अनेक अनेक बातें कहीं सो जान लीजे. आगे सब श्रीकृष्णचन्द्रके साथ विहार करें और सदा सेवामें रहें, प्रभुके गुण गावें और मनवांछित फल पावें; प्रभु गृहस्थधर्मसे गृहस्थाश्रम चलावें.

महाराज ! सोलहसहस्र एकसोआठ श्रीकृष्णचंद्रकी रानी जो प्रथम बखानी; तिनमें एक एक रानीके दश दश पुत्र और एक एक कन्या थी और उनकी संतान अनगिनत होगई; सो मेरी सामर्थ्य नहीं कि जो उनकी संतानका बखान करूं, पर मैं इतना जानता हूं कि, तीनकरोड़-अट्ठासीसहस्र-एकसौ चटशाला थीं, श्रीकृष्णचंद्रकी संतानके पढ़ानेको और इतनेही पाँड़े थे. आगे श्रीकृष्णचंद्रके जितने बेटे, पोते, नाती हुए, रूप, बल, पराक्रम, धन, धर्ममें कोई कम न था. एक एकसे बढ़कर था. उनका वर्णन मैं कहाँतक करूं.

इतना कह ऋषि बोले कि महाराज ! मैंने ब्रज और द्वारकाकी लीला गाई, यह है सबको सुखदाई. जो जन इसे प्रेम सहित गावेगा, सो निस्संदेह

भुक्ति मुक्ति पदार्थ पावेगा जो फल होताहै तप, यज्ञ, दान, व्रत, तीर्थ, स्नान करनेसे सो फल मिलता है हरि कथा सुनने और सुनानेसे.

इति श्रीलल्लूलालकृते प्रेमसागरे द्वारकाविहारवर्णनो नाम नवतितमोऽध्यायः ॥ ९० ॥

श्लोक-फुल्लेन्दीवरकान्तिमिन्दुवदनं बर्हावतंसप्रियं
श्रीवत्साङ्कमुदारकौस्तुभधरं पीताम्बरं सुन्दरम् ।
गोपीनां नयनोत्पलार्चिततनुं गोगोपसंघावृतं
गोविंदंकलवेणुवादनपरं दिव्याङ्गभूषं भजे ॥ १ ॥

समाप्तोऽयंग्रन्थः ।

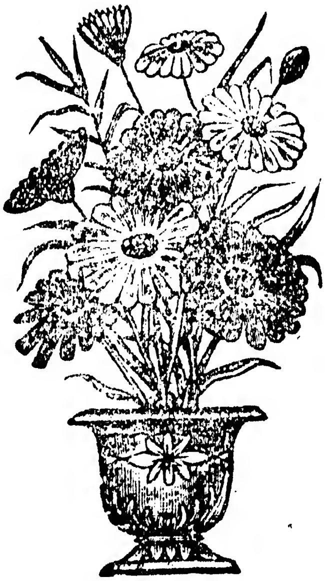

पुस्तक मिलनेका ठिकाना-
खेमराज श्रीकृष्णदास,
"श्रीवेङ्कटेश्वर" स्टीम्-प्रेस-मुंबई.

विक्रय्यपुस्तकोंकी संक्षिप्त-सूची।

भाषा-काव्य।

नाम.	की. रु.आ.
अष्टादशपुराणदर्पण-विद्यावारिधि पं० ज्वालाप्रसादजी मिश्र-द्वारा निर्मित अर्थात् अठारहों पुराणोंका दर्पणकी समान वर्णन। इसमें-वेदसे पुराणविषयका वर्णन, सब पुराणोंके अध्याय और उनकी कथा, पुराणोंपर विचार तथा शंका समाधान सहित लिखाहै। यह पुस्तक पंडितोंके देखने योग्यहै अर्थात् सबको पास रखना चाहिये	२-०
आनन्दाम्बुनिधि-भाषाभागवत-छन्दबद्ध महाराजा रघुराज-सिंहजीकृत ग्लेज कागजका	७-०
" तथा रफ कागजका	६-०
देवीभागवत-केवल भाषा वार्तिक जिल्दबँधा देवीभक्तोंको अवश्य लेना चाहिये।	६-०
नासिकेतोपाख्यान-भाषा-यथायोग्य कर्मानुसार स्वर्गनरकप्राप्ति विवरण मनोहर दोहा, चौपाई आदि छन्दों में वर्णितहै	०-६
पुराणोंकी संरक्षा-इसमें पुराणसंबंधी संपूर्ण वृत्तान्त भलीभाँति लिखाहै	०-२
भागवत केवलभाषा-खुलापन्ना-जिसमें कथाके सिवाय सातसौ दृष्टांतभी हैं	६-०
मार्कण्डेयपुराण-भाषावार्तिक मनोहर जिल्द बँधा.	३-०
वामनपुराण-भाषावार्तिक-जिल्द बँधा.	३-०
शिवमहापुराण-भाषावार्तिक विद्यावारिधि श्रीयुत पं० ज्वालाप्र-सादजी मिश्रकृत जिल्द बँधा। शिवभक्तोंको अवश्य लेना चाहिये। यह ग्रन्थ पहिलेसे बहुत बडा होगया है। मूल्य भी सर्वसाधारणके लिये थोडा रक्खाहै। ग्लेज कागजका दाम	८-०

नाम.	की.रु. आ.
" तथा रफ कागजका	७-०
शिवपुराणरत्न-इसमें शिवपुराणका सारांश तुलसीकृतरामायणकी तरह दोहा, चौपाई तथा छन्दोंमें उत्तमताके साथ वर्णित है.	५-०
शिवमहापुराणसन्देहभेदिका-शिवपुराणसंबंधी सन्देह, भाषामें भलीप्रकार दूर कियागया है.	०-११
शुकसागर-अर्थात् भाषाभागवत-गोलोकवासी कविवर लाला शालिग्रामजी कृत । इस ग्रन्थकी भाषा ऐसी सरल बनाई गयी है कि, जिसको छोटे बडे सब भलीप्रकार समझसक्तेहैं। जगह २ पर दोहा, कवित्त, सवैया तथा भजनादि भी स्थलानुकूल डाले गयेहैं । शंकासमाधान भी उचितरीतिसे कियागयाहै । और उपयोगी दृष्टान्त भी प्रसंगानुसार डालेगये-हैं। अक्षर भी इतना बड़ा है कि, जिसके पढनेमें नेत्रोंको बहुत कम परिश्रम पड़ताहै । इसका वजन भी पक्का १० सेर है । अत्यन्त मनोहर विलायती कपडेकी दो जिल्द बँधीहैं रफ कागज	१०-०
शुकसागर-मध्यम अक्षर-लाला शालिग्रामजी कृत उपरोक्त सर्वालंकारोंसे युक्त ग्लेज कागजका दाम	८-०
" तथा रफका	७-०

संपूर्ण पुस्तकोंका "बड़ा सूचीपत्र" अलग है आध-आनेका टिकट भेजकर मँगालीजिये ।

पुस्तक मिलनेका ठिकाना-

खेमराज श्रीकृष्णदास,

"श्रीवेङ्कटेश्वर" स्टीम् प्रेस-बम्बई.

लाल बहादुर शास्त्री राष्ट्रीय प्रशासन अकादमी, पुस्तकालय
L.B.S. National Academy of Administration, Library
मसूरी
MUSSOORIE
यह पुस्तक निम्नांकित तारीख तक वापिस करनी है।
This book is to be returned on the date last stamped

दिनांक Date	उधारकर्ता की संख्या Borrower's No.	दिनांक Date	उधारकर्ता की संख्या Borrower's No.

GL H 294.5211
LAL
121151
LBSNAA

LIBRARY

LAL BAHADUR SHASTRI

National Academy of Administration

MUSSOORIE

Accession No. 121151

1. Books are issued for 15 days only but may have to be recalled earlier if urgently required.
2. An over-due charge of 25 Paise per day per volume will be charged.
3. Books may be renewed on request, at the discretion of the Librarian.
4. Periodicals, Rare and Reference books may not be issued and may be consulted only in the Library.
5. Books lost, defaced or injured in any way shall have to be replaced or its double price shall be paid by the borrower.

Help to keep this book fresh, clean & moving